Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

श्रीसीतापतये नमः

श्रीवाल्मीकिमहामुनिकृतशतकोटिरामचरितान्तर्गतं—

आनन्दरामायणम्

'ज्योत्स्ना'ऽभिधया भाषाटीकयाऽऽटीकितम्

राज्यकाण्डम् (पूर्वार्द्धम्)

प्रथमः सर्गः

(रामसहस्रनाम)

विष्णुदास उवाच

रामदास गुरो प्रोक्तं त्वया पूर्वं ममांतिके । विवाहकाण्डचरमसर्गेऽत्र पातकापहे ॥ १ ॥
रामनामसहस्रेण नारदेन महात्मना । सूतोक्तेन सभायां स रामचन्द्रः स्तुतस्त्विति ॥ २ ॥
तत्कीदृशं रामनामसहस्रं मां प्रकाशय । कथं सूतेन कथितं मुनीनामग्रतः पुरा ॥ ३ ॥

श्रीरामदास उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया शिष्य सावधानमनाः शृणु । रामनामसहस्रं च सूतोक्तं प्रवदामि ते ॥ ४ ॥
यथा त्वया कृतः प्रश्नः शौनकेन तथा कृतः । सूतः प्राह तदाकर्ण्य शौनकं नैमिषे वने ॥ ५ ॥

श्रीसूत उवाच

एकदा सुखमासीनौ पार्वतीपरमेश्वरौ । अन्योन्याश्लिष्टहृद्बाहू लोकरक्षणतत्परौ ॥ ६ ॥
इन्द्रादिलोकपालैश्च सेवितौ च परात्परौ । पार्वती परिपप्रच्छ तदा धर्माननुक्रमात् ॥ ७ ॥

पार्वत्युवाच

मन्नाथ जगतां नाथ सर्वज्ञ परमेश्वर । त्वत्प्रसादान्मया ज्ञात धर्मशास्त्रमनुत्तमम् ॥ ८ ॥
प्रायश्चित्तं तु पापानां श्रुतं सर्वमशेषतः । ब्रह्महत्यादिपापानां निष्कृतिं वक्तुमर्हसि ॥ ९ ॥

विष्णुदासने कहा—हे गुरो रामदास ! अभी-अभी आप मुझसे कह चुके है कि पातकोंको नष्ट करनेवाले विवाहकांडमें नारदने सूतोक्त रामसहस्रनामसे सभामें रामचन्द्रजीको स्तुति को थी ॥ १ ॥ २ ॥ वह रामसहस्रनाम कैसा है और किस प्रकार श्रीसूतजीने मुनियोंके समक्ष उसे प्रकट किया था। सो आप मुझसे कहें ॥ ३ ॥ श्रीरामदासने कहा—हे शिष्य ! तुमने बहुत उत्तम प्रश्न किया है, सावधान चित्त होकर सुनो। मैं तुम्हें सूतका कहा हुआ रामसहस्रनाम सुनाता हूँ । आज जिस तरह तुम मुझसे पूछ रहे हो, उसी तरह शौनकने सुतजीसे पूछा था। उनका प्रश्न सुनकर नैमिषारण्यमें सूतजीने शौनकसे कहा—एक समय लोकरक्षामें तत्पर शिव और पार्वती गलबहियाँ डाले हुए आनन्दपूर्वक बैठे थे ॥ ४–६ ॥ सर्वश्रेष्ठ देवता शिव और पार्वतीकी सेवामें इन्द्रादि लोकपाल उपस्थित थे। उस समय शिव-पार्वतीमें कोई धार्मिक चर्चा चल रही थी। समय पाकर पार्वतीने शिवजीसे कहा-हे हमारे प्रभु जगत्के प्रभु, सर्वज्ञ एवं परमेश्वर ! आपकी कृपासे मैंने समस्त धर्मशास्त्र जान लिया । पापोंका प्रायश्चित्त किस तरह हो सकता है, सो भी सुन चुकी।

CC-0. In Public Domain Kirtikant Sharma Rajatgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

श्रीमहादेव उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि गुह्याद्गुह्यतरं महत् । सनत्कुमारविघ्नेशसंवादं पापनाशनम् ॥१०॥
उपविष्टं गणाध्यक्षमेकान्ते प्रणिपत्य च । सनत्कुमारः पप्रच्छ सर्वधर्मविदां वरम् ॥११॥

सनत्कुमार उवाच

भगवन् सर्वधर्मज्ञ सर्वविघ्नविनाशन । द्विजहत्याहरं धर्मं वक्तुमर्हसि मे प्रभो ॥१२॥
विना भवन्तं धर्मस्य वक्ता नास्ति जगत्त्रये ।

श्रीगणेश उवाच

साधु पृष्टं त्वया ब्रह्मन्सर्वलोकोपकारकम् ॥१३॥
मया चिरं कृतं कर्म स्मारितं भवताऽनघ । पुराऽहं गजरूपेण जातः पर्वतसन्निभः ॥१४॥
ततो वृक्षान्समुत्पाट्य मुनिहिंसां समारभम् । तदा मया मुनिगणा निहता बहवो बलात् ॥१५॥
हाहाकारो महानासीद्ब्राह्मणानां समन्ततः । तदा हत्यासहस्रेण वेष्टितः पतितोऽस्म्यहम् ॥१६॥
निःसंज्ञं मृततुल्यं मां पतितं वीक्ष्य मे पिता । आराध्य जगतामीशं रामं सर्वहृदि स्थितम् ॥१७॥
प्रत्यक्षमकरोद्देव मद्धेतो रघुनन्दनम् । तदा प्रोवाच भगवान् श्रीरामः पितरं मम ॥१८॥

श्रीराम उवाच

प्रसन्नोऽस्मि महादेव किं मां प्रार्थयसे प्रभो । दास्यामि यदभीष्टं ते त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥१९॥

श्रीमहादेव उवाच

द्विजहत्यासमाविष्टं मम पुत्रमिमं प्रभो । निष्पापं कुरु देवेश यद्यस्ति मयि ते दया ॥२०॥

श्रीगणेश उवाच

तथेत्युक्त्वा तदा तेन कृपयाऽहं निरीक्षितः । तत्क्षणाल्लब्धचैतन्यो निर्मलज्ञानबृंहितः ॥२१॥
बहुभिर्गद्यपद्यैश्च स्तुत्वा तं प्रणतोऽभवम् ।

अब आप मुझपर कृपा करके ब्रह्महत्यादि महापापोंकी निष्कृतिका कोई उपाय बतलाइए। श्रीशिवजी बोले—हे देवि ! मैं तुम्हें अतिशय गूढ़ तथा पापनाशक सनत्कुमार और गणपतिका सम्वाद सुनाता हूँ ॥ ७-१० ॥ एक समय जब कि गणेशजी एकान्तमें बैठे हुए थे, तब सनत्कुमारने जाकर उन्हें प्रणाम किया और कहा—हे भगवन् ! समस्त धर्मोंको जाननेवाले तथा विघ्नके विनाशक हे प्रभो ! मुझे ब्रह्महत्याका विनाश करनेवाला कोई धर्म बतलाइये ॥ ११ ॥ १२ ॥ आपके सिवाय तीनों लोकमें कोई भी धर्मका वक्ता मुझे नहीं दीखता। गणपतिने कहा—हे ब्रह्मन् ! तुमने मुझसे बहुत ठीक प्रश्न किया है। इससे सारे संसारका उपकार होगा ॥ १३ ॥ तुमने एक ही बातसे पूर्वमें किये हुए मेरे सब कर्मोंका स्मरण दिला दिया है। पूर्वकालमें मैं गजरूपसे संसारमें जन्मा था और पर्वतकी भाँति लम्बा-चौड़ा मेरा डील-डौल था ॥ १४ ॥ उस समय मैंने पहले तो बहुतसे वृक्ष उखाड़े। फिर मुनियोंकी हिंसा आरम्भ कर दी। मैंने अपने अपरिमेय बलसे कितने ही मुनियोंका वध कर पापी बन बैठा ॥ १५ ॥ १६ ॥ मेरे होश-हवास ठिकाने न रहे तथा एक मृतककी नाईं मेरी आकृति हो गयी। मेरी दशा देखकर मेरे पिताने संसारके महाप्रभु रामकी आराधना की। इससे प्रसन्न होकर रामचन्द्रजी मेरे पिताके सम्मुख आये और कहने लगे। रामचन्द्रजी बोले—हे महादेव ! मैं तुम्हारे ऊपर अति प्रसन्न हूँ। बतलाओ, तुम किसलिए इस प्रकार मेरी प्रार्थना कर रहे हो ? तुम्हारी कामना यदि तीन लोकमें दुर्लभ होगी तो भी मैं उसे पूर्ण करूंगा ॥ १७-१९ ॥ श्रीशिवजीने कहा—हे प्रभो ! मेरे पुत्र गणेशको ब्रह्महत्या लग गयी है। हे देवेश ! यदि आपकी मुझपर दया हो तो उसे निष्पाप कर दीजिये ॥२०॥ श्रीगणेशजी सनत्कुमारसे कहने लगे-इस प्रकार मेरे पिताकी बातें सुनकर रामचन्द्रने अपनी कृपाभरी दृष्टिसे एक बार मेरी ओर देखा। उनके देखते ही मैं चैतन्य हो गया। मेरेमें एक निर्मल ज्ञानका तत्क्षण संचार हो गया ॥ २१ ॥ तब बहुतसे गद्य-पद्यों द्वारा मैंने भगवान्की

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

श्रीरामचन्द्र उवाच

द्विजहत्यासहस्रस्य प्रायश्चित्तं वदामि ते ॥ २२ ॥

जप नामसहस्रं मे हत्याकोटिविनाशकम् । इति गुह्यं ददौ रामस्तत्त्वं नामसहस्रकम् ॥२३॥
तस्य तद्ग्रहणादेव निष्पापोऽहं तदाऽभवम् । तदारभ्यास्मि देवानां पूज्योऽहं मुनिसत्तम ॥२४॥
त्वमप्येतदधीयानो राघवस्य महात्मना । नाम्नां सहस्रं लोकेषु प्रख्यापय महामते ॥२५॥

सनत्कुमार उवाच

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि कृतार्थोऽस्मि गणाधिप । त्वत्प्रसादान्मयाऽधीतं रामनामसहस्रकम् ॥२६॥

श्रीमहादेव उवाच

इति विज्ञाप्य देवेशं परिक्रम्य प्रणम्य च । तदादि सततं जप्त्वा स्तोत्रमेतद्वरानने ॥२७॥
अवाप परमां सिद्धिं पुण्यपापविवर्जितः ।

श्रीपार्वत्युवाच

श्रोतुमिच्छामि देवेश तदहं सर्वकामदम् ॥ २८ ॥
नाम्नां सहस्रं मां ब्रूहि यद्यस्ति मयि ते दया ।

श्रीमहादेव उवाच

अथ वक्ष्यामि भो देवि रामनामसहस्रकम् । शृणुष्वैकमनाः स्तोत्रं गुह्याद्गुह्यतरं महत् ॥२९॥
ऋषिर्विनायकश्चास्य ह्यनुष्टुप्छन्द उच्यते । परब्रह्मात्मको रामो देवता शुभदर्शने ॥३०॥

ॐअस्य श्रीरामसहस्रनाममालामंत्रस्य विनायक ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीरामो देवता महाविष्णुरिति बीजं गुणभृन्निर्गुणो महानिति शक्तिः सच्चिदानन्दविग्रह इति कीलकं श्रीरामप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः

ॐश्रीरामचन्द्राय अंगुष्ठाभ्यां नमः । सीतापतये तर्जनीभ्यां नमः । रघुनाथाय मध्यमाभ्यां नमः । भरताग्रजाय अनामिकाभ्यां नमः । दशरथात्मजाय कनिष्ठिकाभ्यां नमः । हनुमत्प्रभवे करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः । श्रीरामचन्द्राय हृदयाय नमः । सीतापतये शिरसे स्वाहा । रघुनाथाय शिखायै वषट् । भरताग्रजाय कवचाय हुम् । दशरथात्मजाय नेत्रत्रयाय वौषट् । हनुमत्प्रभवे अस्त्राय फट् ।

स्तुति की और उनके चरणोंमें लोट गया । फिर रामचन्द्रजी कहने लगे—हजारों द्विजहत्याके पापसे उद्धार पानेका उपाय मैं तुम्हें बतलाता हूँ ॥ २२ ॥ मेरे 'रामसहस्रनाम' का जप करोड़ ब्रह्महत्याओंका पाप भी नष्ट कर देता है । ऐसा कहकर रामचन्द्रजीने अपना गुप्त सहस्रनाम मुझे बताया और उसके ग्रहणमात्रसे मेरे पाप नष्ट हो गये । तभीसे हे मुनिसत्तम ! मैं देवताओंका भी पूज्य हो गया हूँ ॥ २३ ॥ २४ ॥ तुम भी इसी रामसहस्रनामका पाठ करते हुए संसारमें इसका प्रचार करो । सनत्कुमारने कहा—मैं धन्य हूँ । मुझपर आपकी बड़ी कृपा है । आपहीकी दयासे मैंने रामसहस्रनाम पा लिया । मैं कृतार्थ हो गया । श्रीशिवजीने कहा—इस तरह उस सहस्रनामको जानकर सनत्कुमारने गणेशजीकी परिक्रमा की, प्रणाम किया और तभीसे नित्य इसका जप करके पुण्य-पापसे विवर्जित होकर वे परम सिद्धिको प्राप्त हुए । पार्वतीजी बोलीं—हे देवेश ! सब कामनाओंको पूर्ण करनेवाले रामसहस्रनामको मैं भी जानना चाहती हूँ । यदि आपकी मुझपर दया रहती हो तो मुझे बताइए । शिवजी कहने लगे—हे देवि ! मैं तुम्हें वह पुनीत सहस्रनाम बतलाता हूँ । तुम भी सावधान मन होकर उस गूढ़ातिगूढ़ स्तोत्रको सुनो ॥ २५–२९ ॥ इस रामसहस्रनाम मंत्रमय स्तोत्रके ऋषि विनायक हैं और साक्षात् परब्रह्म राम इसके देवता हैं ॥ ३० ॥ 'ॐ अस्य श्रीराम' इस मंत्रसे विनियोग करके 'श्रीरामचन्द्राय' कहकर अंगुष्ठ, 'सीतापतये' कहकर तर्जनी, 'रघुनाथाय' कहकर मध्यकी अँगुली, 'भरताग्रजाय' कहकर अनामिका, 'दशरथात्मजाय' कहकर कनिष्ठिका, 'हनुमत्प्रभवे' कहकर दोनों करपृष्ठोंका न्यास करे । फिर 'रामचन्द्राय' कहकर हृदय, 'सीतापतये' कहकर सिर, 'रघुनाथाय' कहकर शिखा, 'भरताग्रजाय' कहकर दोनों बाहुमूल, 'दशरथात्मजाय'

CC0. In Public Domain. Kulbhushan Sharma Rajpatra Delhi Collections.

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अथ ध्यानम्

ध्यायेदाजानुबाहुं धृतशरधनुषं बद्धपद्मासनस्थं
पीतं वासो वसानं नवकमलस्पर्धि नेत्रं प्रसन्नम् ।
वामांकारूढसीतामुखकमलमिलल्लोचनं नीरदाभं
नानालंकारदीप्तं दधतमुरुजटामण्डलं रामचन्द्रम् ॥३१॥

वैदेहीसहितं सुरद्रुमतले हैमे महामण्डपे
मध्ये पुष्पमहासने मणिमये वीरासने संस्थितम् ।
अग्रे वाचयति प्रभंजनसुते तत्त्वं मुनिभ्यः परं
व्याख्यातं भरतादिभिः परिवृतं रामं भजेच्छ्यामलम् ॥३२॥

सौवर्णमंडपे दिव्ये पुष्पके सुविराजिते । मूले कल्पतरोः स्वर्णपीठे सिंहाष्टसंयुते ॥३३॥
मृदुश्लक्ष्णांतरे तत्र जानक्या सह संस्थितम् । रामं नीलोत्पलश्यामं द्विभुजं पीतवाससम् ॥३४॥
स्मितवक्त्रं सुखासीनं पद्मपत्रनिभेक्षणम् । किरीटहारकेयूरकुण्डलैः कटकादिभिः ॥३५॥
भ्राजमानं ज्ञानमुद्राधरं वीरासनस्थितम् । स्पृशन्तं स्तनयोरग्रे जानक्याः सव्यपाणिना ॥३६॥
वसिष्ठवामदेवाद्यैः सेवितं लक्ष्मणादिभिः । अयोध्यानगरे रम्ये ह्यभिषिक्तं रघूद्वहम् ॥३७॥
एवं ध्यात्वा जपेन्नित्यं रामनामसहस्रकम् । हत्याकोटियुतो वाऽपि मुच्यते नात्र संशयः ॥३८॥
ॐ रामः श्रीमान्महाविष्णुर्जिष्णुर्देवहितावहः । तत्त्वात्मा तारकं ब्रह्म शाश्वतः सर्वसिद्धिदः ॥३९॥
राजीवलोचनः श्रीमाँश्छ्रीरामो रघुपुंगवः । रामभद्रः सदाचारो राजेंद्रो जानकीपतिः ॥४०॥
अग्रगण्यो वरेण्यश्च वरदः परमेश्वरः । जनार्दनो जितामित्रः परार्थैकप्रयोजनः ॥४१॥

से दोनों नेत्र छुए तथा 'हनुमत्प्रभवे' कहकर चुटकी बजावे । अथ ध्यानम् । जिनका आजानु बाहु है, जो धनुष-बाण धारण किये हैं, पद्मासन मारकर बैठे हैं, पीले वस्त्र पहने हैं, नूतन कमलदलसे होड़ करनेवाली जिनकी दोनों आँखें हैं, जिनके वामांगमें सीताजी बैठी हैं, सीता तथा राम दोनों आपसमें एक दूसरेके मुखकी शोभा देखनेमें संलग्न हैं, नवीन मेघके सदृश जिनका मुख है, ऐसे विविध प्रकारके अलंकारोंसे अलंकृत तथा लम्बी-लम्बी जटा धारण करनेवाले रामचन्द्रका ध्यान करे ॥ ३१ ॥ कल्पवृक्षके नीचे सीताजीके साथ एक सुन्दर सुवर्णके मण्डपमें पुष्पनिर्मित महासन, जिसमें अनेक प्रकारकी मणियाँ जड़ी हैं, उसपर श्रीराम वीरासनसे बैठे हुए हैं। उनके सामने बैठे हनुमान्‌जी मुनियोंको परम तत्त्वकी व्याख्या सुना रहे हैं। भरतादि तीनों भ्राता जिनकी बगल-बगल खड़े हैं। ऐसे श्यामस्वरूप रामका भजन करे ॥ ३२ ॥ सुवर्णनिर्मित दिव्य पुष्पक विमान कल्पतरुके नीचे रक्खा है। जिसमें आठ सिंह लगे हैं। जो कोमल और चिकनी है, ऐसी गद्दीपर सीताके साथ बैठे हुए हैं, नीलकमल सरीखे जिनके नेत्र हैं, दो भुजाएँ हैं, पीत वस्त्र हैं, मुस्कुराता हुआ मुख है और वे आनन्दसे बैठे हैं। किरीट, हार, केयूर, कुण्डल और कटकादिसे वे सुशोभित हो रहे हैं। वे एक ओर ज्ञानमुद्रा धारण किये हैं। दूसरी तरफ दायें हाथसे सीताके स्तनोंको सहला रहे हैं ॥ ३३-३६ ॥ वसिष्ठ, वामदेव तथा लक्ष्मणादिक जिनकी सेवामें तत्पर हैं। अयोध्या नगरीमें जिनका राज्याभिषेक हो चुका है। ऐसे रघूद्वह रामचन्द्रजीका ध्यान करके सर्वदा इस रामसहस्रनामका पाठ करना चाहिए। ऐसा करनेसे यदि किसीको करोड़ों हत्यायें भी लगी हों तो दूर हो जाती हैं। इसमें किसी प्रकारका संशय नहीं करना चाहिए ॥३७॥३८॥ ॥ ३८ ॥ अब सहस्रनाम कहते हैं--राम, श्रीमान्, महाविष्णु, जिष्णु (सबको जीतनेवाले), देवहितावह (देवताओंका कल्याण करनेवाले), तत्त्वात्मस्वरूप, तारकब्रह्म, शाश्वत, सर्वसिद्धिद (सब प्रकारकी सिद्धियों-को देनेवाले) ॥ ३९ ॥ कमल सरीखे नेत्रवाले, श्रीराम, रघुवंशमें श्रेष्ठ, रामभद्र, सदाचार (पुनीत आचारवाले) राजेंद्र, जानकीके पति ॥ ४० ॥ सबके अग्रसर, वरेण्य (सर्वश्रेष्ठ), वरद (वरदायक)

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

विश्वामित्रप्रियो दाता शत्रुजिच्छत्रुतापनः । सर्वज्ञः सर्ववेदादिः शरण्यो वालिमर्दनः ॥४२॥
ज्ञानभव्योऽपरिच्छेद्यो वाग्मी सत्यव्रतः शुचिः । ज्ञानगम्यो दृढप्रज्ञः खरध्वंसी प्रतापवान् ॥४३॥
द्युतिमानात्मवान् वीरो जितक्रोधोऽरिमर्दनः । विश्वरूपो विशालाक्षः प्रभुः परिवृढो दृढः ॥४४॥
ईशः खड्गधरः श्रीमान् कौसल्येयोऽनसूयकः । विपुलांसो महोरस्कः परमेष्ठी परायणः ॥४५॥
सत्यव्रतः सत्यसंधो गुरुः परमधार्मिकः । लोकेशो लोकवंद्यश्च लोकात्मा लोककृद्विभुः ॥४६॥
अनादिर्भगवान् सेव्यो जितमायो रघूद्वहः । रामो दयाकरो दक्षः सर्वज्ञः सर्वपावनः ॥४७॥
ब्रह्मण्यो नीतिमान् गोप्ता सर्वदेवमयो हरिः । सुन्दरः पीतवासाश्च सूत्रकारः पुरातनः ॥४८॥
सौम्यो महर्षिः कोदण्डः सर्वज्ञः सर्वकोविदः । कविः सुग्रीववरदः सर्वपुण्याधिकप्रदः ॥४९॥
भव्यो जितारिषड्वर्गो महोदारोऽघनाशनः । सुकीर्तिरादिपुरुषः कांतः पुण्यकृतागमः ॥५०॥
अकल्मषश्चतुर्बाहुः सर्वावासो दुरासदः १०० । स्मितभाषी निवृत्तात्मा स्मृतिमान् वीर्यवान् प्रभुः ॥५१॥
धीरो दांतो घनश्यामः सर्वायुधविशारदः । अध्यात्मयोगनिलयः सुमना लक्ष्मणाग्रजः ॥५२॥
सर्वतीर्थमयः शूरः सर्वयज्ञफलप्रदः । यज्ञस्वरूपो यज्ञेशो जरामरणवर्जितः ॥५३॥

परमेश्वर, जनार्दन, जितामित्र (शत्रुओंको परास्त करनेवाले), परार्थैकप्रयोजन (परोपकार करना ही जिनका एकमात्र प्रयोजन है), विश्वामित्रके प्रिय, ज्ञाता, शत्रुओंको जीतनेवाले, शत्रुतापन (शत्रुको तपानेवाले), सर्वज्ञ, सर्ववेदादि (समस्त वेदोंके आदि कारण), शरण्य, वालिमर्दन (वालिको परास्त करनेवाले), ज्ञानभव्य, परिच्छेद्य, वाग्मी (कुशल वक्ता), सत्यव्रत, शुचि (पवित्र), ज्ञानगम्य (ज्ञानद्वारा जानने योग्य), दृढ़तम (स्थिर बुद्धिवाले), खरध्वंसी, प्रतापवान्, आत्मवान्, वीर, जितक्रोध (जिन्होंने क्रोधको जीत लिया है), अरिमर्दन (शत्रुको नीचा दिखानेवाले), विश्वस्वरूप (संसार ही जिनका स्वरूप है), विशालाक्ष (बड़ी-बड़ी आँखोंवाले), प्रभु (समस्त जगत्के ईश्वर) परिवृढ़ (सतर्क) ॥ ४१–४४ ॥ ईश (सब संसारके स्वामी), खड्गधर (तलवार धारण करनेवाले), श्रीमान्, कौसल्येय (कौसल्याके पुत्र), अनसूयक (किसीसे ईर्ष्या न करनेवाले), विपुलांस (जिनके खूब चौड़े कन्धे हैं), महोरस्क (जिनकी विशाल छाती है), परमेष्ठी (जो ब्रह्मास्वरूप हैं), सत्यव्रतपरायण (सत्यव्रती), सत्यसंघ (सत्यप्रतिज्ञ), गुरु (सर्वश्रेष्ठ), परम धार्मिक, लोकज्ञ (सब लोकोंके ज्ञाता), लोकवंद्य (सब लोकोंसे वन्दनीय), लोकात्मा (सब लोकोंके आत्मा), लोककृत (लोकोंके रचयिता), विभु (सर्वव्यापी) ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ अनादि (जिनका आदि नहीं है), भगवान् (सर्वसम्पत्तिशाली), सेव्य (सेवा योग्य), जितमाय (मायाको जीतनेवाले), रघूद्वह (रघुवंशके उजागरकर्ता), राम, दयाकर (दयाके खानिस्वरूप), दक्ष (सब कार्योंमें निपुण), सर्वज्ञ, सर्वपावन (सबको पुनीत करनेवाले), ब्रह्मण्य (ब्राह्मणभक्त); नीतिमान्, गोप्ता (सर्वरक्षक), सर्वदेवमय, हरि, सुन्दर, पीतवासा (पीले वस्त्र धारण करनेवाले), पुरातन सूत्रकार (सर्वप्राचीन सूत्रकार अर्थात् सूत्ररूपमें ग्रंथोंके रचयिता), पुरातन (सबसे प्राचीन) ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ सौम्य (जिनका सरल स्वभाव है), महर्षि, कोदण्ड (धनुर्धर), सर्वज्ञ, सर्वकोविद (सब विषयोंके पूर्ण पण्डित), कवि, सुग्रीववरद (सुग्रीवको अभयवर देनेवाले), सर्वपुण्याधिकप्रद (सब पुण्योंसे भी अधिक फल देनेवाले) ॥ ४९ ॥ भव्य, जितारिषड्वर्ग (जिन्होंने अपने बलसे शत्रुके मंत्र-उत्साहादि छः वर्गोंको जीत लिया है), महोदार (जो सबसे उदार हैं), अघनाशन (पापका नाश करनेवाले, सुकीर्ति (जिनकी सुन्दर कीर्ति है), आदिपुरुष (जो सबके आदि पुरुष हैं), कान्त (सर्वप्रिय), पुण्यकृतागम (पवित्रविचारसम्पन्न), अकल्मष (पापरहित), चतुर्बाहु (चतुर्भुज), सर्वावास (सबके निवासस्थान), दुरासद (बड़ी कठिनाईसे प्राप्य १००) स्मितभाषी (मुस्कुराते हुए बातें करनेवाले), निवृत्तात्मा (जिनकी आत्मा स्वतन्त्र है), जो स्मृतिमान्, वीर्यवान् और सबके प्रभु हैं। धीर, दान्त (उदारप्रकृति), घनश्याम (मेघकी नाईं श्यामस्वरूप), सर्वायुधविशारद (सब शस्त्रास्त्रोंमें निपुण), अध्यात्मयोगनिलय (अध्यात्मयोगके निवास), सुमना (सुन्दर चित्तवाले), लक्ष्मणाग्रज (लक्ष्मणके बड़े भ्राता), ॥ ५०–५२ ॥ तीर्थमय, शूर (असाधारण योद्धा), सर्वयज्ञफलप्रद (सब यज्ञोंके फलदाता) यज्ञस्वरूप

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वर्णाश्रमगुरुर्वर्णी शत्रुजित्पुरुषोत्तमः । शिवलिंगप्रतिष्ठाता परमात्मा परात्परः ॥५४॥
प्रमाणभूतो दुर्ज्ञेयः पूर्णः परपुरंजयः । अनन्तदृष्टिरानन्दो धनुर्वेदो धनुर्धरः ॥५५॥
गुणाकरो गुणश्रेष्ठः सच्चिदानन्दविग्रहः । अभिवाद्यो महाकायो विश्वकर्मा विशारदः ॥५६॥
विनीतात्मा वीतरागस्तपस्वीशो जनेश्वरः । कल्याणः प्रह्वतिः कल्पः सर्वेशः सर्वकामदः ॥५७॥
अक्षयः पुरुषः साक्षी केशवः पुरुषोत्तमः । लोकाध्यक्षो महाकार्यो विभीषणवरप्रदः ॥५८॥
आनन्दविग्रहो ज्योतिर्हनुमत्प्रभुरव्ययः । भ्राजिष्णुः सहनो भोक्ता सत्यवादी बहुश्रुतः ॥५९॥
सुखदः कारणं कर्ता भवबन्धविमोचनः । देवचूडामणिर्नेता ब्रह्मण्यो ब्रह्मवर्धनः ॥६०॥
संसारतारको रामः सर्वदुःखविमोक्षकृत् । विद्वत्तमो विश्वकर्ता विश्वकृद्विश्वकर्म च ॥६१॥
नित्यो नियतकल्याणः सीताशोकविनाशकृत् । काकुत्स्थः पुण्डरीकाक्षो विश्वामित्रभयापहः ॥६२॥
मारीचमथनो रामो विराधवधपण्डितः । दुःस्वप्ननाशनो रम्यः किरीटी त्रिदशाधिपः ॥६३॥
महाधनुर्महाकायो भीमो भीमपराक्रमः । तत्त्वस्वरूपस्तत्त्वज्ञस्तत्त्ववादी सुविक्रमः ॥६४॥
भूतात्मा भूतकृत्स्वामी कालज्ञानी महावपुः । अनिर्विण्णो गुणग्रामो निष्कलंकः कलंकहा ॥६५॥
स्वभावभद्रः शत्रुघ्नः केशवः स्थाणुरीश्वरः । भूतादिः शंभुरादित्यः स्थविष्ठः शाश्वतो ध्रुवः ॥६६॥
कवची कुण्डली चक्री खड्गी भक्तजनप्रियः । अमृत्युर्जन्मरहितः सर्वजित्सर्वगोचरः ॥६७॥
अनुत्तमोऽप्रमेयात्मा सर्वात्मा गुणसागरः२०० । समः समात्मा समगो जटामुकुटमण्डितः ॥६८॥
अजेयः सर्वभूतात्मा विष्वक्सेनो महातपाः । लोकाध्यक्षो महाबाहुरमृतो वेदवित्तमः ॥६९॥

(यज्ञके मूर्त रूप), यज्ञेश (यज्ञोंके स्वामी), जरामरणवर्जित (बुढ़ापा और मृत्यु दोनोंसे रहित), वर्णाश्रमगुरु (वर्ण और आश्रमके गुरु), शत्रुजित् (शत्रुओंको जीतनेवाले) पुरुषोत्तम (सब पुरुषोंमें श्रेष्ठ), शिवलिंगप्रतिष्ठाता (विविध शिवलिंगोंके संस्थापक), परमात्मा, परात्पर, प्रमाणभूत (विश्वके प्रमाणस्वरूप), दुर्ज्ञेय (बड़ी कठिनाईसे जानने योग्य), पूर्ण, परपुरञ्जय (शत्रुनगरोंके विजेता), अनन्तदृष्टि (अपारदृष्टि), आनन्द, धनुर्वेदके ज्ञाता, धनुर्धारी, गुणाकर (गुणोंके भण्डार), गुणश्रेष्ठ (सब गुणोंमें श्रेष्ठ), सच्चिदानन्दविग्रह (सत् चित् आनन्द इन तीनोंसे जिनका शरीर बना है), अभिवाद्य (सबके वन्दनीय), महाकाय, विश्वकर्मा, विशारद ॥ ५३–५६ ॥ विनीत आत्मावाले, वीतराग (रागद्वेषशून्य), तपस्वीश (तपस्वियोंके स्वामी), जनेश्वर, कल्याण (कल्याणस्वरूप), प्रह्वत्ति (सदा प्रसन्न), कल्प (स्थिति तथा प्रलयकालके अधिपति), सर्वेश, सर्वकामद, अक्षय, पुरुष, साक्षी, केशव, पुरुषोत्तम, लोकाध्यक्ष, महाकार्य, विभीषणवरप्रद ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ आनन्दविग्रह (आनन्दके मूर्त रूप), ज्योतिस्वरूप, हनुमान्के स्वामी, अविनाशी, भ्राजिष्णु (दीप्तिसम्पन्न), सहनशील, भोक्ता, सत्यवादी बहुश्रुत ॥ ५९ ॥ सुखदायी, कारणस्वरूप, कर्त्ता, भवबन्धनसे छुड़ानेवाले, देवताओंके मूर्धन्य, ब्राह्मणभक्त, ब्राह्मणोंके उन्नायक ॥ ६० ॥ संसारसागरसे तारनेवाले, सब दुःखोंसे छुड़ानेवाले, अतिशय विद्वान्, विश्वरचयिता, विश्वकर्त्ता, विश्वके कर्तव्य कर्मस्वरूप ॥ ६१ ॥ नित्य, कल्याणतत्पर, सीताशोकनाशक, काकुत्स्थ, कमलनयन, विश्वामित्रभयहारी ॥ ६२ ॥ मारीचघाती, राम, विराधवधमें निपुण, दुःस्वप्ननिवारक, रमणीक, किरीटधारी, देवाधिपति ॥ ६३ ॥ विशाल धनुष धारण करनेवाले, विशालकाय, भयानक, भयानक पराक्रम-सम्पन्न, तत्त्वोंके मूर्तरूप, तत्त्वोंके ज्ञाता, तत्त्वविषयके वक्ता, असाधारण पराक्रमी ॥ ६४ ॥ प्राणिमात्रके स्रष्टा, सबके स्वामी, समयके पारखी, विशालशरीरधारी, सदा प्रसन्न, गुणधाम, निष्कलंक, कलंकनाशक ॥ ६५ ॥ स्वभावतः कल्याणकारी, शत्रुनाशक, केशव, चिरस्थायी, ईश्वर, प्राणियोंके आदि, शम्भु, अदिति-तनय, स्थायी, नित्य, अटल ॥ ६६ ॥ कवचधारी, कुण्डलधारी, चक्रधारी, खड्गधारी, भक्तजनोंके प्रिय, अमर, अजन्मा, सबके विजेता, सर्वदर्शी ॥ ६७ ॥ सर्वोत्तम, अप्रमेयात्मा, सर्वात्मा, गुणसागर २०० । सदा सम, प्रकृति, समात्मा, समगामी, जटामुकुटविमण्डित ॥ ६८ ॥ अजेय, सर्वभूतात्मा, विष्वक्सेन, महातपा,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सहिष्णुः सद्गतिः शास्ता विश्वयोनिर्महाद्युतिः । अतींद्र ऊर्जितः प्रांशुरुपेंद्रो वामनो बलिः ॥७०॥
धनुर्वेदो विधाता च ब्रह्मा विष्णुश्च शंकरः । हंसो मरीचिर्गोविंदो रत्नगर्भो महद्द्युतिः ॥७१॥
व्यासो वाचस्पतिः सर्वदर्पितासुरमर्दनः । जानकीवल्लभः श्रीमान् प्रकटः प्रीतिवर्द्धनः ॥७२॥
सम्भवोऽतींद्रियो वेद्यो निर्देशो जाम्बवत्प्रभुः । मदनो मन्मथो व्यापी विश्वरूपो निरंजनः ॥७३॥
नारायणोऽग्रणी साधुर्जटायुप्रीतिवर्द्धनः । नैकरूपो जगन्नाथः सुरकार्यहितः प्रभुः ॥७४॥
जितक्रोधो जितारातिः प्लवगाधिपराज्यदः । वसुदः सुभुजो नैकमायो भव्यः प्रमोदनः ॥७५॥
चण्डांशुः सिद्धिदः कल्पः शरणागतवत्सलः । अगदो रोगहर्ता च मन्त्रज्ञो मन्त्रभावनः ॥७६॥
सौमित्रिवत्सलो धुर्यो व्यक्ताव्यक्तस्वरूपधृक् । वसिष्ठो ग्रामणीः श्रीमाननुकूलः प्रियंवदः ॥७७॥
अतुलः सात्त्विको धीरः शरासनविशारदः । ज्येष्ठः सर्वगुणोपेतः शक्तिमांस्ताटकांतकः ॥७८॥
वैकुण्ठः प्राणिनां प्राणः कमलः कमलाधिपः । गोवर्धनधरो मत्स्यरूपः कारुण्यसागरः ॥७९॥
कुम्भकर्णप्रभेत्ता च गोपिगोपालसंवृतः ३०० । मायावी व्यापको व्यापी रेणुकेयबलापहः ॥८०॥
पिनाकमथनो वंद्यः समर्थो गरुडध्वजः । लोकत्रयाश्रयो लोकभरितो भरताग्रजः ॥८१॥
श्रीधरः संगतिर्लोकसाक्षी नारायणो विभुः । मनोरूपी मनोवेगी पूर्णः पुरुषपुंगवः ॥८२॥
यदुश्रेष्ठो यदुपतिर्भूतावासः सुविक्रमः । तेजोधरो धराधरश्चतुर्मूर्तिर्महानिधिः ॥८३॥
चाणूरमथनो वंद्यः शांतो भरतवंदितः । शब्दातिगो गभीरात्मा कोमलांगः प्रजागरः ॥८४॥
लोकोर्ध्वगः शेषशायी क्षीराब्धिनिलयोऽमलः । आत्मज्योतिरदीनात्मा सहस्रार्चिः सहस्रपात् ॥८५॥
अमृतांशुर्महीगर्तो निवृत्तविषयस्पृहः । त्रिकालज्ञो मुनिः साक्षी विहायसगतिः कृती ॥८६॥
पर्जन्यः कुमुदो भूतावासः कमललोचनः । श्रीवत्सवक्षाः श्रीवासो वीरहा लक्ष्मणाग्रजः ॥८७॥
लोकाभिरामो लोकारिमर्दनः सेवकप्रियः । सनातनतमो मेघश्यामलो राक्षसांतकः ॥८८॥

लोकोंके स्वामी, महाबाहु, अमृत, वेदज्ञोंमें श्रेष्ठ ॥ ६९ ॥ सहिष्णु, सद्गति, शासक, विश्वयोनि, परमकान्तिसम्पन्न, अतीन्द्र (इन्द्रसे श्रेष्ठ), तेजःसम्पन्न, सर्वोच्च, उपेन्द्र, वामन, बलि, ॥ ७० ॥ धनुर्वेदविधाता, ब्रह्मा, विष्णु, शंकर, हंस, मरीचि, गोविन्द, रत्नगर्भ, महातेजस्वी ॥ ७१ ॥ व्यास, बृहस्पति, सभी अभिमानी असुरोंके घातक, जानकीवल्लभ, श्रीमान्, प्रकट, प्रीतिवर्धन ॥ ७२ ॥ संभव, अतीन्द्रिय, वेद्य, निर्देश, जाम्बवान्के स्वामी, मदन, मन्मथ, सर्वव्यापी, विश्वरूप, निरञ्जन ॥ ७३ ॥ नारायण, अग्रणी, साधु, जटायुके प्रीतिवर्धक, अनेकरूप, जगन्नाथ, देवकार्यसाधक, प्रभु ॥ ७४ ॥ जितक्रोध, शत्रुविजेता, सुग्रीवराज्यदायक, वसुदाता, बहुभुज, विविधमायाधारी, भव्य, प्रमोदन ॥ ७५ ॥ चण्डांशु, सिद्धिदायक, कल्प, शरणागतवत्सल, अगद, रोगहर्ता, मन्त्रज्ञ, मंत्रभावन ॥ ७६ ॥ लक्ष्मणप्रिय, धुर्य, व्यक्त-अव्यक्तरूपधारी, वसिष्ठ, ग्रामीण, श्रीमान्, अनुकुल, प्रियवादी ॥ ७७ ॥ अतुलनीय, सात्त्विक, धीर, धनुर्विद्यामें निपुण, श्रेष्ठ, सर्वगुणसम्पन्न, शक्तिमान्, ताड़काके घातक ॥ ७८ ॥ वैकुण्ठ, प्राणियोंके प्राण, कर्मठ, कमलापति, गोवर्धनधारी, मत्स्यरूपधारी, करुणासागर ॥ ७९ ॥ कुम्भकर्णके नाशक, गोपीगोपालसंवृत ३००, मायावी, व्यापक, व्यापी, रेणुकेय (परशुरामके बलनाशक) ॥ ८० ॥ धनुषभंजक, वंद्य, समर्थ, गरुडध्वज, तीनों लोकोंके आश्रय, लोकभरित, भरतके बड़े भ्राता ॥ ८१ ॥ श्रीधर, सङ्गति, लोकसाक्षी, नारायण, विभु, मनोरूपी, मनोवेगी, पूर्ण, पुरुष-पुंगव ॥ ८२ ॥ यदुश्रेष्ठ, यदुपति, भूतावास, सुविक्रम, तेजोधर, धराधर, चतुर्मूर्ति, महानिधि ॥ ८३ ॥ चाणूरमथन, वंद्य, शान्त, भरतवन्दित, शब्दलिंग, गभीरात्मा, कोमलांग, प्रजागर ॥ ८४ ॥ लोकोर्ध्वगामी, शेषशायी, क्षीराब्धिनिलय, अमल, आत्मज्योति, अदीनात्मा, सहस्रार्चि, सहस्रचरण ॥ ८५ ॥ अमृतांशु, महीगर्त, विषयकी स्पृहासे रहित, त्रिलोकज्ञ, मुनि, साक्षी, विहायसगति, कृती ॥ ८६ ॥ पर्जन्य, कुमुद, भूतावास, कमललोचन, श्रीवत्सवक्षा, श्रीवास, वीरहा, लक्ष्मणाग्रज ॥ ८७ ॥ लोकाभिराम, लोका-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दिव्यायुधधरः श्रीमानप्रमेयो जितेंद्रियः । भूदेववंद्यो जनकप्रियकृत्प्रपितामहः ॥८९॥
उत्तमः सात्त्विकः सत्यः सत्यसन्धस्त्रिविक्रमः । सुवृत्तः सुगमः सूक्ष्मः सुघोषः सुखदः सुहृत् ॥९०॥
दामोदरोऽच्युतः शार्ङ्गी वामनो मथुराधिपः । देवकीनन्दनः शौरिः शूरः कैटभमर्दनः ॥९१॥
सप्ततालप्रभेत्ता च मित्रवंशप्रवर्धनः । कालस्वरूपी कालात्मा कालः कल्याणदः ४०० कलिः ॥९२॥
संवत्सरो ऋतुः पक्षो ह्ययनं दिवसो युगः । स्तव्यो विविक्तो निर्लेपः सर्वव्यापी निराकुलः ॥९३॥
अनादिनिधनः सर्वलोकपूज्यो निरामयः । रसो रसज्ञः सारज्ञो लोकसारो रसात्मकः ॥९४॥
सर्वदुःखातिगो विद्याराशिः परमगोचरः । शेषो विशेषो विगतकल्मषो रघुपुङ्गवः ॥९५॥
वर्णश्रेष्ठो वर्णभाव्यो वर्णो वर्णगुणोज्ज्वलः । कर्मसाक्षी गुणश्रेष्ठो देवः सुरवरप्रदः ॥९६॥
देवाधिदेवो देवर्षिर्देवासुरनमस्कृतः । सर्वदेवमयश्चक्री शार्ङ्गपाणी रघूत्तमः ॥९७॥
मनोगुप्तिरहंकारः प्रकृतिः पुरुषोऽव्ययः । न्यायो न्यायी नयी श्रीमान् नयो नगधरो ध्रुवः ॥९८॥
लक्ष्मीविश्वम्भरो भर्ता देवेंद्रो बलिमर्दनः । बाणारिमर्दनो यज्वानुत्तमो मुनिसेवितः ॥९९॥
देवाग्रणीः शिवध्यानतत्परः परमः परः । सामगेयः प्रियः शूरः पूर्णकीर्तिः सुलोचनः ॥१००॥
अव्यक्तलक्षणो व्यक्तो दशास्यद्विपकेसरी । कलानिधिः कलानाथः कमलानन्दवर्द्धनः ॥१०१॥
पुण्यः पुण्याधिकः पूर्णः पूर्वः पूरयिता रविः । जटिलः कल्मषध्वांतप्रभञ्जनविभावसुः ॥१०२॥
जयी जितारिः सर्वादिः शमनो भवभंजनः । अलंकरिष्णुरचलो रोचिष्णुर्विक्रमोत्तमः ॥१०३॥
आशुः शब्दपतिः शब्दागोचरो रंजनो लघुः । निःशब्दपुरुषो मायी स्थूलः सूक्ष्मो ५०० विलक्षणः ॥
आत्मयोनिरयोनिश्च सप्तजिह्वः सहस्रपात् । सनातनतमः स्रग्वी पेशलो विजितांबरः ॥१०५॥
शक्तिमान् शंखभृन्नाथो गदाधररथांगभृत् । निरीहो निर्विकल्पश्च चिद्रूपो वीतसाध्वसः ॥१०६॥
सनातनः सहस्राक्षः शतमूर्तिर्घनप्रभः । हृत्पुंडरीकशयनः कठिनो द्रव एव च ॥१०७॥
सूर्यो ग्रहपतिः श्रीमान् समर्थोऽनर्थनाशनः । अधर्मशत्रू रक्षोघ्नः पुरुहूतः पुरस्तुतः ॥१०८॥

रिमर्दन, सेवकप्रिय, सनातनतम, मेघश्यामल, राक्षसान्तक ॥ ८८ ॥ दिव्यायुधधर, श्रीमान्, अप्रमेय, जितेन्द्रिय, विप्रवंद्य, पिताके प्रियकर्ता, प्रपितामह ॥ ८९ ॥ उत्तम, सात्त्विक, सत्य, सत्यसन्ध, त्रिविक्रम, सुवृत्त, सुगम, सूक्ष्म, सुघोष, सुखद, सुहृत् ॥ ९० ॥ दामोदर, अच्युत, शार्ङ्गी, वामन, मथुराधिपति, देवकीनन्दन, वासुदेव, शूर, कैटभमर्दन ॥ ९१ ॥ सप्ततालप्रभेत्ता, मित्रवंशवर्धन, कालस्वरूपी, कालात्मा, काल, कल्याणद ४०० कलि, ॥ ९२ ॥ संवत्सर, ऋतु, पक्ष, अयन, युग, स्तव्य, विविक्त, निर्लेप, सर्वव्यापी, निराकुल ॥ ९३ ॥ अनादिनिधन, सर्वलोकपूज्य, निरामय, रस, रसज्ञ, सारज्ञ, लोकसार, रसात्मक ॥ ९४ ॥ सर्वदुःखातिग, विद्याराशि, परमगोचर, शेष, विशेष, विगतकलमष, रघुपुङ्गव, ॥ ९५ ॥ वर्णश्रेष्ठ, वर्णभाव्य, वर्ण, वर्णगुणोज्ज्वल, कर्मसाक्षी, गुणश्रेष्ठ, देव, सुखप्रद ॥ ९६ ॥ देवाधिदेव, देवर्षि, देवासुरनमस्कृत, सर्वदेवमय, चक्री, शार्ङ्गपाणि, रघूत्तम, ॥ ९७ ॥ मन-बुद्धि-अहंकार, प्रकृति, पुरुष, अव्यय, न्याय, न्यायी, नयी, श्रीमान्, नय, नगधर, ध्रुव, ॥ ९८ ॥ लक्ष्मी-विश्वम्भर, भर्ता, देवेन्द्र, बलिमर्दन, बाणारिमर्दन, यज्वा, उत्तम, मुनिसेवित ॥ ९९ ॥ देवाग्रणी, शिवध्यानतत्पर, परम, पर, सामगेय, प्रिय, शूर, पूर्णकीर्ति, सुलोचन ॥ १०० ॥ अव्यक्तलक्षण, व्यक्त, दशास्यद्विपकेसरी, कलानिधि, कलानाथ, कमलानन्दवर्धन ॥ १०१ ॥ पुण्याधिक, पूर्ण, पूरयिता, रवि, जटिल, कलमषोंको ध्वस्त करनेवाले, अग्नि ॥ १०२ ॥ जयी, जितारि, सर्वादि, शमन, भवभञ्जन, अलंकरिष्णु, अचल, रोचिष्णु, विक्रमोत्तम ॥ १०३ ॥ आशु, शब्दपति, शब्दागोचर, रंजन, लघु, निःशब्द, पुरुष, मायी, स्थूल, सूक्ष्म ५००, विलक्षण ॥१०४॥ आत्मयोनि, अयोनि, सप्तजिह्व, सहस्रपात, सनातनतम, स्रग्वी, पेशल, विजिताम्बर ॥ १०५ ॥ शक्तिमान्, शंखभृत्, नाथ, गदाधर, रथांगभृत्, निरीह, निर्विकल्प, चिद्रूप, वीतसाध्वस ॥ १०६ ॥ सनातन,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ब्रह्मगर्भो बृहद्गर्भो धर्मधेनुर्धनागमः । हिरण्यगर्भो ज्योतिष्मान् सुललाटः सुविक्रमः ॥१०९॥
शिवपूजारतः श्रीमान् भवानीप्रियकृद्वशी । नरो नारायणः श्यामः कपर्दी नीललोहितः ॥११०॥
रुद्रः पशुपतिः स्थाणुर्विश्वामित्रो द्विजेश्वरः । मातामहो मातरिश्वा विरिंचिर्विष्टरश्रवाः ॥१११॥
अक्षोभ्यः सर्वभूतानां चण्डः सत्यपराक्रमः । बालखिल्यो महाकल्पः कल्पवृक्षः कलाधरः ॥११२॥
निदाघस्तपनो मेघः शुक्रः परबलापहृत् । वसुश्रवाः कव्यवाहः प्रतप्तो विश्वभोजनः ॥११३॥
रामो नीलोत्पलश्यामो ज्ञानस्कंदो महाद्युतिः । कबन्धमथनो दिव्यः कम्बुग्रीवः शिवप्रियः ॥११४॥
सुखी नीलः सुनिष्पन्नः सुलभः शिशिरात्मकः । असंसृष्टोऽतिथिः शूरः प्रमाथी पापनाशकृत् ॥११५॥
पवित्रपादः पापारिर्मणिपूरो नभोगतिः । उत्तारणो दुष्कृतिहा दुर्धर्षो दुःसहो बलः६००॥११६॥
अमृतेशोऽमृतवपुर्धर्मी धर्मः कृपाकरः । भगो विवस्वानादित्यो योगाचार्यो दिवस्पतिः॥११७॥
उदारकीर्तिरुद्योगी वाङ्मयः सदसन्मयः । नक्षत्रमानी नाकेशः स्वाधिष्ठानः षडाश्रयः ॥११८॥
चतुर्वर्गफलं वर्णशक्तित्रयफलं निधिः । निधानगर्भो निर्व्याजो निरीशो व्यालमर्दनः ॥११९॥
श्रीवल्लभः शिवारम्भः शांतो भद्रः समंजसः । भूशायी भूतकृद्भूतिर्भूषणो भूतवाहनः ॥१२०॥
अकायो भक्तकायस्थः कालज्ञानी महापटुः । परार्धवृत्तिरचलो विविक्तः श्रुतिसागरः ॥१२१॥
स्वभावभद्रो मध्यस्थः संसारभयनाशनः । वेद्यो वैद्यो वियद्गोप्ता सर्वामरमुनीश्वरः ॥१२२॥
सुरेन्द्रः कारणं कर्मकरः कर्मी ह्यधोक्षजः । धैर्योऽग्रधुर्यो धात्रीशः संकल्पः शर्वरीपतिः ॥१२३॥
परमार्थगुरुर्दृष्टिः सुचिराश्रितवत्सलः । विष्णुर्जिष्णुर्विभुर्यज्ञो यज्ञेशो यज्ञपालकः ॥१२४॥
प्रभुर्विष्णुर्ग्रसिष्णुश्च लोकात्मा लोकपालकः । केशवः केशिहा काव्यः कविः कारणकारणम् ॥१२५॥
कालकर्ता कालशेषो वासुदेवः पुरुष्टुतः । आदिकर्ता वराहश्च वामनो मधुसूदनः ॥१२६॥
नारायणो नरो हंसो विष्वक्सेनो जनार्दनः । विश्वकर्ता महायज्ञो ज्योतिष्मान्पुरुषोत्तमः७००।१२७

सहस्राक्ष, शतमूर्ति, धनप्रद, हृत्पुण्डरीकशयन, कठिन, द्रव ॥ १०७ ॥ सूर्य, ग्रहपति, श्रीमान्, समर्थ, अनर्थनाशन, अधर्मशत्रु, रक्षोघ्न, पुरुहूत, पुरुष्टुत, ॥ १०८ ॥ ब्रह्मगर्भ, बृहद्गर्भ, धर्मधेनु, धनागम, हिरण्यगर्भ, ज्योतिष्मान्, सुललाट, सुविक्रम ॥ १०९ ॥ शिवपूजारत, श्रीमान्, भवानीप्रियकृत्, वशी, नर, नारायण, श्याम, कपर्दी, नीललोहित, ॥ ११० ॥ रुद्र, पशुपति, स्थाणु, विश्वामित्र, द्विजेश्वर, मातामह, मातरिश्वा, विरिञ्च, विष्टरश्रवा ॥ १११ ॥ अक्षोभ्य, चण्ड, सत्यपराक्रम, बालखिल्य, महाकल्प, कल्पवृक्ष, कलाधर ॥ ११२ ॥ निदाघ, तपन, मेघ, शुक्र, परबलापहारी, वसुश्रवा, हव्यवाह, प्रतप्त, विश्वभोजन ॥ ११३ ॥ राम, नीलोत्पलश्याम, ज्ञानस्कन्द, महाद्युति, कबन्धमथन, दिव्य, कम्बुग्रीव, शिवप्रिय, ॥ ११४ ॥ सुखी, नील, सुनिष्पन्न, सुलभ, शिशिरात्मक, असंसृष्ट, अतिथि, शूर, प्रमाणी, पापनाशकारी ॥ ११५ ॥ पवित्रपाद, पापारि, मणिपूर, नभोगति, उत्तारण, दुर्धर्ष, दुःसह, बल ६०० ॥ ११६ ॥ अमृतेश, अमृतवपु, धर्मी, कृपाकर, भग, विवस्वान्, आदित्य, योगाचार्य, दिवस्पति ॥ ११७ ॥ उदारकीर्ति, उद्योगी, वाङ्मय, सदसन्मय, नक्षत्रमानी, नाकेश, स्वाधिष्ठान, षडाश्रय ॥ ११८ ॥ चतुर्वर्गफल, वर्णशक्तित्रयफल, निधि, निधानगर्भ, निर्व्याज, निरीश, व्यालमर्दन ॥ ११९ ॥ श्रीवल्लभ, शिवारम्भ, शान्त, भद्र, समंजस, भूशायी, भूति, भूतवाहन ॥ १२० ॥ अव्यय, भक्तकायस्थ, कालज्ञानी, महापटु, परार्धवृत्ति, अचल, विविक्त, श्रुतिसागर ॥ १२१ ॥ स्वभावभद्र, मध्यस्थ, संसारभयनाशन, वेद्य, वैद्य, वियद्गोप्ता, सर्वामरमुनीश्वर ॥ १२२ ॥ सुरेन्द्र, कारण, कर्मकर, कर्मी, अधोक्षज, धैर्य, उग्रधुर्य, धात्रीश, संकल्प, शर्वरीपति ॥ १२३ ॥ परमार्थगुरु, दृष्टि सुचिराश्रितवत्सल, विष्णु, जिष्णु, विभु, यज्ञ, यज्ञेश, यज्ञपालक ॥ १२४ ॥ प्रभु, विष्णु, ग्रसिष्णु, लोकात्मा, लोकपालक, केशव, केशिहा, काव्य, कवि, कारणकारण ॥ १२५ ॥ कालकर्ता, कालशेष, वासुदेव, पुरुष्टुत, आदिकर्ता, वराह, वामन, मधुसूदन ॥ १२६ ॥ नारायण, नर, हंस, विष्वक्सेन, जनार्दन, विश्वकर्ता, महायज्ञ, ज्योतिष्मान्,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वैकुण्ठः पुण्डरीकाक्षः कृष्णः सूर्यः सुरार्चितः । नारसिंहो महाभीमो वज्रदंष्ट्रो नखायुधः ॥१२८॥
आदिदेवो जगत्कर्ता योगीशो गरुडध्वजः । गोविन्दो गोपतिर्गोप्ता भूपतिर्भुवनेश्वरः ॥१२९॥
पद्मनाभो हृषीकेशो धाता दामोदरः प्रभुः । त्रिविक्रमस्त्रिलोकेशो ब्रह्मेशः प्रीतिवर्धनः ॥१३०॥
संन्यासी शास्त्रतत्त्वज्ञो मन्दिरो गिरिशो नतः । वामनो दुष्टदमनो गोविन्दो गोपवल्लभः ॥१३१॥
भक्तप्रियोऽच्युतः सत्यः सत्यकीर्तिर्धृतिः स्मृतिः। कारुण्यः करुणो व्यासः पापहा शांतिवर्द्धनः १३२॥
बदरीनिलयः शान्तस्तपस्वी वैद्युतः प्रभुः । भूतावासो महावासा श्रीनिवासः श्रियः पतिः॥१३३॥
तपोवासो मुदावासः सत्यवासः सनातनः । पुरुषः पुष्करः पुण्यः पुष्कराक्षो महेश्वरः ॥१३४॥
पूर्णमूर्तिः पुराणज्ञः पुण्यदः प्रीतिवर्धनः । पूर्णरूपः कालचक्रप्रवर्तनसमाहितः ॥१३५॥
नारायणः परं ज्योतिः परमात्मा सदाशिवः । शंखी चक्री गदी शार्ङ्गी लांगूली मुसली हली ॥१३६॥
किरीटी कुंडली हारी मेखली कवची ध्वजी । योधा जेता महावीर्यः शत्रुघ्नः शत्रुतापनः ॥१३७॥
शास्ता शास्त्रकरः शास्त्रं शंकरः शंकरस्तुतः । सारथी सात्त्विकः स्वामी सामवेदप्रियः समः ८००॥
पवनः संहितः शक्तिः सम्पूर्णाङ्गः समृद्धिमान् । स्वर्गदः कामदः श्रीदः कीर्तिदः कीर्तिदायकः ॥१३९॥
मोक्षदः पुण्डरीकाक्षः क्षीराब्धिकृतकेतनः । सर्वात्मा सर्वलोकेशः प्रेरकः पापनाशनः ॥१४०॥
वैकुंठः पुण्डरीकाक्षः सर्वदेवनमस्कृतः । सर्वव्यापी जगन्नाथः सर्वलोकमहेश्वरः ॥१४१॥
सर्गस्थित्यन्तकृद्देवः सर्वलोकसुखावहः । अक्षयः शाश्वतोऽनन्तः क्षयवृद्धिविवर्जितः ॥१४२॥
निर्लेपो निर्गुणः सूक्ष्मो निर्विकारो निरंजनः । सर्वोपाधिविनिर्मुक्तः सत्तामात्रव्यवस्थितः ॥१४३॥
अविकारी विभुर्नित्यः परमात्मा सनातनः । अचलो निश्चलो व्यापी नित्यतृप्तो निराश्रयः॥१४४॥
श्यामी युवा लोहिताक्षो दीप्त्या शोभितभाषणः । आजानुबाहुः सुमुखः सिंहस्कन्धो महाभुजः ॥१४५॥
सत्त्ववान् गुणसंपन्नो दीप्यमानः स्वतेजसा । कालात्मा भगवान् कालः कालचक्रप्रवर्तकः ॥१४६॥

पुरुषोत्तम ७०० ॥ १२७ ॥ वैकुण्ठ, पुण्डरीकाक्ष, कृष्ण, सूर्य, सुरार्चित, नारसिह, महाभीम, वज्रदंष्ट्र, नखायुध ॥ १२८ ॥ आदिदेव, जगत्कर्ता, योगीश, गरुडध्वज, गोविन्द, गोपति, गोप्ता, भूपति, भुवनेश्वर ॥ १२९ ॥ पद्मनाभ, हृषीकेश, धाता, दामोदर, प्रभु, त्रिविक्रम, त्रिलोकेश, ब्रह्मेश, प्रीति-वर्धन ॥ १३० ॥ संन्यासी, शास्त्रतत्त्वज्ञ, मन्दर, गिरीश, नत, वामन, दुष्टदमन, गोविन्द, गोपवल्लभ, ॥ १३१॥ भक्तिप्रिय, अच्युत, सत्य, सत्यकीर्ति, धृति, स्मृति, कारुण्य, करुण, व्यास, पापहा, शान्तिवर्द्धन ॥ १३२ ॥ बदरीनिलय, शान्ति, तपस्वी, वैद्युत, प्रभु, भूतावास, महावास, श्रीनिवास, श्रीपति ॥ १३३ ॥ तपोवास, मुदावास, सत्यवास, सनातन, पुष्कर, पुण्य, पुष्कराक्ष, महेश्वर ॥ १३४ ॥ पूर्णमूर्ति, पुराणज्ञ, पुण्यज्ञ, प्रीतिवर्द्धन, पूर्णरूप, कालचक्रप्रवर्तन, समाहित ॥ १३५ ॥ नारायण, परंज्योति, परमात्मा, सदाशिव, शंखी, चक्री, गदी, शार्ङ्गी, लांगूली, मुसली, हली ॥ १३६ ॥ किरीटी, कुण्डली, हारी, मेखली, कवची, ध्वजी, योधा, जेता, महावीर्य, शत्रुघ्न, शत्रुतापन ॥ १३७ ॥ शास्ता, शास्त्रकर, शास्त्र, शंकर, शंकरस्तुत, सारथी, सात्त्विक, स्वामी, सामवेदप्रिय, सम ८०० ॥ १३८ ॥ पवन, संहति, शक्ति, सम्पूर्णाङ्ग, समृद्धिमान्, स्वर्गद, कामद, श्रीद, कीर्तिद, कीर्तिदायक ॥ १३९ ॥ मोक्षद, पुण्डरीकाक्ष, क्षीराब्धिकृतकेतन, सर्वात्मा, सर्वलोकेश, प्रेरक, पापनाशन ॥ १४० ॥ वैकुण्ठ, पुण्डरीकाक्ष, सर्वदेवनमस्कृत, सर्वव्यापी, जगन्नाथ, सर्वलोकमहेश्वर ॥ १४१ ॥ सर्ग-स्थितिअन्तकृत्, देव, सर्वलोकसुखावह, अक्षय, शाश्वत, अनन्त क्षयवृद्धिविवर्जित ॥ १४३ ॥ निर्लेप, निर्गुण, सूक्ष्म, निर्विकार, निरञ्जन, सर्वोपाधिविनिर्मुक्त, सत्तामात्रव्यवस्थित ॥ १४३ ॥ अविकारी, विभु, नित्य, परमात्मा, सनातन, अचल, निश्चल, व्यापी, नित्यतृप्त, निराश्रय ॥ १४४ ॥ श्याम, युवा, लोहिताक्ष, शोभितभाषण, आजानुबाहु, सुमुख, सिंहस्कन्ध, महाभुज ॥ १४५ ॥ सत्त्ववान्, गुणसम्पन्न, अपने तेजसे दीप्यमान, कालात्मा, भगवान्, काल,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नारायणः परं ज्योतिः परमात्मा सनातनः। विश्वकृद्विश्वभोक्ता च विश्वगोप्ता च शाश्वतः॥१४७॥
विश्वेश्वरो विश्वमूर्तिर्विश्वात्मा विश्वभावनः। सर्वभूतसुहृच्छांतः सर्वभूतानुकंपनः॥१४८॥
सर्वेश्वरः सर्वशर्वः सर्वदाऽऽश्रितवत्सलः। सर्वगः सर्वभूतेशः सर्वभूताशयस्थितः॥१४९॥
अभ्यंतरस्थस्तमसश्छेत्ता नारायणः परः। अनादिनिधनः स्रष्टा प्रजापतिपतिर्हरिः॥१५०॥
नरसिंहो हृषीकेशः सर्वात्मा सर्वदृग्वशी। जगतस्तस्थुषश्चैव प्रभुर्नेता सनातनः ९००॥१५१॥
कर्ता धाता विधाता च सर्वेषां पतिरीश्वरः। सहस्रमूर्धा विश्वात्मा विष्णुर्विश्वदृगव्ययः॥१५२॥
पुराणपुरुषः श्रेष्ठः सहस्राक्षः सहस्रपात्। तत्त्वं नारायणो विष्णुर्वासुदेवः सनातनः॥१५३॥
परमात्मा परं ब्रह्म सच्चिदानंदविग्रहः। परं ज्योतिः परं धाम पराकाशः परात्परः॥१५४॥
अच्युतः पुरुषः कृष्णः शाश्वतः शिव ईश्वरः। नित्यः सर्वगतः स्थाणू रुद्रः साक्षी प्रजापतिः॥१५५॥
हिरण्यगर्भः सविता लोककृल्लोकभृद्विभुः ॐकारवाच्यो भगवान्श्रीभूलीलापतिः प्रभुः॥१५६॥
सर्वलोकेश्वरः श्रीमान् सर्वज्ञः सर्वतोमुखः। स्वामी सुशीलः सुलभः सर्वगः सर्वशक्तिमान्॥१५७॥
नित्यः संपूर्णकामश्च नैसर्गिकसुहृत्सुखी। कृपापीयूषजलधिः शरण्यः सर्वशक्तिमान्॥१५८॥
श्रीमान्नारायणः स्वामी जगतां प्रभुरीश्वरः। मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नारसिंहोऽथ वामनः॥१५९॥
रामो रामश्च कृष्णश्च बौद्धः कल्की परात्परः। अयोध्येशो नृपश्रेष्ठः कुशबालः परंतपः॥१६०॥
लवबालः कंजनेत्रः कंजांघ्रिः पंकजाननः। सीताकांतः सौम्यरूपः शिशुजीवनतत्परः॥१६१॥
सेतुकृच्चित्रकूटस्थः शबरीसंस्तुतः प्रभुः। योगिध्येयः शिवध्येयः शास्ता रावणदर्पहा॥१६२॥
श्रीशः शरण्यो भूतानां संश्रिताभीष्टदयकः। अनंतः श्रीपती रामो गुणभृन्निर्गुणो महान् १०००॥
एवमादीनि नामानि ह्यसंख्यान्यपराणि च। एकैकं नाम रामस्य सर्वपापप्रणाशनम्॥१६४॥
सहस्रनामफलदं सर्वैश्वर्यप्रदायकम्। सर्वसिद्धिकरं पुण्यं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्॥१६५॥

कालचक्रप्रवर्तक॥१४६॥ नारायण, परंज्योति, परमात्मा, सनातन, विश्वकृत्, विश्वभोक्ता, विश्वगोप्ता, शाश्वत॥१४७॥ विश्वेश्वर, विश्वमूर्ति, विश्वात्मा, विश्वभावन, सर्वभूतसुहृत्, शान्त, शर्वभूतानुकम्पन॥१४८॥ सर्वेश्वर, सर्वशर्व, सर्वदा आश्रितवसत्सल, सर्वग, सर्वभूतेश, सर्वभूताशयस्थित॥१४९॥ अभ्यन्तरस्थ, अन्धकारनाशक, नारायण, पर, अनादिनिघन, स्रष्टा, प्रजापति, हरि॥१५०॥ नरसिंह, हृषीकेश, सर्वात्मा, सर्वदृक्, वशी, स्थावर तथा जंगम विश्वके प्रभु, नेता, सनातन ९००॥१५१॥ कर्ता, धाता, विधाता, सबके पति, ईश्वर, सहस्रमूर्धा, विश्वात्मा, विष्णु, विश्वदृक्, अव्यय॥१५२॥ पुराणपुरुष, श्रेष्ठ, सहस्राक्ष, सहस्रपात्, तत्त्व, विष्णु, नारायण, वासुदेव, सनातन॥१५३॥ परमात्मा, परब्रह्म, सच्चिदानन्दविग्रह, परंज्योति, परंधाम, पराकाश, परात्पर,॥१५४॥ अच्युत, कृष्ण, शाश्वत, शिव, ईश्वर, नित्य, सर्वगत, स्थाणु, रुद्र, साक्षी, प्रजापति॥१५५॥ हिरण्यगर्भ, सविता, लोककृत्, विभु, ॐकारवाच्य, भगवान्, श्रीभूलीलापति, प्रभु॥१५६॥ सर्वलोकेश्वर, श्रीमान्, सर्वज्ञ, सर्वतोमुख, स्वामी, सुशील, सर्वग, सर्वशक्तिमान्, प्रभु॥१५७॥ सम्पूर्णकाम, नैसर्गिकसुहृद्, सुखी, कृपापीयूषजलधि, सबके शरण्य॥१५८॥ श्रीमान्, नारायण, स्वामी, सब भुवनोंके प्रभु, ईश्वर, मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन॥१५९॥ राम, कृष्ण, बौद्ध, कल्की, परात्पर, अयोध्येश, नृपश्रेष्ठ, कुशके पिता, परन्तप॥१६०॥ लवके पिता, कमलनयन, कमलचरण, कमलमुख, सीताकान्त सौम्यरूप, शिशुजीवनतत्पर॥१६१॥ सेतुकृत्, चित्रकूटस्थ, शबरीसंस्तुत, प्रभु, योगिध्येय, शिवध्येय, शास्ता, रावणदर्पहा॥१६२॥ श्रीश, शरण्य, आश्रितोंके अभीष्टदायक, अनन्त, श्रीपति, राम, गुणभृत्, निर्गुण, महान् १०००॥१६३॥ यहाँ रामसहस्रनाम पूर्ण हुआ। इसी तरह और भी भगवान्के बहुतसे नाम हैं, जिनकी गणना ही नहीं की जा सकती। रामका एक-एक नाम सब प्रकारके पापोंको हरने तथा सहस्रनामका फल देनेवाला है। यह रामनाम सब प्रकारकी समृद्धियों एवं

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मन्त्रात्मकमिदं सर्वं व्याख्यातं सर्वमंगलम् । उक्तानि तव पुत्रेण विघ्नराजेन धीमता ॥१६६॥
सनत्कुमाराय पुरा तान्युक्तानि मया तव । यः पठेच्छृणुयाद्वापि स तु ब्रह्मपदं लभेत् ॥१६७॥
तावदेव बलं तेषां महापातकदंतिनाम् । यावन्न श्रूयते रामनामपंचाननध्वनिः ॥१६८॥
ब्रह्मघ्नश्च सुरापश्च स्तेयी च गुरुतल्पगः । शरणागतघाती च मित्रविश्वासघातकः ॥१६९॥
मातृहा पितृहा चैव भ्रूणहा वीरहा तथा । कोटिकोटिसहस्राणि ह्युपपापानि यान्यपि ॥१७०॥
संवत्सरं क्रमाज्जप्त्वा प्रत्यहं रामसन्निधौ । निष्कण्टकं सुखं भुक्त्वा ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥१७१॥

सूत उवाच

एवं शौनक पार्वत्यै रामनामसहस्रकम् । यथा शिवेन कथितं मया तेऽद्य निवेदितम् ॥१७२॥

श्रीरामदास उवाच

यथा शिष्य त्वया पृष्टं रामनमसहस्रकम् । तत्सूतोक्तं सविस्तारं मया तेऽद्य निवेदितम् ॥१७३॥
अनेन रामं सदसि नारदः स्तुतवान्मुनिः । रामनामसहस्रेण भुक्तिमुक्तिप्रदेन च ॥१७४॥
श्रीरामनाम्नां परमं सहस्रकं पापापहं सौख्यविवृद्धिकारकम् ।
भवापहं भक्तजनैकपालकं स्त्रीपुत्रपौत्रप्रदमृद्धिदायकम् ॥१७५॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे
पूर्वार्धे रामसहस्रनामकथनं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयः सर्गः

(कल्पवृक्ष और पारिजातके पृथ्वीपर आनेका कारण)

विष्णुदास उवाच

गुरो त्वया रामनामसहस्रं राघवस्य च । ध्यानं कल्पतरोर्मूले कथितं स्वर्णपीठके ॥ १ ॥

सिद्धियोंका करनेवाला और मुक्ति-मुक्तिका दाता है। हे पार्वति ! मैंने अभी जो सहस्रनाम तुम्हें बतलाया है, यह मन्त्रात्मक और सर्वमंगलकारक है। इसे तुम्हारे पुत्र गणेशजीने स्वयं सनत्कुमारको बतलाया था। उसे मैंने आज तुमसे कहा है। जो कोई इस सहस्रनामको पढ़ता और सुनता है, उसे ब्रह्मपद प्राप्त होता है॥ १६४–१६७ ॥ महापातकरूपी मतवाले हाथियोंका बल तभी तक रहता है, जब तक रामनामरूपी पंचानन (सिंह) की गर्जना नहीं सुनायी देती ॥ १६८ ॥ जो मनुष्य ब्रह्महत्यारा, मद्यप, गुरुकी शय्यापर शयन करनेवाला तथा चोर हो। जो शरणागतको मारनेवाला, मित्रके साथ विश्वासघात करनेवाला, माता, पिता, भ्रूण (गर्भस्थ संतान) तथा वीर मनुष्यकी हत्या करनेवाला हो तथा जिसने संसारमें करोड़ों पाप किये हों, वह भी यदि श्रीरामके पास बैठकर एक संवत्सर पर्यन्त प्रतिदिन इस स्तोत्रका पाठ करे तो संसारमें निष्कंटक सुख भोगकर अन्तमें मोक्ष पाता है ॥ १६९ ॥ १७० ॥ सूतजी बोले—हे शौनक ! शिवजीने पार्वतीको जिस प्रकार रामका सहस्रनाम सुनाया था, वही मैंने आज तुम्हें बताया है ॥ १७१ ॥ श्रीरामदासने कहा—हे शिष्य ! जैसे तुमने हमसे रामका सहस्रनाम पूछा, वैसे मैंने तुम्हें बतलाया। इसी सहस्रनामसे नारदने सभामें रामजीकी स्तुति की थी। क्योंकि यह स्तोत्र भुक्ति-मुक्ति सब कुछ देनेवाला है ॥ १७२–१७४ ॥ यह रामका सहस्रनाम पापोंका नाशक, सौख्यवर्द्धक, सांसारिक पापोंका नाशक, भक्तजनोंका पालक और स्त्री-पुत्र-पौत्र तथा सम्पत्तिका देनेवाला है ॥ १७५ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेज-पाण्डेयविरचित'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते राज्यकाण्डे पूर्वार्द्धे प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

श्रीविष्णुदासने कहा—हे गुरो ! आपने रामका सहस्रनाम बताते समय कहा था कि कल्पवृक्षके नीचे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

संदेहस्तेन मे जातः कल्पवृक्षः कथं भुवि । अयोध्यायां रामगेहे स्वर्गलोकात्समागतः ॥ २ ॥

अमुं मे संशयं छिंधि कृपां कृत्वा ममोपरि ।
सम्यक् पृष्टं विष्णुदास सावधानमनाः शृणु ॥ ३ ॥

एकदा राघवं द्रष्टुं दुर्वासा मुनिरभ्यगात् । शिष्यैः षष्टिसहस्रैश्च वेष्टितोऽचिंतयत्पथि ॥ ४ ॥
विष्णुर्मनुजरूपेण रामो जातोऽत्र वेद्म्यहम् । तथापि लोकान् रामस्य दर्शयिष्यामि पौरुषम् ॥ ५ ॥
एवं निश्चित्य साकेते मुनिः शिष्यैर्विवेश ह । विलंघ्य सोऽष्ट कक्षांस्तैः सीतागेहं ययौ मुनिः ॥ ६ ॥
सीतागेहे महद्द्वारसंस्थितं मुनिसत्तमम् । दुर्वाससं शिष्ययुक्तं दृष्ट्वा वै वेत्रपाणयः ॥ ७ ॥
शीघ्रं निवेदयामासुर्दास्या रामं रहः स्थितम् । रामोऽपि श्रुत्वा संप्राप्तं मुनिं प्रत्युज्जगाम सः ॥ ८ ॥
नत्वा तानानयामास सद्म ह्यासनमर्पयत् । एतस्मिन्नन्तरे रामं तिष्ठन्स मुनिसत्तमः ॥ ९ ॥
अब्रवीन्मधुरं वाक्यं शिष्यैः सर्वत्र वेष्टितः । अद्य वर्षसहस्राणामुपवाससमापनम् ॥१०॥
अतो भोजनमिच्छामि मणिधेन्वनलैर्विना । सिद्धमन्नं मुहूर्तेन सशिष्याय समर्पय ॥११॥
मह्य मनोऽभिलषितं नानापक्वान्नसंयुतम् । तथा मां पूजनार्थं हि शंभोः पुष्पाणि मानवैः ॥१२॥
अदृष्टान्यानयस्वाद्य गार्हस्थ्यं चेत्प्ररक्षसि । नोचेन्नाहं समर्थोऽस्मीत्युक्त्वा मां त्वं विसर्जय ॥१३॥
तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा विहस्य रघुनन्दनः । सर्वमंगीकृतं चेति विनयेनाब्रवीन्मुनिम् ॥१४॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा तुष्टस्तं मुनिरब्रवीत् । स्नात्वा सरय्वां शीघ्रं त्वामागच्छामि त्वरां कुरु ॥१५॥
मदुक्तं सफलं कर्तुं सिद्धं बंधूंश्च जानकी । तथेत्युक्त्वा मुनिं रामः स्नानार्थं च व्यसर्जयत् ॥१६॥
तदा ते लक्ष्मणाद्याश्च बंधवो जानकी तथा । कुशाद्या बालकाः सर्वे तेऽभूवन् भयविह्वलाः ॥१७॥

स्वर्णनिर्मित चौकीपर बैठे हुए भगवानका ध्यान करे ॥ १ ॥ सो सुनकर मुझे यह संदेह हो रहा है कि कल्पवृक्ष स्वर्गलोकसे रामचन्द्रजीके भवनमें कैसे आया । मुझपर कृपा करके आप इस संशयका निवारण कीजिये । श्रीरामदासजीने कहा—हे विष्णुदास ! तुमने बहुत अच्छी बात पूछी है । सावधान होकर सुनो ॥ २ ॥ ३ ॥ एक बार रामचन्द्रजीका दर्शन करनेके लिये साठ हजार शिष्योंसे परिवेष्टित दुर्वासा मुनि अयोध्याको जा रहे थे । रास्तेमें जाते-जाते दुर्वासाने सोचा कि स्वयं विष्णुभगवान् मनुष्यका रूप धारण करके संसारमें आये हैं, यह मैं जानता हूँ । फिर भी आज संसारके साधारण मनुष्योंको मैं उनका पौरुष दिखलाऊँगा ॥ ४ ॥ ५ ॥ ऐसा निश्चय करके वे अपने शिष्योंके साथ अयोध्या नगरीमें प्रविष्ट हुए और सबको साथ लिये हुए आठ चौक लाँघकर सीताके भवनमें जा पहुँचे ॥ ६ ॥ सीताजीके विशाल द्वारपर शिष्यों समेत आये हुए दुर्वासाको देखकर छड़ीदारोंने तुरन्त रामचन्द्रजीको खबर दी । यह समाचार सुनते ही भगवान् दुर्वासा मुनिके पास आ पहुँचे । उन्हें प्रणाम किया और सबको बड़े आदर समेत भवनके भीतर ले गये । वहां बैठनेके लिये उन्हें सुन्दर आसन दिया । आसनपर बैठे हुए दुर्वासाने बड़ी मधुर वाणीमें रामचन्द्रजीसे कहा—महाराज ! आज एक हजार वर्षका मेरा उपवासव्रत पूरा हुआ है । इस कारण मेरे शिष्योंके साथ मुझे भोजन चाहिए । इसके लिये आपको केवल एक मुहूर्तका समय मिलेगा और वह भोजन मणि, कामधेनु तथा अग्निकी सहायतासे न तैयार किया जाय । बस, एक मुहूर्तमें मुझे मेरी इच्छाके अनुकूल भोजन मिले ! जिसमें विविध प्रकारके पकवान सम्मिलित रहें । यदि तुम अपना गार्हस्थ्य रखे रहना चाहते होओ तो शिवजीकी पूजाके निमित्त मुझे ऐसे फूल मँगवा दो, जिन्हें अबतक किसीने न देखा हो । यदि ऐसा न कर सकते हो तो साफ-साफ कह दो कि मैं ऐसा करनेमें असमर्थ हूं । यह कहकर मुझे बिदा कर दो ॥ ७–१३ ॥ मुनिकी बातोंको सुनकर मुसकाते हुए राम नम्रतापूर्वक बोले—"मुझे सब कुछ अंगीकार है" ॥ १४ ॥ रामकी बातसे प्रसन्न होकर दुर्वासाने कहा कि मैं शीघ्र सरयूमें स्नान करके आता हूं ॥ १५ ॥ हमारे कथनानुसार सब चीजोंकी तैयारीके लिए अपने भ्राताओं तथा सीताको भी शीघ्रत के लिए कह दो । 'अच्छा' कहकर रामचन्द्रजीने दुर्वासाको स्नान करनेके लिये

CC0. In Public Domain. Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ऊचुः परस्परं सर्वे रामन्यस्तेक्षणाः शनैः । किं याचितं हि मुनिना किं रामोऽग्रे करिष्यति ॥१८॥
विना गोवह्निमणिभिः कथमन्नं प्रदास्यति । ततो गते मुनौ रामः पत्रं सौमित्रिणा तदा ॥१९॥
विलेख्य बद्ध्वा बाणे तन्मुमोच शरमुत्तमम् । स शरो वायुवेगेन शीघ्रं गत्वाऽमरावतीम् ॥२०॥
सुधर्मायां सुरैर्युक्तस्येंद्रस्याग्रे पपात ह । तं शरं मघवा दृष्ट्वा चकितो भयविह्वलः ॥२१॥
कस्यायमिति चोक्त्वा तद्रामनाम व्यलोकयत् । सुवर्णरचितं बाणपुच्छस्थ पापदाहकम् ॥२२॥
ततो ज्ञात्वा राघवस्य शरोऽयमिति देवराट् । तस्मिन्बन्धं विमुच्यासौ पत्रं नत्वा पपाठ च ॥२३॥
एतस्मिन्नंतरे बाणः पुनः श्रीराघवं ययौ । विवेश रामतूणीरे पूर्वसंस्थितोऽभवत् ॥२४॥
मघवाऽपि सुधर्मायां श्रावयामास निर्जरान् । राममुद्रांकितं पत्रं भयविस्मयसंयुतः ॥२५॥
मघवंस्त्वं सुखं तिष्ठ स्वर्गेहं त्वां सदा स्मरे । मन्नियोगं शृणुष्वाद्य याचितोऽस्म्यधुना त्वहम् ॥२६॥
विना गोवह्निमणिभिश्चान्नं शिष्यैर्युतेन च । वरैः षष्टिसहस्रैश्च तथाऽन्यैर्मुनिसत्तमैः ॥२७॥
सहस्राब्दक्षुधितेन क्रोधिनाऽतितपस्विना । दुर्वाससा मुहूर्तात्तु मयाऽप्यंगीकृतं हि तत् ॥२८॥
याचितान्यपि पुष्पाणि तेनादृष्टानि मानवैः । मयांगीकृत्य सकलं स्नानार्थं ते विसर्जिताः ॥२९॥
अतः शीघ्रं कल्पवृक्षपारिजातौ समुद्रजौ । प्रेषयस्व क्षणान्मां त्वमविलम्बेन सादरात् ॥३०॥
मा रावणाशिरच्छेत्तुः प्रतीक्षां त्वामिषोः कुरु । एवं संश्राव्य तत्पत्रं सुरानिंद्रः सुरैः सह ॥३१॥
संमंत्र्याथ कल्पवृक्षपारिजातौ विगृह्य सः । विमानेन सुरैर्युक्तः श्रीरामनगरीं ययौ ॥३२॥
इन्द्रमागतमाज्ञाय तं प्रत्युद्गम्य लक्ष्मणः । अयोध्यायां निनायेन्द्रं सभास्थं रघुनन्दनम् ॥३३॥
कल्पवृक्षपारिजातौ मघवा रघुनन्दनम् । समर्प्य नत्वा श्रीरामं स उपाविशदासने ॥३४॥
एतस्मिन्नन्तरे शिष्यं दुर्वासा मुनिरब्रवीत् । गत्वा त्वं पश्य रामं तु किं करोत्यधुना गृहे ॥३५॥

भेज दिया ॥ १६ ॥ इधर लक्ष्मणादिक भ्राता, जानकी और कुश आदि बालक सबके सब भयसे विह्वल हो गये और वे रामकी ओर निर्निमेष दृष्टिसे देखते हुए अपने मनमें कहने लगे कि मुनिने बड़ी अद्भुत वस्तुएँ माँगी हैं। देखें, राम अब क्या करते हैं। बिना गौ, मणि तथा अग्निके किस प्रकार भोजन तैयार करके देते हैं ॥१७॥१८॥ मुनिके चले जानेपर रामचन्द्रजीने लक्ष्मणसे एक पत्र लिखवाया। उसे अपने बाणमें बाँधकर धनुषपर चढ़ाया और छोड़ दिया। वह बाण वायुके समान वेगसे अमरावतीपुरीमें जाकर सुधर्मा नामकी देवसभामें इन्द्रके सामने गिरा। उस बाणको इन्द्रने देखा तो भयभीत होकर कहा—॥ १९–२१ ॥ "यह बाण किसका है !" यह कहकर उसपर लिखे रामके नामको देखा और पत्र खोलकर पढ़ा। पत्र ले जानेवाला बाण वहाँसे फिर रामजीके तूणीरमें लौट आया ॥ २२–२४ ॥ भय और विस्मय युक्त इन्द्रने वह पत्र सभामें बैठे हुए देवताओंको सुनाया ॥ २५ ॥ उस पत्रपर लिखा था—"हे इन्द्र ! तुम स्वर्गमें सुखी रहो। मैं सदा तुम्हारा स्मरण किया करता हूँ। हाँ, इस समय तुम्हें मैं एक आज्ञा दे रहा हूँ। आज एक हजार वर्षके भूखे एवं उग्र क्रोधी दुर्वासा मुनि अपने साठ हजार अच्छे शिष्योंके साथ मेरे यहाँ आये हुए हैं। वे ऐसा भोजन चाहते हैं कि जो गौ, मणि अथवा अग्निके द्वारा न बना हो। साथ ही उन्होंने शिवपूजनके लिए ऐसे फूल माँगे हैं, जिन्हें अबतक मनुष्योंने न देखा हो। मैंने उनकी माँगें स्वीकार कर ली हैं। इस समय मैंने उन्हें स्नान करनेको भेज दिया है ॥ २६–२९ ॥ इससे तुम झटपट कल्पवृक्ष और पारिजात, जो कि क्षीरसागरसे निकले हैं, क्षणभरमें आदरपूर्वक मेरे पास भेज दो ॥ ३० ॥ देखो, कहीं रावणका विनाश करनेवाले मेरे बाणकी प्रतीक्षा न करने लगना।" इस प्रकार वह पत्र देवताओंको सुनाकर इन्द्रदेव तुरन्त सबके साथ मंत्रणा करके कल्पवृक्ष और पारिजात ले तथा देवताओं समेत विमानपर चढ़कर अयोध्यापुरीमें जा पहुँचे ॥ ३१ ॥ ॥ ३२ ॥ लक्ष्मणने जब यह जाना कि देवराज इन्द्र आ गये हैं तो उनके पास गये और आदरपूर्वक अयोध्यामें रामके पास ले आये ॥ ३३ ॥ इन्द्रने पारिजात तथा कल्पवृक्ष रामको अर्पण करके प्रणाम किया। फिर एक

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अस्माकं कल्पितं किंचिदन्नमस्त्यथवा न वा ।
चिंतायुक्तोऽस्ति वा तूष्णीं संस्थितोऽस्त्यत्र किं कृतम् ॥३६॥
बहिः संपादितं सर्वं मया यद्यन्न याचितम् । रहः स्थितः शनैर्दृष्ट्वा शीघ्रं त्वं याहि मां पुनः ॥३७॥
तथेत्युक्त्वा मुनिं शिष्यः स ययौ रामसद्गृहम् । तत्र दृष्ट्वा कल्पवृक्षपारिजातौ सनिर्जरौ ॥३८॥
सनिर्जरेशं रामं च मुदितं सीतयाऽन्वितम् । ततस्तूर्णं ययौ शिष्यः परावृत्य मुनिं प्रति ॥३९॥
कथयामास सकलं यथावृत्तं निरीक्षितम् । तच्छ्रुत्वा शिष्यवचनं दुर्वासा विस्मयान्वितः ॥४०॥
ययौ शिष्यैः परिवृतो विवेश नृपतेर्गृहम् । तं मुनिं राघवो दृष्ट्वा प्रत्युद्गम्य पुनः सुरैः ॥४१॥
नमस्कृत्य मुहुर्वेगाद्ददावासनमुत्तमम् । ततो मुनेः पूजनं स सशिष्यस्य रघूत्तमः ॥४२॥
चकार सीतया सार्द्धं लक्ष्मणादिभिरन्वितः । पारिजातप्रसूनानि नेक्षितान्यत्र मानवैः ॥४३॥
ददौ शंभोः पूजनार्थं रामो दुर्वाससे तदा । तानि दृष्ट्वा मुनिस्तूष्णीं तैश्चकारेश्वरार्चनम् ॥४४॥
ततः सर्वान्सुरान्पूज्य परिवेषणकर्मणि । चोदयामास श्रीरामो जानकीं लक्ष्मणेन सः ॥४५॥
ततः सा जानकी वेगाद्दिव्यालंकारमण्डिता । कल्पवृक्षपारिजातौ सम्पूज्य नूपुरस्वना ॥४६॥
पात्राणि कल्पवृक्षाधः स्थापयामास कोटिशः । सीता तं प्रार्थयामास कल्पवृक्षं नगोत्तमम् ॥४७॥
क्षीरसागरसंभूत देवानां चिंतितप्रद । दुर्वाससे कल्पवृक्ष सशिष्यायाद्य तोषय ॥४८॥
तत्सीतावचनं श्रुत्वा हेमपात्राणि कोटिशः । चित्रान्नैः पूरयामास क्षणात्कल्पतरुस्तदा ॥४९॥
तैरन्नैर्हेमपात्रेषु जानकी परिवेषणम् । क्षणाच्चकार संतुष्टा ह्युर्मिलाचंपिकादिभिः ॥५०॥
ततस्तुष्टो मुनिर्देवः शिष्यैरशनमादरात् । चकार रघुवीरेण प्रार्थितः स मुहुर्मुहुः ॥५१॥
ततः कृत्वा भोजनं हि करशुद्धिं विधाय सः । तांबूलं दक्षिणां चापि जग्राह रघुनायकात् ॥५२॥

आसनपर जा बैठे ॥ ३४ ॥ उधर सरयूके किनारेसे दुर्वासाने अपना एक शिष्य भेजा और उससे कहा— "तुम जाकर देखो कि राम इस समय क्या कर रहे हैं ॥ ३५ ॥ मैंने जो-जो बतलाया था, उसमें कुछ अन्न तैयार हे या नहीं। अथवा अभी तक चिन्ता करते हुए यूँ ही चुपचाप बैठे हैं ॥ ३६ ॥ यदि मेरे आज्ञानुसार काम कर रहे हैं तो अबतक क्या-क्या किया है। मैंने जैसा कहा था, वे सब चीजें उन्होंने इकट्ठी कर लीं या नहीं। कहीं छिपकर चुपचाप यह सब देखो और शीघ्र मेरे पास लौट आओ" ॥ ३७ ॥ "अच्छा" कहकर शिष्य रामचन्द्रजीके भवनमें जा पहुँचा। वहाँ कल्पवृक्ष, परिजात, इन्द्र, देवताओंकी मण्डली एवं प्रसन्न राम तथा सीताको देखकर फिर दुर्वासा मुनिके पास लौट गया और जैसा देखा था, सब समाचार कह सुनाया। शिष्यकी बात सुनकर दुर्वासाको बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ ३८–४० ॥ स्नानके बाद शिष्योंको साथ लेकर वे रामचन्द्रजीके सुन्दर भवनमें पहुँचे। मुनि दुर्वासाको देख देवताओंके साथ उठकर रामचन्द्रजीने बड़े आदरके साथ समस्त शिष्यों समेत मुनिको प्रणाम किया और बैठनेके लिये उत्तम आसन देकर सीता तथा लक्ष्मणादिके साथ उनकी पूजा की। मनुष्योंने पारिजातके फूल नहीं देखे थे ॥ ४१–४३ ॥ सो उन फूलोंको शिबपूजनके निमित्त मुनिके सामने रक्खा। दुर्वासाने उन्हें एक बार विस्मित नेत्रोंसे देखा और चुपचाप शिव तथा सब देवताओंका पूजन किया ॥ ४४ ॥ इसके अनन्तर रामचन्द्रजीने लक्ष्मण और जानकीको भोजन परोसनेकी आज्ञा दी ॥ ४५ ॥ तब दिव्यालङ्कारोंको धारण किये सीताने कल्पवृक्ष और पारिजातका पूजन करके करोड़ों बर्तन लाकर उनके नीचे रख दिया और इस प्रकार प्रार्थना करने लगीं—॥ ४६-४७ ॥ "हे क्षीरसागरसे जायमान तथा देवताओंकी अभिलाषा पूर्ण करनेवाले कल्पवृक्ष ! आज शिष्यों समेत दुर्वासाको आप सन्तुष्ट कर दाजिए" ॥४८॥ सीताकी प्रार्थना सुनकर क्षणभरमें कल्पवृक्षने करोड़ों पात्रोंको विविध प्रकारकी भोजनसामग्रियोंसे भर दिया। उन अन्नोंको उर्मिलादिके साथ सीताने सुवर्णके पात्रोंमें परोसा और महर्षि दुर्वासाने प्रसन्न होकर अपने समस्त शिष्योंके साथ रामचन्द्रजीके द्वारा प्रार्थित होनेपर भोजन करना आरम्भ किया ॥ ४९–५१ ॥ भोजन करनेके बाद उन्होंने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ततः सुराणां पुरतो वेदवाक्यैः सविस्तरम् । दुर्वासा राघवं स्तुत्वा तमाहानंदनिर्भरः ॥५३॥
राम राजीवपत्राक्ष त्वं साक्षाज्जगदीश्वरः । अत्र रावणघातार्थमवतीर्णोऽसि वेद्म्यहम् ॥५४॥
जनांस्त्वत्पौरुषं ज्ञातुं मयैतद्याचितं तव । विना गोवह्निमणिभिर्दिव्यान्नं रघुनन्दन ॥५५॥
प्रसूनान्यप्यदृष्टानि मानवैर्जगतीतले । किं राम दुर्घटं तत्र यस्य भ्रूभङ्गमात्रतः ॥५६॥
लयो ब्रह्मादिकानां च जायते संभवोऽपि च । मन्दरं मज्जमानं तु दृष्ट्वा त्वं क्षीरसागरे ॥५७॥
कूर्मरूपेण जातोऽसि धर्तुं तु मन्दराचलम् । निष्कासितानि रत्नानि तदा देवैश्चतुर्दश ॥५८॥
तव साहाय्यमात्रेण सर्वं जानाम्यहं प्रभो । लक्ष्मीः सोमः कामधेनुः कौस्तुभश्च सुधा विषम् ॥५९॥
ऐरावतश्चाप्सरसः कल्पवृक्षो भिषग्वरः । उच्चैःश्रवाः पारिजातो सुरा ज्येष्ठेति राघवः ॥६०॥
चतुर्दश सुरत्नानि विभक्तानि पुरा त्वया । देवेभ्यो यानि तान्येते भोक्ष्यंति कृपया तव ॥६१॥
त्वदाज्ञापालिनः सर्वे शङ्कराद्याश्च निर्जराः । सर्वेषां जीवनोपायास्त्वया सर्वे पृथक् पृथक् ॥६२॥
कल्पिता येन रामेण तत्र किं दुर्घटं तव । ममाभिलषितं भोज्यं दातुं त्वत्कौतुकं मया ॥६३॥
अद्यावलोकितं राम जनानपि प्रदर्शितम् । त्वं पाता सर्वलोकानां जनकश्चापि घातकृत् ॥६४॥
अस्माकं गतिदाता त्वं मे क्षमस्वापराधितम् । एवं नानाविधं स्तुत्वा तं प्रणम्य पुनः पुनः ॥६५॥
राममामंत्र्य दुर्वासा ययौ शिष्यैः स्वमाश्रमम्। अथ तान्निर्जरान्प्राह रामः कनकलोचनः ॥६६॥
कल्पवृक्षपारिजातौ गृहीत्वा गम्यतां दिवम् । तद्रामवचनं श्रुत्वा वाक्पतिः प्राह राघवम् ॥६७॥
यावत्कालं तिष्ठसि त्वं भूम्यां तावन्नगोत्तमौ। अयोध्यायां तिष्ठतस्तौ कल्पवृक्षसुरद्रुमौ ॥६८॥
त्वयि वैकुण्ठमायाते दिवं तौ यास्यतो भुवः । तथेति तत्सुरगुरोः प्रतिनंद्य वचः प्रभुः ॥६९॥

हाथ धोया और रामसे ताम्बूल-दक्षिणा ली ॥ ५२ ॥ फिर उन देवताओंके सामने ही वेदवाक्यों द्वारा विस्तारपूर्वक रामचन्द्रजीकी स्तुति की और आनन्दसे गद्गद होकर कहने लगे—॥ ५३ ॥ हे राम ! हे कमलदल सरीखे नेत्रोंवाले भगवन् ! मैं जानता हूँ कि तुम साक्षात् जगदीश्वर हो और रावणका विनाश करनेके लिए इस धरातलपर आये हो ॥ ५४ ॥ संसारी जनोंको तुम्हारा पौरुष दिखलानेके लिए ही मैने गो-वह्नि और मणिसे न सिद्ध हुआ अन्न तथा मनुष्योंसे अदृष्ट फूल पूजनेके निमित्त माँगे थे। हे राम ! तुम्हारे लिए यह कुछ दुर्घट कार्य नहीं है। तुम्हारे भ्रूभंगमात्रसे ब्रह्मादिक देवताओंका भी विनाश एवं उद्भव होता है। जिस समय मंदराचलको क्षीरसागरमें तुमने डूबते देखा ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ तब कूर्मरूप धरकर उसे अपनी पीठपर उठा लिया था। उस समय एकमात्र तुम्हारी सहायतासे ही देवताओंने क्षीरसागरसे ये चौदह रत्न निकाले थे ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ जिनके नाम हैं—लक्ष्मी, चन्द्रमा, कामधेनु, कौस्तुभ, सुधा, विष, ऐरावत, अप्सराएँ, कल्पवृक्ष, धन्वन्तरी, उच्चैःश्रवा, पारिजात, सुरा और अमृत ॥ ५९ ॥ ६० ॥ उन चौदहों रत्नोंको तुमने चौदह देवताओंको बाँट दिया और तुम्हारी ही कृपासे वे सब आनन्दपूर्वक उनका उपभोग कर रहे हैं ॥ ६१ ॥ शंकरादिक समस्त देवता तुम्हारी ही आज्ञाका पालन करते हैं। इस जगत्में स्थित सब प्राणियोंके जीवनका उपाय तुम्हीं करते हो ॥ ६२ ॥ तब यदि तुमने हमारे इच्छानुसार भोजनकी सामग्रियें जुटा दीं तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। यह तो मुझे इन साधारण श्रेणीके मनुष्योंको तुम्हारा कौतुक दिखाना था, सो दिखा दिया ॥ ६३ ॥ हे राम ! तुम्हीं समस्त लोकोंके रक्षक, स्रष्टा तथा संसारके नाशक हो ॥ ६४ ॥ तुम्हीं हमारे गतिदाता हो। मुझसे जो कुछ त्रुटि हुई हो, सो क्षमा कर दो। इस तरह नाना प्रकारके वाक्यों द्वारा स्तुति करके दुर्वासाने बारम्बार प्रणाम किया और रामचन्द्रजीकी आज्ञा लेकर सब शिष्योंको साथ लिये हुए अपने आश्रमको चल दिये । इसके अनन्तर रामचन्द्रजीने उन देवताओंसे कहा—कल्पवृक्ष और पारिजातको लेकर अब आप लोग भी अपने लोकको जाते जायँ। इस प्रकार रामकी बात सुनकर देवगुरु बृहस्पति कहने लगे—॥ ६५-६७ ॥ "जबतक आप भूमण्डलमें रहेंगे, तबतक कल्पवृक्ष तथा पारिजात ये दोनों भी इस अयोध्यामें ही रहेंगे ॥ ६८ ॥ जब आप अपने वैकुण्ठ लोकको जाने लगेंगे, तब ये भी आपके साथ चले

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पुष्पके स्थापयामास कल्पवृक्षसुरद्रुमौ । ततस्ते राघवं नत्वा ययुरिंद्रादिकाः सुराः ॥७०॥
स्वर्गलोकं सुसंतुष्टा राघवेणातिपूजिताः । एवं प्राप्तौ कल्पवृक्षपारिजातौ भुवं दिवः ॥७१॥
तयोरेतत्कारणं ते प्रोक्तं पृष्टं यथा त्वया । तदारभ्य सुरतरू पुष्पकस्थौ विरेजतुः ॥७२॥
साकेते सीतया रामस्ताभ्यां सुखमवाप सः । कल्पवृक्षतले दिव्यपर्यङ्के सीतया सह ॥७३॥
नानाभोगात्राघवन्द्रः स बुभोज चिरं सुखम् । अतः पूर्वं मया रामध्यानं कल्पतरोः स्थले ॥७४॥
सहस्रनामसंकेते प्रोक्तं शिष्य तवाग्रतः । तदारभ्य परिजातवृक्षांशाः शतशो भुवि ॥७५॥
पारिजातनगा जाता वर्तन्तेऽद्यापि तेऽत्र हि । नानेन सदृशं पुष्पं वर्तते रामतोषदम् ॥७६॥
कल्पवृक्षांशरूपाश्च ज्ञातव्यास्तत्र मानवैः । अश्वत्थाः सेवनाद्येश्च सर्ववांछितदायकाः ॥७७॥
पुण्याधिक्येन सेवन्ते नोपेक्षंते युगत्रये । पापाधिक्येनापि सेवां नरा वांछति नो कलौ ॥७८॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये विवाहकाण्डे चम्पिकास्वयंवरो नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः

(रामोपासक तथा कृष्णोपासकका परस्पर मधुर विवाद)

विष्णुदास उवाच

रामदास गुरो भूम्यां रामकृष्णौ वरौ श्रुतौ । मया दशावतारेषु ह्यवतारावुभौ पुरा ॥ १ ॥
तयोरपि च कः श्रेष्ठस्तत्त्वं वद ममाग्रतः । यं श्रुत्वा सर्वदा तस्य श्रोष्येऽहं चरितं शुभम् ॥ २ ॥

श्रीरामदास उवाच

सम्यक् पृष्टं विष्णुदास सावधानमनाः शृणु । रामावतारः श्रेष्ठोऽत्र विज्ञेयः सर्वदा नरैः ॥ ३ ॥
अस्मिन्नर्थे पूर्ववृत्तां कथां शृणु मनोहराम् । द्विजाभ्यां वादरूपेण कीर्तितां पुण्यदायिकाम् ॥ ४ ॥

जायँगे। रामने सुरगुरु बृहस्पतिकी बात स्वीकार कर ली ॥ ६९ ॥ देवताओंने उन दोनोंको पुष्पक विमानमें रखकर भगवान्‌को प्रणाम किया और राम द्वारा पूजित होकर सब अपने अपने लोकको चल गये ॥ ७० ॥ इस प्रकार कल्पवृक्ष और पारिजात स्वर्गसे मृत्युलोकमें आये। उनके आनेका जो कारण था, वह तुम्हारे प्रश्नानुसार मैंने कह सुनाया। तभीसे दोनों सुरतरु पुष्पकमें विराजमान रहे ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ अयोध्यामें सीताके साथ रामचन्द्रजी उन्हीं वृक्षोंके नीचे दिव्य पर्यङ्कके ऊपर विहार करते हुए विविध प्रकारके सुखोंको भोगते थे ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ इसीलिए मैंने रामसहस्रनामका कथन करते समय कल्पवृक्षके नीचे रामका ध्यान करनेको कहा था। तभीसे पारिजातके सैकड़ों अंश पृथ्वीतलमें उत्पन्न हुए और वे आज भी इस धरतीतलमें विद्यमान हैं। इसके समान रामचन्द्रजीको प्रसन्न करनेवाला कोई दूसरा फूल नहीं है ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ कल्पवृक्षके अंशसे पीपल वृक्षकी भी उत्पत्ति हुई है। उसकी आराधना करनेसे सब प्रकारकी कामना पूर्ण होती है ॥ ७७ ॥ अन्य युगोंमें पुण्य अधिक था। इस कारण लोग पीपलके वृक्षकी आराधना करते थे। किन्तु कलियुगमें पापकी अधिकता होनेके कारण लोग उसका पूजन नहीं करना चाहते ॥ ७८ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपाण्डेयविरचित'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासमन्विते राज्यकांडे पूर्वार्द्धे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

विष्णुदासने कहा--हे गुरो! भगवान्‌के दस अवतारोंमें राम-कृष्ण दो अवतार श्रेष्ठ माने जाते हैं। यह मैंने पहले कई बार सुना है ॥ १ ॥ अब आप हमको यह बतलाइए कि इन दोनों अर्थात् राम और कृष्णमें कौन बड़ा है। जिसको आप श्रेष्ठ बतलायेंगे, मैं सर्वदा उसीका चरित्र सुना करूँगा ॥ २ ॥ श्रीरामदासने कहा—हे विष्णुदास! तुमने ठीक प्रश्न किया है। सावधान मन होकर सुनो। इन दोनों अवतारोंमें मनुष्यको रामका अवतार ही श्रेष्ठ समझना चाहिए ॥ ३ ॥ इसके लिए एक मनोहर कथा आपसमें दो ब्राह्मणोंके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अयोध्याविषये कश्चिद्द्विजो रामाह्वयस्त्वभूत् । द्वारकायां तथा विप्रः कृष्णाख्योऽभूत्परः सुधीः ॥५॥
चक्रतुः सेवनं चोभौ सर्वदा रामकृष्णयोः । तावेकदा माघमासे प्रयागे मिलितौ द्विजौ ॥ ६ ॥
उभौ स्नात्वा त्रिवेण्यां हि माधवं परिपूज्य च । कथां पौराणिकमुखाच्छ्रोतुं तत्पुरतः स्थितौ ॥ ७ ॥
शुश्रुवतुः कथास्तत्र प्रसंगाद्राघवस्य च । रामाख्यो रामभक्तः स श्रुत्वा राघवसत्कथाम् ॥ ८ ॥
तुष्टस्तं पूजयामास मुदा पौराणिकं तदा । कृष्णाख्यः क्रोधसंयुक्तस्तदा वचनमब्रवीत् ॥ ९ ॥
किं क्लेशिनोऽद्य रामस्य कथां श्रुत्वाऽतिहर्षितः ।
पूजितोऽपि वृथा व्यासस्त्वं मूढोऽसीति वेद्म्यहम् ॥१०॥
नान्यच्चरित्रं कस्यापि पावनं श्रुतितोषदम् । यथा कृष्णस्य मे रम्यं नानाक्रीडापुरःसरम् ॥११॥
तत्कृष्णवचनं श्रुत्वा रामाख्यः प्राह सस्मितः ।

रामोपासक उवाच

रामः क्लेशी कथं प्रोक्तस्त्वया कृष्णः कथं सुखी ॥१२॥
कथं कृष्णस्य ते रम्यं चरितं दुरितापहम् । कथं रामस्य मे रम्यं चरितं नेरितं त्वया ॥१३॥
वदाद्य विस्तरेणैव शृण्वंत्वेते सभासदः ।

कृष्णोपासक उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया राम सावधानमनाः शृणु ॥१४॥
वदामि राघवस्याथ कृष्णस्य चरितं त्वहम् । क्लेशदं तोषदं नृणां शृण्वंत्वेते सभासदः ॥१५॥
तव रामस्य जन्मादौ जातः शापः पितुः पुरा । शापस्यादावपि पुरा तद्धेतो रावणेन हि ॥१६॥
लंकां तत्पितरौ नीतौ प्रारंभे दुःखमीदृशम् । मम कृष्णस्य जन्मादौ तत्पित्रोः सौख्यदायकैः ॥१७॥
विवाहमंगलैः कंसः पूजयामास सादरम् ।

विवादरूपमें कही गयी थी। वह कथा परम पुण्यदायिनी है, उसे सुनो ॥ ४ ॥ एक समय अयोध्यामें राम नामका एक ब्राह्मण रहा करता था। उसी तरह द्वारकापुरीमें कृष्ण नामका विद्वान् विप्र रहता था ॥ ५ ॥ वे दोनों सदा राम और कृष्णकी उपासना किया करते थे। एक समय माघ महीनेमें त्रिवेणीके तटपर उन दोनोंकी भेंट हुई ॥ ६ ॥ उन्होंने त्रिवेणीमें स्नान किया और वेणीमाधवकी पूजा करके किसी करके एक पौराणिकके पास कथा सुननेकी इच्छासे जा बैठे ॥ ७ ॥ दोनों कथा सुन रहे थे। उसमें कहीं रामका प्रसंग आ गया। उसे सुनकर वह राम नामवाला ब्राह्मण बहुत प्रसन्न हुआ और हर्षपूर्वक पौराणिककी भली भाँति पूजा की। इससे कृष्ण नामवाला ब्राह्मण मारे क्रोधके लाल हो गया और कहने लगा—जगत्को कष्ट देनेवाले रामकी कथा सुननेसे तुम्हें क्या लाभ हुआ, जो तुम इतने प्रसन्न हो और तुमने व्यासकी ऐसी पूजा की। मेरी समझमें तो यही आता है कि तुम बड़े मूर्ख हो ॥ ८-१० ॥ मुझे तो और किसीका चरित्र इतना सुन्दर नहीं लगाता, जितना श्रीकृष्णका। क्योंकि उस चरित्रमें त्रिविध प्रकारकी लीलाएँ भरी हुई हैं ॥ ११ ॥ कृष्ण नामक ब्राह्मणकी यह बात सुनकर रामोपासक मुसकाता हुआ कहने लगा कि तुमने रामचन्द्रको कैसे दुःखी बतलाया और कृष्णको सुखी ॥ १२ ॥ तुमने कृष्णचरित्रको कैसे पापनाशक बतलाया और रामचन्द्रजीका नाम लेना भी पसन्द नहीं किया। तुम इसे विस्तारपूर्वक कहो। जिससे ये सभासद भी सुनें। कृष्णोपासकने कहा—हे राम! तुमने बहुत ठीक प्रश्न किया हे। अब सावधान होकर सुनो ॥ १३ ॥ १४ ॥ मैं रामचन्द्र तथा कृष्णचन्द्र इन दोनोंका चरित्र सुनाता हूँ। उनमें रामचरित्र कैसा क्लेशप्रद और कृष्णचरित्र कितना सुखकर है, सो सब सभासद सुनते जायँ ॥ १५ ॥ तुम्हारे रामके जन्मके पहले ही उनके पिताको श्रवणके पिताका शाप मिल चुका था। उसके भी पहले उनके माता-पिताको रावण अपनी लंकामें उठा ले गया था। इस प्रकार रामके जन्मके पहले उनके माता-पिताको

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection / Dr. Ramdev Tripathi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

रामोपासक उवाच

रे रे शृणु त्वं दुर्बुद्धे न स शापो वरोऽर्पितः ॥१८॥

यत्प्रसादादपुत्रस्य नृपस्य तनयस्त्वभूत् । तथा मद्रामभीत्या तौ नीतावपि विसर्जितौ ॥१९।

दशास्येन तत्पितरौ जन्मादौ पौरुषं त्विदम् । तव कृष्णस्य जन्मादौ पित्रोः कारागृहस्थितिः ॥२०॥

राजभोगनिषेधार्थं शापो यदुकुलाय च । जन्मापि बंदिशालायां वियोगश्च तयोरपि ॥२१॥

सहोदरवधश्चापि तद्धेतोर्मातुलेन हि । न बाहुजश्च वैश्यश्च यस्य तातावुभौ स्मृतौ ॥२२॥

गोरक्षकस्य तनयः प्रवासः शैशवेऽपि च ।

परेण पोषितश्चापि कनीयान् बलभद्रतः । एवं नानाविधं दुःखं तव कृष्णस्य नो सुखम् ॥२३॥

कृष्णोपासक उवाच

आत्मार्थं तव रामेण ताटिका स्त्री विदारिता । नार्यौ विमोचितो बाणः पित्रोः खेदो वियोगतः ॥२४॥

रामोपासक उवाच

द्विजघ्ना निहता दुष्टा मम रामेण ताटिका । मुनियज्ञरक्षणार्थं मुदा राज्ञाऽर्पितौ शिशू ॥२५॥

तव कृष्णेन रक्षार्थमात्मनः पूतना हता । तथाऽऽत्मार्थं प्राणिहिंसा बहु तेन कृता व्रजे ॥२६॥

गोपैश्च सङ्गतिस्तस्य तथैव गोपरक्षणम् । गोवधः सर्पघातश्च खगवाजिवधस्तथा ॥२७॥

रासभवृषघातश्च चौर्यं द्यूतं वनेऽटनम् । कंबलावरणं शीतपर्जन्योष्णप्रपीडनम् ॥२८॥

क्षुत्तृड्भ्यां पीडनं नित्यं गोपालोच्छिष्टसेवनम् । आत्मार्थं याचितं चान्नं द्विजस्त्रीभ्यो वने मुहुः ॥२९॥

इन्द्रध्वजपूजनादिवृद्धाचारप्रलोपनम् । परस्त्रीगमनं ज्येष्ठनारीभिः क्रीडनं चिरम् ॥३०॥

कितना क्लेश हुआ। इसके विपरीत हमारे कृष्णके जन्मके पहले कंसने उनके माता-पिताको वैवाहिक तथा मङ्गलमयी सामग्रियोंसे पूजा की थी। रामोपासकने कहा—अरे दुर्बुद्धे! वह रामचन्द्रके पिताको शाप नहीं, बल्कि वरदान मिला था। जिसके प्रसादस्वरूप निपूते महाराज दशरथके घरमें रामचन्द्रादि चारों भाइयोंका जन्म हुआ और हमारे रामचन्द्रजीके डरसे ही रावण उनके माता-पिताको ले जाकर भी अयोध्यामें लौटा गया था॥ १६–१९॥ जन्मके पहले ही मेरे रामचन्द्रजीमें इतना पौरुष था। तुम्हारे कृष्णके जन्मके प्रथम ही उनके माता-पिता कारागारमें बन्द थे। दूसरे यदुकुलको राजभोगनिषेधके निमित्त पहले ही शाप प्राप्त हो चुका था। उनका जन्म भी हुआ तो जेलखानेमें और वहाँ थोड़ी ही देरमें माता-पितासे वियोग हो गया। कृष्णके कितने ही सगे भाई मामाके द्वारा पहले ही मार डाले गये। उनको जो कृत्रिम माता-पिता मिले भी, वे न तो क्षत्रिय थे और न वैश्य॥ २०–२२॥ तुम्हारे कृष्ण एक ग्वालेके लड़के बने। इस प्रकार वे शैशवास्थामें ही प्रवासी हो गये। औरोंने उनकी रक्षा की और तुम्हारे कृष्ण बलरामसे छोटे थे। इसीलिए कृष्णको अनेक प्रकार-का दुःख मिला, सुख कुछ भी नहीं॥ २३॥ कृष्णोपासक बोला—अपनी रक्षा करनेके लिए तुम्हारे रामने ताड़ुका नामवाली एक स्त्रीका वध किया और रामके वियोगसे उनके माता-पिताको महान् क्लेश हुआ॥२४॥ रामोपासकने कहा—हमारे रामने ब्राह्मणोंकी हत्या करनेवाली स्त्री ताड़ुकाको मारा था और विश्वामित्रकी यज्ञरक्षाके लिए उन्हें पिता दशरथने प्रसन्नतापूर्वक मुनिके साथ भेजा था॥२५॥ किन्तु तुम्हारे कृष्णने अपने लिए पूतनाको मारा था। इसी प्रकार उन्होंने आत्मरक्षाके लिए व्रजमें और भी बहुत-सी प्राणिहिंसाएँ की थीं॥२६॥ गोप-ग्वालोंका साथ था और वे गोपोंकी ही रक्षा करते थे। उन्होंने गौ (धेनुकासुर), पक्षी (बकासुर), वाजि (केशी), रासभ तथा वृष आदिको मारा, चोरी की, जुआ खेले और वनोंमें इधर-उधर घूमते रहे। शीत, वर्षा तथा आतपसे बचनेके लिए अपने ऊपर केवल एक कम्बल डाले रहते थे॥ २६–२८॥ भूख-प्याससे दुखी होकर ग्वालोंका जूठन खाते थे। अपने लिए उन्होंने वनमें ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंसे बार-बार अन्न माँगा॥ २९॥ इन्द्रध्वज-पूजन आदि वृद्धोंकी कुलपरम्पराका उन्होंने लोप किया। वे परस्त्रियोंके साथ घूमते

CC0. In Public Domain. Shri Shashi Sharma Rajajgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नग्नस्त्रीदर्शनं वह्विप्राशनं दामबन्धनम् । उन्मूलनं च यमयोर्मृत्पर्युषितसेवनम् ॥३१॥
रोदनं नवनीतार्थं मुहुर्मात्रा प्रताडनम् । गोगोपिकासु चास्नेहः पूर्वस्थलविसर्जनम् ॥३२॥
कृता रजकहत्या च युद्धं क्षत्रियवत् कृतम् । गजहत्या मल्लहत्या युद्धं मातुलमर्दनम् ॥३३॥
नैष्ठुर्यमाप्तवर्गेषु राज्यप्राप्तिस्तथैव च । नृपाज्ञावर्तनं चापि क्रीडा दास्या कुरूपया ॥३४॥
युद्धात्पराजयश्चापि रिपवे पृष्ठदर्शनम् । गिरौ दग्धः परैर्ज्ञातः स्वीयस्थलविमोचनम् ॥३५॥
अब्धितारनिवासश्च बलात्स्त्रीहरण कृतम् । भौमासुरपरद्रव्यहरणं परस्रुतः ॥३६॥
स्वीयगोत्रवधार्थं हि पांडुजायोपदेशितम् । शनैः स्तेयावरोपाश्च वृक्षार्थं सङ्गरः सुरैः ॥३७॥

कृष्णोपासक उवाच

किं त्वं जल्पसि शृण्वद्य तव रामस्य कामिनः । कस्य सा दुहिता ब्रूहि कृतः स वर्णसङ्करः ॥३८॥
शिवचापस्य भंगेन शिवस्याप्यपराधितम् । जामदग्न्यमानभङ्गकरणं मुद्गलस्य च ॥३९॥
आज्ञां विना लक्ष्मणेन तद्वल्ल्यस्त्रोटिताः शुभाः । सदारण्यचरः स्वार्थं पशुहिंसापरायणः ॥४०॥
वनाश्रमी वन्यजीवी मांसाहारी धनुर्धरः । व्याधकर्मरतः शीतपर्जन्योष्णप्रपीडितः ॥४१॥
पादगामी चर्मवासा जटावल्कलवान्नखी । श्मश्रुधारी तरुच्छायाश्रयी पात्रविवर्जितः ॥४२॥
राक्षसेन हृता पत्नी तव रामस्य कानने । पत्न्यर्थं हि कृतः शोकस्तथा दास्या प्रपूजितः ॥४३॥

रामोपासक उवाच

रामेण मोचिता पत्नी कृता छायामयी पुरा । न सा दासी तु शबरी मुनिसेवनतत्परा ॥४४॥

और अपनेसे बड़ी स्त्रियोंके साथ खेलते फिरते थे। वे नङ्गी नारियोंको देखते थे। उन्होंने मिट्टी खायी और कितने ही बार तो लोगोंके जूठन तक खाये थे। रस्सीसे बाँधे गये तो यमल-अर्जुन नामक दो वृक्षोंको उखाड़ डाला ॥ ३० ॥ ३१ ॥ थोड़ेसे माखनके लिए रोने लगते थे और माता यशोदाके द्वारा बार बार पीटे भी गये। अन्तमें अपनेसे अतिशय प्रेम रखनेवाली गोपिकाओंके प्रति निठुराई करके उस पवित्र वृजधामको छोड़ दिया ॥ ३२ ॥ मथुरामें रजककी हत्या की और (ग्वाले होकर) क्षत्रियोंके समान युद्ध किया। उन्होने गजहत्या और मल्लहत्या करके मामाकी भी हत्या की ॥ ३३ ॥ अपनोंके साथ निठुराई करके उन्होंने राज पाया। फिर भी एक दूसरे राजाकी आज्ञामें बँधकर रहे। बादमें एक कुरूप दासीके साथ क्रीड़ा की ॥ ३४ ॥ युद्ध हुआ तो उसमें पराजित होकर शत्रुको पीठ दिखायी और पर्वतपर जाकर छिपे। शत्रुओंने अपनी समझसे उन्हें जला ही दिया था। फिर अपने स्थान मथुराको छोड़कर समुद्रके किनारे जाकर रहने लगे। वहाँ भी बरबस बहुतेरी स्त्रियोंका हरण किया। भौमासुरके द्रव्योंको उन्होंने चुराया ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ अपने भाइयों तथा कुटुम्बियोंको मारनेके लिए पाण्डवोंको उपदेश दिया। लोगोंने उन्हें स्यमन्तक मणिकी चोरी लगायी। एक वृक्षके लिए उन्होंने देवताओंके साथ संग्राम किया ॥ ३७ ॥ कृष्णोपसक बोला—क्या व्यर्थ बकवास करते हो, सुनो। आज मैं तुम्हारे कामी रामकी करनी तुम्हें सुनाता हूँ। बताओ, जिसको उन्होंने अपनी भार्या बनायी थी, वह वर्णसंकर कन्या थी या नहीं ? ॥ ३८ ॥ शिवजीका धनुष तोड़ करके शिवका अपराध किया। परशुरामका मान भङ्ग किया। मुद्गलकी आज्ञाके बिना ही लक्ष्मण द्वारा उन्होंने लतायें तोड़ मँगवाई। जङ्गलमें इधर-उधर घूमते हुए पेट भरनेके लिए पशुहिंसा करते थे ॥ ३९ ॥ ४० ॥ बहुत दिनों तक वनमें आश्रम बनाकर रहे। वनके फल-मूल तथा मांस खाते और धनुष धारण किये बहेलियोंका काम करते रहे। सर्वदा बेचारे शीत-आतप तथा मेहके सताये रहते थे ॥ ४१ ॥ पैदल चलते, चमड़ा पहिनते, बड़े-बड़े नख तथा जटा-वल्कल धारण किये रहते थे। बड़ी-बड़ी दाढ़ी-मूँछ रखाये पेड़ोंकी छायामें रहकर समय बिताते थे। उनके पास एक पात्र भी नहीं रहता था कि जिसमें खा-पी सकें ॥ ४२ ॥ वनमें उनकी स्त्रीको एक राक्षस चुरा ले गया। उसके लिए विविध प्रकारका विलाप करते रहे और उनकी पूजा एक दासी शबरीने की ॥ ४३ ॥ रामोपासकने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जीवन्मुक्ता तत्कृपया मोक्षमाप शुचिव्रता । तव कृष्णस्य ताः पत्नीर्भोक्ष्यंत्यद्यापि शत्रवः ॥४५॥
जित्वाऽर्जुनं बलादेव हृताः पूर्वं सहस्रशः । स्त्रीजितश्च स्त्रिया दत्तः क्रयक्रीतश्च नारदात् ॥४६॥
सर्वासां कामपूर्त्यर्थं निशि निद्राविवर्जितः । बंधुभ्यां गोपिका भुक्ता मातृतुल्या वयोधिकाः ॥४७॥

कृष्णोपासक उवाच

बंधुना तव रामश्च पशुभीत्या न निद्रितः । बंधुपत्न्यर्पिता तारा सुग्रीवाय यथासुखम् ॥४८॥
वानरैश्च कृता मैत्री स्पर्शितं दुन्दुभेः शवम् । निरर्थकं हतो वाली साहाय्यं वानरैः कृतम् ॥४९॥
वानरो यस्य वै यानं वृथा ताला विदारिताः । सागरो रोधितो येन लङ्का सा ज्वालिता वरा ॥५०॥

रामोपासक उवाच

दरिद्रेण सुदाम्ना ते कृष्णेन मैत्रिकी कृता । न ज्ञेया वानरास्तेऽपि सर्वे देवांशरूपिणः ॥५१॥
काषटचेन हतो येन जरासंधो निरर्थकः । साहाय्यं सर्वदा यस्य कृतं गोपैर्व्रजे वने ॥५२॥
गोपालस्य कृतं यानं क्रीडनं सर्वदा वने । ज्वालिता येन सा काशी सुहृद्रुक्मी विरूपितः ॥५३॥
शिवभक्तेन समरः कृतो बाणेन सादरम् । शिवेनापि कृतं युद्धं चैद्येन निंदितो मुहुः ॥५४॥
परैः पौत्रौ जितौ यस्य येन स्त्रीणां परस्परम् । कृता विषमता चात्र पारिजातार्पणादिभिः ॥५५॥

कृष्णोपासक उवाच

तवापि रामपुत्रेण सुहृद्बद्धो रणे जितः । शिवभक्तदशास्येन रामेण समरः कृतः ॥५६॥
द्विजहत्या कृता येन मुनिना निंदितोऽपि यः । तथा मित्रं जितो यस्य बंधुजेन विभीषणः ॥५७॥
परगेहस्थिता पत्नी पुनर्येनाश्रिता सुखम् । नैष्ठुर्यं च कृतं पत्न्यां स्त्रीणां कामा न पूरिताः ॥५८॥

कहा—हमारे रामने अपनी छायामयी पत्नीको राक्षसके हाथसे छुड़ाया था। जिसको तुम दासी कह रहे हो, वह दासी नहीं, बल्कि मुनियोंकी सेवामें तत्पर शबरी थी ॥ ४४ ॥ रामचन्द्रजीकी कृपासे वह जीवन्मुक्त हो गयी और उसे मोक्ष मिल गया। किन्तु तुम्हारे कृष्णकी पत्नियोंको आज भी उनके शत्रुगण भोग रहे हैं ॥ ४५ ॥ कृष्णकी हजारों स्त्रियोंको अर्जुनसे दस्युलोग छीन ले गये थे। कृष्ण पूरे स्त्रैण थे। उनकी एक स्त्रीने तो उन्हें दान दे दिया था और बादमें उसी सत्यभामाने नारदसे उन्हें खरीदा ॥ ४६ ॥ सब स्त्रियोंकी कामपूर्तिके लिए उन्हें रात-रात भर जागना पड़ता था। दोनों भाइयोंने उन बड़ी स्त्रियोंके साथ क्रीड़ा की थी, जो माताके समान थीं ॥४७॥ कृष्णोपासकने कहा—तुम्हारे राम पशुओंके भयसे रात-रात भर जागा करते थे। बड़े भाईकी स्त्री ताराको रामने बड़ी हँसी-खुशीके साथ सुग्रीवको दे दी थी। वानरोंके साथ उन्होंने मैत्री की और दुन्दुभी नामक राक्षसके शवका स्पर्श किया। वालि बेचारेको बिना किसी अपराधके मार डाला। वानरोंने उनकी सहायता की ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ वानर ही उनकी सवारीका काम देते थे। बिना किसी प्रयोजनके उन्होंने सात ताल वृक्षोंको काटकर गिरा दिया। सागरमें पुल बनाया और सोनेकी सुन्दर लङ्कापुरी जलवा दी ॥५०॥ रामोपासक बोला—तुम्हारे कृष्णने एक दरिद्र ब्राह्मण सुदामाके साथ मित्रता की थी। जिन्हें तुम वानर कह रहे हो, वे वानर नहीं, बल्कि वानरका शरीर धारण करके सब देवता रामकी सेवाको आये थे ॥ ५१ ॥ तुम्हारे कृष्णने कपट करके व्यर्थ जरासंधका वध करवाया था। वनमें सदा गोपगण उनकी सहायता करते रहते थे ॥ ५२ ॥ उन्होंने गोपोंको अपनी सवारी बनायी और सदा वनमें इधर-उधर खेलते रहे। उन्होंने काशी नगरीको जलवा डाला और अपने सगे साले रुक्मीको कुरूप कर दिया ॥ ५३ ॥ शिवभक्त बाणासुरके साथ उन्होंने युद्ध किया और स्वयं शिवको भी उनके साथ युद्ध करना पड़ा। शिशुपालने उनकी खूब निन्दा की ॥ ५४ ॥ शत्रुओंने उनके पौत्रको जीतकर अपने वशमें कर लिया और पारिजातादिको देते समय अपनी स्त्रियोंमें भी उन्होंने भेदभाव किया ॥ ५५ ॥ कृष्णोपासकने कहा—तुम्हारे रामके बेटेने भी तो अपने ससुरको बाँध लिया और रामने शिवभक्त रावणके साथ युद्ध किया था ॥ ५६ ॥ उन्होंने ब्रह्महत्या तक कर डाली और मुनि अगस्त्यने उनकी अच्छी तरह निन्दा की। [illegible] भाई विभीषणको फोड़कर मित्र

CC0. In Public Domain. Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

यानारूढा कृता यात्रा वेश्याः स्पृष्टास्तथा रहः। पतिव्रतायां सीतायां दोषारोपः कृतोऽपि च ॥५९॥
पुत्रं हंतुं कृता चाज्ञा शूद्रसिंहवधौ कृतौ। पत्नीसक्ताऽऽश्रिता येन यस्याज्ञा पालिता नृपैः ॥६०॥

रामोपासक उवाच

अंते कृष्णस्य ते शापाद्वंशच्छेदो ह्यभूद्द्विज। अब्धिना लोपिता यस्य नगरी द्वारका शुभा ॥६१॥
स्वगोत्रस्य वधस्त्वंते मद्यपानादि यत्कुले। दर्शनं ह्यर्जुनायान्ते येन मित्राय नार्पितम् ॥६२॥
स्वस्थानं गमनं येन कृतमेकाकिना तथा। स क्षतोऽपि कृतस्त्वन्ते व्याधेनाल्पेन पत्रिणा ॥६३॥

कृष्णोपासक उवाच

तव रामेण समरः पुत्रेणापि कृतो महान्। तथा सीता मया त्यक्ता चेति लोकं प्रतार्य च ॥६४॥
वाल्मीकेराश्रमं गत्वा दृष्टौ सीतासुतौ रहः। पिण्याकेन तथेङ्गुद्या पिंडदानादिकं कृतम् ॥६५॥
दंडके तव रामेण स्वपित्रे भ्रमताऽर्पितम्। तथैरावणभुक्तायाः स्पृष्टः स मञ्चकः स्थले ॥६६॥
तथाऽश्वत्थच्छेदनार्थं महान् यज्ञः कृतो मुहुः। स्वमंत्रिणश्च शेषायुःपूर्त्यर्थं सङ्गरोऽपि च ॥६७॥
कारितो यमराजेन पूर्वजेन लवादिभिः। पुष्पास्वादनमात्रादिपत्न्याः शिक्षा तथा कृता ॥६८॥
मम कृष्णेन बालत्वे लीलया पूतना हता। हतास्तृणासुराद्याश्च धृतोऽङ्गुल्या गिरिस्तथा ॥६९॥

रामोपासक उवाच

मम रामेण बालत्वे लीलया ताटिका हता। मारीचाद्या हताश्चापि पर्वतास्तारिता जले ॥७०॥

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णस्वरूपेण गोपिका मोहिता व्रजे। मोहिता राधिका श्रेष्ठा मदनस्यापि मोहिनी ॥७१॥

रामोपासक उवाच

मम रामेण देवाना मोहिताः स्वीयरूपतः। देवपत्न्यो रहो रात्रौ मातृतुल्या विचिंतिताः ॥७२॥

बनाया ॥ ५७ ॥ दूसरेके घरमें रही हुई स्त्रीको लाकर घरमें रख लिया। फिर उसी स्त्रीके साथ निठुराई की। बहुत-सी स्त्रियाँ कामयाञ्चाके लिये पहुँचीं, किन्तु उनकी कामना उन्होंने पूर्ण नहीं की ॥५८॥ सवारीपर चलकर तीर्थयात्रा की। एकान्तमें वेश्यागमन करके पतिव्रता सीतापर झुठमूठका दोषारोप किया ॥ ५९ ॥ उन्होंने अपने पुत्र लव तकको मारनेकी आज्ञा दे दी और शम्बुक शूद्र तथा सिंहका वध किया ॥ ६० ॥ रामोपासकने कहा—हे द्विज ! अन्तमें तुम्हारे कृष्णका ब्राह्मणके शापसे वंश नष्ट हुआ था। उनकी द्वारिका-पुरीको समुद्रने लय कर लिया ॥ ६१ ॥ उन्होंने मद्यपान करवाकर अपने कुटुम्बियोंका बध किया। अन्तिम समयमें अपने अतिप्रिय मित्र अर्जुनको भी दर्शन नहीं दिया ॥ ६२ ॥ उन्होंने अकेले ही यहाँसे गोलोककी यात्रा की। एक बहेलियेके साधारण बाण द्वारा उन्होंने अपना अन्त किया ॥ ६३ ॥ कृष्णोपासक बोला—तुम्हारे रामने अपने पुत्रके साथ महान् संग्राम किया था। "मैंने सीताका परित्याग कर दिया है" ऐसा संसारको दिखलाते हुए भी वाल्मीकिके आश्रमपर जाकर चुपकेसे सीताको और अपने बेटेको देख आये। पिण्याक और इंगुदीके फलसे अपने पिताको पिण्डदान दिया ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ जब दण्डकारण्यमें इधर-उधर घूम रहे थे, तब भी इन्हीं फलोंसे पिताका श्राद्ध किया था। ऐरावत द्वारा भोगे हुए मंचको उठाकर पृथ्वीतलमें ले आये ॥ ६६ ॥ अश्वत्थ काटनेके अपराधपर रामने एक महायज्ञ किया। मन्त्रियोंको शेष आयुकी पूर्तिके निमित्त अपने बड़े बेटेको यमराजसे लड़ा दिया और केवल फूल सूँघ लेनेसे स्त्रियोंको भी उन्होंने दण्ड दिया ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ हमारे कृष्णने बाल्यकालमें खेल-खेलमें ही पूतनाको मार डाला। तृणासुर आदि दैत्योंको मारकर गोवर्धन गिरिको उँगलियोंपर उठा लिया ॥ ६९ ॥ रामोपासकने कहा—हमारे रामने बाल्यकालके समय खेल-खेलमें ताड़का तथा मारीचादि कितने ही राक्षसोंको मार डाला और पानीमें पत्थर तैराया ॥ ७० ॥ कृष्णोपासक बोला—हमारे प्रभु कृष्णने अपने सुन्दर रूपसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ताः कृतार्थाः स्ववराद्यतो जातास्तु गोपिकाः । ताम्बूलोच्छिष्टस्वरसं दासी रामस्य भक्तितः ॥७३॥
पीत्वा यस्यैव वरतो व्रजे सा राधिका ह्यभूत् । अतो मे राघवो धन्यो यस्यैका दयिताऽत्र हि ॥७४॥

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णेन पत्न्यश्च सहस्राणि हि षोडश । साष्टोत्तरशतान्यत्रोद्वाहिताश्च विधानतः ॥७५॥

रामोपासक उवाच

मम रामस्वरूपेण सर्वास्ता मोहिताः स्त्रियः । मातृवन्मोहितास्तेन वीरेण पुरुषार्थिना ॥७६॥
कृष्णेन रतिकामेन मोहिता गोपिकाः स्त्रियः ।

कृष्णोपासक उवाच

गजेन्द्रो मम कृष्णेन लीलया निहतो द्विज ॥७७॥

रामोपासक उवाच

मम रामेण नागेंद्ररिपुरष्टापदो हतः ।

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णप्रतापेन यमुना खंडिता त्वभूत् ॥७८॥

रामोपासक उवाच

मम रामप्रतापेन खंडिता जाह्नवी त्वभूत् ।

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णेन वै स्वर्गादानीतः सुरपादपः ॥७९॥

रामोपासक उवाच

मम रामेण स्वर्गादानीतौ सुरपादपौ ।

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णेन स्वगुरोर्मातुश्चापि सुता मृताः ॥८०॥
सुजीविताः समानीताः सप्त ताभ्यां निवेदिताः ।

व्रजकी समस्त गोपियोंको मोहित कर लिया और राधानामवाली उस सुन्दरीको मुग्ध कर लिया था, जो अपने असाधारण सौन्दर्यसे कामदेवको भी लजाती थी ॥ ७१ ॥ रामोपासकने कहा—हमारे रामने अपने सौन्दर्य-से देवपत्नियोंको मोहित किया था। वे सब रात्रिके समय एकांतमें रामके पास पहुँचीं। किंतु उन्हें रामने अपनी माताके समान माना और वरदान देकर कृतार्थ किया। वे ही जन्मान्तरमें गोपिकायें हुईं। उस समय रामचन्द्रके मुखसे ताम्बूलके निकाले हुए पीगको पीनेवाली दासी दूसरे जन्ममें राधा हुई। इससे मेरे रामचन्द्र धन्य हैं। क्योंकि वे एकपत्नीव्रतधारी हैं ॥ ७२–७४ ॥ कृष्णोपासकने कहा—हमारे कृष्णचन्द्रजीने सोलह हजार एक सौ आठ स्त्रियोंके साथ विधिवत् विवाह किया था ॥ ७५ ॥ रामोपासकने उत्तर दिया कि हमारे रामचन्द्रजीने अपनी सुन्दरतासे संसारकी समस्त नारियोंको मोह लिया था, किन्तु स्त्रीके भावसे नहीं—अपितु माताके भावसे। क्योंकि हमारे राम वीर और पुरुषार्थी थे ॥ ७६ ॥ कृष्णने गोपोंकी नारियोंपर मोहिनी डाली थी अपनी कामवासनाकी पूर्तिके लिए। कृष्णोपासकने कहा—हे द्विज ! हमारे कृष्णने खेल खेलमें कुबलयापीड हाथीको मार डाला था ॥ ७७ ॥ रामोपासक बोला—मेरे रामने अष्टापद नामक राक्षसको खेल-खेलमें मार डाला था। कृष्णोपासकने कहा—मेरे कृष्णने अपने प्रतापसे यमुनाकी धारा खण्डित कर दी थी ॥ ७८ ॥ रामोपासकने कहा—मेरे रामके प्रतापसे गंगा खण्डित हो गयी थी। कृष्णोपासकने कहा—हमारे कृष्ण अपने पराक्रमसे कल्पवृक्ष ले आये ॥ ७९ ॥ रामोपासकने कहा—हमारे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

रामोपासक उवाच

मम रामेण साकेते सप्त मर्त्याः सुजीविताः ॥८१॥

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णेन पौरुष्याद्विप्रस्य जीविताः सुताः ।

रामोपासक उवाच

मम रामेण सचिवः सुमंत्रो जीवितः पुनः ॥८२॥

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णेन द्रौपद्याः संधितं हि फलं तरौ ।

रामोपासक उवाच

मम रामेण वैदेह्याः संधितं तुलसीदलम् ॥८३॥

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णप्रतापश्च जनान्संदर्शितः पुरा । दुर्वाससाऽन्नयाञ्चा सा गोपिकानां कृता वृजे ॥८४॥

रामोपासक उवाच

मम रामप्रतापश्च जनान् सन्दर्शितः पुरा । दुर्वाससाऽन्नयाञ्चा सा कृता रामस्य तत्पुरि ॥८५॥

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णेन रूपाणि बहून्यत्र कृतानि हि ।

रामोपासक उवाच

बहूनि राघवेणापि स्वरूपाणि कृतानि हि ॥८६॥

कृष्णोपासक उवाच

मम कृष्णेन मित्राय दत्तं स्वर्णमयं पुरम् ।

रामोपासक उवाच

मम रामेण मित्राय दत्ता स्वर्णमयी पुरी ॥८७॥

कृष्णोपासक उवाच

सूर्यग्रहे कुरुक्षेत्रे स्नानं कृष्णेन मे कृतम् ।

रामचन्द्रजीने अयोध्यामें बैठे-बैठे स्वर्गसे कल्पवृक्ष तथा पारिजातको मँगा लिया था। कृष्णोपासक बोला—हमारे कृष्णजी अपने गुरुजीके मरे हुए सात पुत्रोंको यमपुरीसे लाये और उन्हें जीवित करके अपने गुरुजीको दे दिया था। रामोपासकने कहा—हमारे रामचन्द्रजीने अयोध्यामें मरे हुए सात मनुष्योंको जीवित कर दिया था ॥ ८० ॥ ८१ ॥ कृष्णोपासकने कहा—हमारे कृष्णने द्रौपदीके कथनानुसार बिना फलवाले वृक्षमें भी फल लगा दिया था। रामोपासक बोला—हमारे रामने भी सीताके कहनेपर तुलसीदलके दो टुकड़ोंको जोड़ दिया था ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ कृष्णोपासक कहने लगा—हमारे श्रीकृष्णजीने जंगलमें दुर्वासाके अन्न माँगनेपर उनकी माँग पूरी की थी ॥ ८४ ॥ रामोपासक बोला—हमारे रामने भी अयोध्यामें दुर्वासाके अन्न माँगनेपर उनकी इच्छा पूर्ण की थी। इससे हमारे रामका प्रताप सब संसार देख चुका है ॥ ८५ ॥ कृष्णोपासक बोला—हमारे कृष्णने अनेक रूप धारण किये थे। रामोपासकने कहा—हमारे राम भी लंकासे लौटकर अयोध्या आनेपर अनेक रूप धारण करके सबसे एक साथ मिले थे। कृष्णोपासक बोला—श्रीकृष्णने अपने मित्र सुदामाको सुवर्णकी नगरी दे डाली थी। रामोपासकने कहा कि हमारे रामने भी अपने मित्र विभीषणको सोनेकी लंका दे दी थी ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ कृष्णोपासक बोला—हमारे कृष्णने सूर्यग्रहणमें कुरुक्षेत्रमें जाकर स्नान किया था। रामो-

CC-0. In Public Domain. Kamlesh Sharma, Ghaziabad, Delhi Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

रामोपासक उवाच

सूर्यग्रहे कुरुक्षेत्रे रामेणाप्यवगाहितम् ॥८८॥

मे रामस्य वचश्चैकं सत्यमेव च नान्यथा । ते कृष्णस्य ह्यनेकानि वचनान्यनृतानि हि ॥८९॥

रामस्य मे शरस्त्वेकः शत्रुनिर्दलनक्षमः । विफलास्तव कृष्णस्य बहवोऽरिषु मार्गणाः ॥९०॥

एका स्त्री मम रामस्य ते कृष्णस्य बहुस्त्रियः । पत्न्याःशय्यां विना नान्या शय्या रामस्य वै मम॥९१॥

स्त्रीणां शय्यां विना बह्वीः शय्याः कृष्णस्य ते द्विज । रामस्थितिर्मध्यदेशे साकेते सरयूतटे ॥९२॥

अब्धेस्तटे पश्चिमे ते स्थितिः कृष्णस्य वै तव । बंधुत्रयं मे रामस्य कृष्णस्यैकोऽग्रजस्तव ॥९३॥

गौर्मणिः पुष्पकं वृक्षौ कटके मुनिनाऽर्पिते । ऐरावतकुलोद्भूतचतुर्दन्तो गजोऽपि च ॥९४॥

एतानि मम रामस्य नव रत्नानि संति हि । मणिद्वयं पारिजातस्त्विति रत्नत्रयं तव ॥९५॥

कृष्णस्य संति भो विप्र त्वं तं स्तौषि कथं वृथा । सप्तद्वीपेश्वरो रामो मम पृथ्वीशवंदितः ॥९६॥

ईशत्वं जगदीशत्वं सममेव द्वयं स्मृतम् । अतो न मम रामेण तुल्यं कृष्णं विचिंतय ॥९७॥

यस्य चापं हि कोदण्डं यस्याक्षय्याः पतत्रिणः । विप्रेष्टपूरणं यस्य व्रतं नित्यं द्विजोत्तम ॥९८॥

यस्य सिंहासनं छत्रं व्यजनं चामरद्वयम् । यस्य यानं पुष्पकं तत्सुपुत्रौ तौ पितुः समौ ॥९९॥

अद्यापि पाल्यते यस्य दत्तं दानं द्विजोत्तमान् । रामनाथपुरस्यैव राज्यं रामस्य मे नृपैः ॥१००॥

तव कृष्णेन किं दत्तं वद यद्वर्ततेऽधुना । करोत्यहर्निशं शंभुश्चापि मे रामचिंतनम् ॥१०१॥

तारकं मे रामनाम काश्यां शंभुर्जनान्सदा । मृत्यून्मुखांस्तारणार्थं द्विजोपदिशति स्वयम् ॥१०२॥

अतएव जनाँश्चापि सर्वत्र मरणोन्मुखान् । स्वीयान्मुहुः शिक्षयंति ध्येयो रामोऽधुना त्विति ॥१०३॥

तथा प्राणिविमोक्षार्थं सदा तच्छववाहकैः । राऽरामेति रामेति नाम भूम्यामुदीर्यते ॥१०४॥

यन्नाममहिमा चोक्तं तं स्तौम्यधुना मुहुः । वाल्मीकिनाऽप्यत एव पूर्वं तच्चरितं कृतम् ॥१०५॥

पासकने कहा कि हमारे रामने भी तो कुरुक्षेत्रमें स्नान किया था ॥ ८८ ॥ मेरे राम सदा सत्य बचन बोलते थे, किन्तु तुम्हारे कृष्णकी बहुत-सी बातें झूठी हो गयी थीं ॥ ८९ ॥ मेरे रामका एक वाण शत्रुको मारनेके लिए पर्याप्त होता है, किन्तु तुम्हारे कृष्णके न जाने कितने बाण विफल हो चुके हैं ॥ ९० ॥ हमारे रामकी केवल एक स्त्री सीता है और तुम्हारे कृष्णकी बहुत-सी स्त्रियाँ हैं। पत्नीकी शय्याके अतिरिक्त हमारे रामकी कोई और शय्या नहीं है, लेकिन तुम्हारे कृष्णकी बहुत-सी ऐसी शय्यायें हैं, जो विना स्त्रीके हैं। हमारे राम सरयूके तटपर अयोध्यामें रहते हैं ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ इसके विपरीत तुम्हारे कृष्ण पश्चिमी समुद्रके किनारे रहते हे। मेरे रामके तीन भाई हैं और तुम्हारे कृष्णके केवल एक भाई है ॥ ९३ ॥ हमारे रामके पास कामधेनु गौ, मणि, पुष्पक, कल्पवृक्ष, पारिजात, मुनि अगस्त्य द्वारा दिये हुए दो कङ्कण, ऐरावत वंशमें उत्पन्न चतुर्दन्त हाथी ये नौ रत्न सदा विद्यमान रहते हैं। हे विप्र ! तुम्हारे कृष्णके पास दा मणि तथा परिजात बस ये ही तीन रत्न हैं ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ तब नाहक ऐसे कृष्णकी क्यों व्यर्थ स्तुति करते हो ? रामचन्द्रजी सात द्वीपोंके स्वामी एवं राजाओंसे भो वन्दित हैं ॥ ९६ ॥ राम ईश भी हैं और जगदीश भी, उनमें दोनों विशेषतायें हैं। तब मेरे रामके बराबर कृष्णको मत मानो। उनके पास घनुष है और अक्षय सायक हैं। वे ब्राह्मणोंकी इच्छा पूर्ण करनेको सदा तत्पर रहते हैं ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ जिनके पास सिंहासन है, दो चमर एवं छत्र हैं, जिनके पुष्पक विमानकी सवारी है और पिताके सदृश गुणवाले दो बेटे हैं। जिनका दान दिया हुआ रामनाथपुर आज भी विद्यमान है। तुम्हीं बताओ कि तुम्हारे कृष्णने क्या चीज दानमें दी है, जो आजतक विद्यमान है। साक्षात् शिवजी भी सदा मेरे रामका भजन करते हैं ॥ ९९-१०१ ॥ काशीमें मरणोन्मुख प्राणियोंको शिवजी घूम-घूमकर रामतारक मंत्र सुनाया करते हैं। इसीलिए संसारके लोग मरते समय कहते हैं—"रामका ध्यान करो भैया, रामका भजन करो" ॥१०२॥१०३॥ मृत प्राणीकी मोक्षप्राप्तिके निमित्त ही शवको उठानेवाले लोग भी रामनामका उच्चारण करते चलते हैं ॥ १०४ ॥ जिनके नामकी ऐसी महिमा है, मैं उन रामकी स्तुति करता हूँ। इसीलिए

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

शतकोटिमितं श्रेष्ठं यस्मिन् रामायणे द्विज । कृष्णादीनां चरित्राणि संति ह्यंतर्गतानि हि ॥१०६॥

श्रीरामदास उवाच

एवं तयोर्विवदतोर्द्विजयोश्च परस्परम् । बभूवाकाशजा वाणी तां तौ सर्वे च शुश्रुवुः ॥१०७॥

रामस्याग्रे स्तुतिः केषामपि कर्तुं घटेत न । इति तां खेचरीं वाणीं श्रुत्वा सर्वे सभासदः ॥१०८॥

चक्रुर्जयस्वनान्हस्तैर्वादयंति स्म तालिकाः । तं रामोपासकं सर्वे ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः ॥१०९॥

निर्जरा अपि ते सर्वे विमानस्था मुदान्विताः । तं रामोपासकं प्रीत्या ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः ॥११०॥

तदा कृष्णोपासकः स लज्जया नतमस्तकः । तं रामोपासकं नत्वा प्रार्थयामास वै मुहुः ॥१११॥

तदा रामोपासकोऽपि तं नत्वाऽऽलिंग्य वै दृढम् । उवाच मधुरं वाक्यं शृणु कृष्ण द्विजोत्तम ॥११२॥

न नन्दसूनोः पृथगस्ति रामो न रामतोऽन्यो वसुदेवसूनुः ।
तथाऽप्ययोध्यापुरपालबाले सलक्ष्मणे धावति मे मनीषा ॥११३॥

अतः स्तुतो मया रामः कृष्णस्य निंदनं कृतम् । तवेर्ष्यया द्विजश्रेष्ठ वेद्मि तौ द्वौ समाविति ॥११४॥

राम एवात्र कृष्णश्च कृष्ण एवात्र राघवः । उभयोर्नान्तरं विप्र कौतुकाच्च मयेरितम् ॥११५॥

मानयत्यंतरं यो ना तयोः श्रीरामकृष्णयोः ।
परस्परं स निरये पतिष्यति न संशयः । त्वद्गर्वपरिहारार्थं खेचर्या राघवः स्तुतः ॥११६॥

इत्युक्त्वा सांत्वयित्वा तं रामः कृष्णाह्वयं द्विजम् । तूष्णीं तस्थौ सभामध्ये सभासद्भिः सुपूजितः ११७॥

ततस्तौ माघमासांते स्वं स्वं देशं प्रजग्मतुः । तस्माच्छिष्यावतारेषु न रामसदृशः परः ॥११८॥

अतस्तं भज भावेन तस्यैव चरितं शृणु । यदन्यद्वर्णयाम्यग्रे महामंगलकारकम् ॥११९॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानंदरामायणे राज्यकांडे पूर्वार्धे
श्रीरामकृष्णोपासकयोर्विवादो नाम तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

बहुत दिन पहले वाल्मीकिने रामायण बनाया था ॥ १०५ ॥ जिसकी श्लोकसंख्या सौ करोड़ है और तुम्हारा समस्त कृष्णचरित्र उसमें समा जाता है ॥ १०६ ॥ श्रीरामदासने कहा—जिस समय वे दोनों इस प्रकार परस्पर विवाद कर रहे थे, तभी आकाशवाणी हुई—"रामके आगे स्तुति करनेकी सामर्थ्य किसीमें नहीं है"। उसे उन दोनों तथा अन्य लोगोंने सुना। इस प्रकारकी आकाशवाणी सुनकर वहाँ बैठे हुए समस्त सभासद रामकी जय-जयकार करते हुए तालियाँ बजाने लगे और उस रामोपासकपर पुष्पवृष्टि की ॥ १०७–१०९ ॥ इतना ही नहीं, देवतागण भी विमानोंपर आ-आकर हर्षसे रामोपासकपर फूल बरसाने लगे। तब लज्जासे नतमस्तक होकर कृष्णोपासकने रामोपासकको प्रणाम करके बार-बार विनती की ॥ ११० ॥ १११ ॥ रामोपासकने भी उसे प्रणाम करके छातीसे लगा लिया और कहा—॥ ११२ ॥ हे द्विजोत्तम ! न कृष्णसे पृथक् राम हैं, न रामसे पृथक् कृष्ण हैं। फिर भी अयोध्या नगरीके पालक लक्ष्मणसहित बालरूपधारी रामको ही भजनेकी मेरी इच्छा होती है ॥ ११३ ॥ इसी कारण अभी मैंने रामकी स्तुति की और कृष्णकी निन्दा। यह सब केवल तुम्हारी ईर्ष्यासे कहा-सुनी हुई। नहीं तो वास्तवमें मैं दोनोंको समान समझता हूँ ॥ ११४ ॥ राम ही कृष्ण हैं और कृष्ण ही राम हैं। इन दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है। अभी मैंने जो कुछ कहा, वह सब कौतुकमात्र था ॥ ११५ ॥ जो मनुष्य राम और कृष्णमें अन्तर मानता है, उसे नरकगामी होना पड़ेगा। इसमें कोई संशय नहीं है। केवल तुम्हारा गर्व दूर करनेके लिए अभी आकाशवाणीने भी रामकी स्तुति की थी ॥ ११६ ॥ ऐसा कह तथा कृष्णनामक द्विजको सान्त्वना देकर सभासदोंसे पूजित होता हुआ राम विप्र सभामें चुपचाप बैठ गया ॥ ११७ ॥ माघमास व्यतीत हो जानेपर वे दोनों अपने-अपने देशको लौट गये। इसीलिये मैं कहता हूँ—हे शिष्य ! समस्त अवतारोंमें रामावतारके सदृश कोई भी अवतार नहीं है ॥ ११८ ॥ अतएव तुम उन रामका भजन करो और उनकी वह कथा सुनो, जो आगे चलकर मैं सुनाऊँगा ॥ ११९ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपाण्डेयकृत 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकासमन्विते राज्यकाण्डे पूर्वार्द्धे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

चतुर्थः सर्गः

(रामका सौ स्त्रियोंको वरदान एवं मूलकासुरोपाख्यान)

श्रीरामदास उवाच

एकदा राघवः शिष्य सभासंस्थो जनैर्वृतः । ददर्श द्राक्षावल्लीनां मंडपे काकमुत्तमम् ॥ १ ॥
उभयोर्नेत्रयोरेकनेत्रमूर्तिसमन्वितम् । अतिदीनं कृशं व्यग्रदृष्टिं दीर्घस्वरं चलन् ॥ २ ॥
मुहुर्मुहुश्च पश्यंतमात्मानं शब्दपूर्वकम् । तं दृष्ट्वा तत्कृपाविष्टः स्मृत्वा क्रोधं पुरा कृतम् ॥ ३ ॥
उवाच काकं श्रीरामः सुखमागच्छ मेऽन्तिकम् । तद्रामवचनं श्रुत्वा द्राक्षावल्ल्याश्च मंडपात् ॥ ४ ॥
शीघ्रमुड्डीय काकस्तु रामाग्रे सदसि स्थितः । रामं पश्यन्दीर्घरवं स चकार मुहुर्मुहुः ॥ ५ ॥
तदा तं राघवः प्राह तत्कृपाविष्टमानसः । नेत्रं विना वरानन्यान् काक याचस्व मां प्रति ॥ ६ ॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा काकः प्राहावनीपतिम् । कृपावलोकनं राम मय्यस्तु तव सर्वदा ॥ ७ ॥
किं वरैरितरैर्व्यर्थैरिहैव सुखदायकैः । तत्काकवचनं श्रुत्वा रामस्तं वाक्यमब्रवीत् ॥ ८ ॥
द्वीपान्तरेषु यद्वृत्तं भविष्यं भूतमेव च । वर्तमानं च सकलं त्वन्नेत्रविषयेऽस्तु तत् ॥ ९ ॥
भाविकार्याणि सर्वाणि काक त्वं वेत्सि मद्वरात् । जनाः पश्यंतु ते गत्या शकुनांश्च निरंतरम् ॥१०॥
स्थिरत्वे स्थिरकार्याणि गते त्वय्यतिसत्वरम् । भविष्यन्ति हि कार्याणि नराणां शकुनं त्विति॥११॥
पश्यंतु सकला भूमौ जनाः कार्यप्रसिद्धये । ग्रामे गृहप्रवेशे ते वामभागे न चेद्गतिः ॥१२॥
गमने दक्षिणे भागे यदि ते गमनं तदा । लोकानामस्तु शकुनं महामंगलकारकम् ॥१३॥
प्रेतदशाहपिंडाय यदि स्पर्शो भवेन्न ते । माऽस्तु तर्हि गतिस्तेषां प्रेतानां मम वाक्यतः ॥१४॥
अन्तकाले मानवस्य वांछितं नैव पूरितम् । प्रेतदशाहपिंडस्यास्पर्शाज्जानंतु तन्नराः ॥१५॥
प्रेतस्य वंशजः कश्चिद्यद्यत्प्रेतस्य वांछितम् । तत्त्वे स्पर्शाद्धि दित्वा तु स यदा पूरयिष्यति ॥१६॥

श्रीरामदास कहने लगे—हे शिष्य ! एक दिन बहुतेरे मनुष्योंसे घिरे हुए रामचन्द्रजी सभामें बैठे थे। तभी अंगूरकी लताओंमें बैठे एक कौएको देखा कि वह एक ही नेत्रसे दोनों नेत्रोंका काम ले रहा है। कौआ अपनी आकृतिसे अतिदीन, व्यग्रदृष्टि, ऊँचे स्वरवाला और चञ्चल दीखता है ॥ १ ॥ २ ॥ रामचन्द्रजीने देखा कि वह बार-बार मेरी ओर देख रहा है और कांव-कांव करके बोलता भी जाता है। उसकी यह दशा देखकर रामके हृदयमें दया आयी और अपने पहले किये हुए कोपका स्मरण करके कौएसे बोले—हे काक ! यहाँ मेरे पास आओ। यह सुनकर कौआ उस द्राक्षावल्लीसे उड़ा और रामके आगे आकर बैठ गया। सभामें वह रामको देखता हुआ जोर-जोरसे चिल्लाने लगा ॥ ३–५ ॥ रामने कौएसे कहा—तू अपने नेत्रोंके सिवाय जो कुछ भी वर माँगना चाहे, माँग ले ॥ ६ ॥ इस प्रकारकी बातें सुनकर पृथ्वीपति रामसे कौआ कहने लगा—हे राम ! मेरे ऊपर इसी तरह सदा आपकी कृपादृष्टि बनी रहे ॥ ७ ॥ केवल इस लोकमें सुख देनेवाले अन्य वरदानोंको लेकर मैं क्या करूँगा ॥ ८ ॥ कौएकी बात सुनकर रामचन्द्रजीने कहा—किसी द्वीपान्तरमें भी होनेवाली भूत, भविष्य और वर्तमानकी सब बातें तुम्हारी आँखोंके सामने रहेंगी ॥ ९ ॥ होनेवाले अर्थात् भविष्यके सब कार्योंको तुम मेरे वरदानसे जान लोगे। मनुष्य कहीं जाते समय सदा तुम्हारा शकुन देखा करेंगे ॥ १० ॥ जब तुम बैठे रहोगे, तब देखनेवाले पथिकका काम रुक जायगा और तुम चलते रहोगे तो उसका कार्य शीघ्र पूर्ण हो जायगा। इस प्रकार लोग तुम्हारा शकुन देखेंगे ॥ ११ ॥ ग्रामप्रवेश या गृहप्रवेशके समय तुम जिसकी दाहिनी ओरसे निकल जाओगे, वह परम मङ्गलकारक शकुन होगा ॥ १२ ॥ १३ ॥ प्रेतके दशाहपिंडको जब तक तुम नहीं छू लोगे, तब तक उस प्रेतकी सद्गति कदापि नहीं होगी ॥ १४ ॥ यदि प्रेतके दशाहपिंडको नहीं छुओगे तो उसके घरवाले लोग समझेंगे कि अभी प्रेतकी इच्छा पूरी नहीं हुई है। प्रेतका कोई वंशज, तुम जिन-जिन चीजोंको नहीं छुओगे,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तदा पिंडं स्पृशस्व त्वं नोचेन्मा स्पृश सर्वथा । अन्यमेकं वरं दद्मि लिपिमात्रे तु पुस्तके ॥१७॥
यत् किंचिल्लेखकैश्च विस्मृतं तत्र मद्वरात् । कुर्वन्तु पदचिह्नं ते सर्वत्र जगतीतले ॥१८॥
त्वत्पदं पुस्तके दृष्ट्वा जना जानंतु विस्मृतम् । लिखितं पार्श्वभागेषु लेखकैः पुस्तकस्य यत् ॥१९॥
इति दत्त्वा वरान् रामस्तूष्णीमासीत्स्मिताननः । काकोऽपि तुष्टः श्रीरामं नत्वोड्डीय गतस्तदा ॥२०॥
एवं नानाचरित्राणि चकार रघुनन्दनः । एकदा राघवो रात्रौ पारिजाततरोरधः ॥२१॥
निद्रितो हेमपर्यंके जानक्याऽस्पृश्यया विना । एतस्मिन्नंतरे तस्यां रात्रौ ते रामरक्षकाः ॥२२॥
द्वारपाश्चापि दास्यश्च दासाद्याः सकलास्तदा । ययुर्वै कीर्त्तनं श्रोतुं क्वापि रामस्य भक्तितः ॥२३॥
दृष्ट्वा तं समयं वेगात्कामबाणप्रपीडिताः । पौराणां शतनार्यस्ता वस्त्रालंकारभूषिताः ॥२४॥
तारुण्यमदसंभ्रांता हेमकुम्भपयोधराः । चंद्राननाः शुकघ्राणाः कमलांघ्रयो मृगीदृशः ॥२५॥
पीतकौशेयवसना रुक्मनुपूरनिःस्वनाः ।
परस्परं ताः संमंत्र्य प्रथमे वयसि स्थिताः । ययुः सर्वाः पुष्पके श्रीराघवं रहसि स्थितम् ॥२६॥
काचित्तं बीजयामास श्रीरामं व्यजनेन हि । काचिद्दधार रामार्थं स्वकरे पुष्पमालिकाम् ॥२७॥
काचित्तांबूलपात्रं च काचित्कुंभं जलस्य सा । पात्रं निष्ठीवनस्यान्या सा दधार विलासिनी ॥२८॥
दधार चन्दनं काचित्काचिद्दिव्यान्नमुत्तमम् । काचित्पक्वान्ननैवेद्यं काचिद्रंभाफलादिकम् ॥२९॥
एतस्मिन्नंतरे काचित्पादसंवाहनं शनैः । रामस्य कर्तुमुद्युक्ता तत्पदं पाणिनाऽस्पृशत् ॥३०॥
तेन रामः प्रबुद्धोऽभूत्स्मृत्वाऽपृश्यां विदेहजाम् । केन मे स्पर्शितः पादश्चकितश्चेत्युपाविशत् ॥३१॥
तावद्ददर्श श्रीरामः शतशश्च पुरः स्थिताः । पौराणां प्रमदाः सर्वा रुक्मालङ्कारमंडिताः ॥३२॥
रामं समुत्थितं दृष्ट्वा प्रणेमुस्तास्तदा भुवि । स्वशिरांसि निधायाथ तुष्टुवुर्विविधोक्तिभिः ॥३३॥

उनको अधूरी समझकर जब पूर्ण करेगा, तब जाकर उस प्रेतको सद्गति प्राप्त होगी । तुम भी उसके दशाहपिण्डको तभी छूना, जब उनका प्रत्येक अंग पूर्ण हो जाय । तुम्हें दूसरा वरदान यह भी देता हूँ कि जो लेखक लिखते समय कुछ भूल जायँगे, वे वहाँपर तुम्हारे पैरका चिह्न बना दिया करेंगे ॥ १५–१८ ॥ पुस्तकके पार्श्वभागमें तुम्हारे पैरका चिह्न देखकर लोग समझ जायँगे कि वहाँपर "कुछ भूल है ॥ १९ ॥ इस प्रकार उस कौएको वरदान देकर रामचन्द्रजी मुस्काते हुए चुप हो गये। कौआ भी भगवान्‌को प्रणाम करके वहाँसे उड़ गया ॥ २० ॥ इस तरह रामचन्द्रजी विविध प्रकारकी लीलायें किया करते थे। एक दिन रात्रिके समय पारिजात वृक्षके नीचे रजस्वला सीताके बिना राम अकेले सुवर्णके पलंगपर सो रहे थे। उसी रात्रिमें जितने भी द्वारपाल-दास आदि थे, वे सब भक्तिवश कहीं रामकीर्तन सुननेके लिए चले गये थे ॥ २१–२३ ॥ उसी समय मौका पाकर सौ नारियाँ विविध प्रकारके वस्त्राभूषण धारण किये कामके बाणसे पीडित होकर रामचन्द्रजीके पास जा पहुँचीं ॥ २४ ॥ वे सब तरुणाईके मदसे भरी थीं, सुवर्णकुम्भके समान उनके स्तन थे, चन्द्रमाकी भाँति उनका मुख था, तोतेकी ठोरके समान उनकी नासिका थी, कमलकी नाईं उनके पाँव थे और मृगियोंके समान उनके नेत्र थे ॥ २५ ॥ वे सब पीले वस्त्र धारण किये थीं। सोनेके नूपुर रुनझुन करके बोल रहे थे। उनकी उमर भी बहुत थोड़ी थी। वे सब पुष्पकके समीप एकान्तमें सोये हुए रामचन्द्रजीके पास जा पहुँचीं ॥ २६ ॥ वहाँ जाकर कोई रामको पंखा झलने लगी और कोई अपने हाथमें फूलोंकी माला लेकर उनके उठनेकी प्रतीक्षा करने लगी। किसीने पानदान लिया और किसीने जलसे भरी झारी ली। किसीने पीगदान उठाया, किसी दूसरी विलासिनीने चन्दन लिया, किसीने दिव्य पकवान और कोई नाना प्रकारके फल लेकर रामचन्द्रजीके जागनेकी प्रतीक्षा करने लगी ॥ २७–२९ ॥ इसी बीचमें एक स्त्रीने रामचन्द्रजीका पैर दबानेकी इच्छासे धीरे-धीरे उनका पैर उठाया ॥ ३० ॥ इससे वे चौंक पड़े और सोचने लगे कि सीता तो इस समय अस्पृश्य है, तब यह कौन पैर उठा रहा है। यह विचार करते-करते चकित भावसे वे उठ बैठे ॥ ३१ ॥ तब अपने सामने उपस्थित उन सौ नारियोंपर उनकी दृष्टि पड़ी। तब रामने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ताः सर्वा राघवः प्राह किमर्थमिह पुष्पके । रात्रौ समागताः सर्वास्तथ्यं मां कथ्यतां स्त्रियः ॥३४॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा विलज्जंत्यः पुरस्त्रियः । अवाङ्मुखाः संस्थितास्तास्तूष्णीमेव समंततः ॥३५॥
तासु काचित्तदा रामं गतलज्जाऽब्रवीद्वचः । सर्वं जानंति प्रभवो यदर्थमागता वयम् ॥३६॥
उपेक्षणीया नो राम वयं सर्वाः स्त्रियस्त्वया । इति तासामभिप्रायं ज्ञात्वा स रघुनन्दनः ॥३७॥
अब्रवीन्मधुरं वाक्यं शृणुध्वं प्रमदोत्तमाः । एकपत्नीव्रतं मेऽस्ति मातृतुल्याः स्त्रियो मम ॥३८॥
इतराः सकलाः सीतारहिताश्चेह जन्मनि । गच्छध्वं निजगेहानि मा माऽघर्मोऽस्तु मयि नृपे ॥३९॥
राज्यं शासति भो नार्यः क्षमितं वोऽपराधितम् । इति ता रामवाग्बाणैः कामबाणप्रपीडिताः ॥४०॥
ताडिताश्च विशेषेण निपेतुर्मूर्छिता भुवि । पतितास्ता निरीक्ष्याथ सर्वा रामोऽतिविह्वलः ॥४१॥
ता उवाच पुनः शीघ्र सुष्ठुवाक्यैः कृपान्वितः । शृणुध्वं मे वचो नार्यः सकृद्रत्या मया सह ॥४२॥
युष्माकं न भवेत्तुष्टिर्व्रतभङ्गोऽपि मे भवेत् । अतः शृणुत मे वाक्यं यागे पूर्वं मयाऽर्पिताः ॥४३॥
गुरवे रुक्मजाश्चैव सीतायाः शतमूर्तयः । तासां फलेन युष्माभिर्द्वापरे क्रीडनं चिरम् ॥४४॥
करिष्यामि न संदेहः कृष्णरूपेण वै सुखम् । नानानृपाणां युष्माभिर्भवध्वं योषितस्तदा ॥४५॥
भौमासुरश्च युष्माकं संहरिष्यति वै यदा । तदा सर्वा मोचयामि हत्वा तं जगतीसुतम् ॥४६॥
करिष्यामि विवाहांश्च युष्माभिर्द्वारकापुरि । स्त्रीषोडशसहस्राणामूर्ध्वतोऽन्याः शतं त्वहम् ॥४७॥
इति रामवचः श्रुत्वा तुष्टास्ताः पुरयोषितः । नत्वा रामं ययुः सर्वास्तूर्णीं स्वं स्वं गृहं प्रति ॥४८॥
ततः स्त्रीस्ता विसर्ज्यासौरामो दासीः समाह्वयत् । दृष्ट्वा कामपि नो दासीं रामो दासांस्तदाह्वयत् ॥४९॥
तेष्वप्येकं न दृष्ट्वा स द्वारपालान्समाह्वयत् । तानप्यदृष्ट्वा रामस्तु रक्षकांश्च समाह्वयत् ॥५०॥

देखा कि वे सब पुरवासिनी स्त्रियाँ सुवर्णके अलङ्कार पहने हैं। भगवान रामको उठा हुआ देखकर उन्होंने प्रणाम किया और अपना मस्तक पृथ्वीपर रखकर विविध प्रकारसे भगवान्की स्तुति करने लगीं ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ उनसे रामने पूछा कि तुम सब यहाँ इतनी रात्रिमें किस लिए आयी हो ? मुझे सच-सच बतला दो ॥ ३४ ॥ रामकी बात सुनकर वे पुरवासिनी स्त्रियाँ लज्जित होती हुई माथा नीचे करके चुपचाप खड़ी रह गयीं ॥ ३५ ॥ किन्तु उनमेंसे एकने निर्लज्ज होकर कहा—हे प्रभो ! आप सब जानते हुए भी हमसे आनेका कारण पूछ रहे हैं ? हम जिस लिए आयी हैं, आप वह सब जानते हैं ॥ ३६ ॥ हे राम ! अब आप हमारी उपेक्षा न कीजिये । इस प्रकारकी बातोंसे राम उनका अभिप्राय समझ गये और मीठी बातोंमें समझाते हुए कहने लगे– हे सुन्दरियों ! मैं एकपत्नीव्रतधारी हूँ। मेरे लिए इस जन्ममें सीताके सिवाय संसारकी सब नारियाँ माताके समान हैं ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ तुम सब अपने-अपने घरोंको जाती जाव। मैं राजा हूँ। मेरे ऊपर तुम सब पाप न लादो ॥ ३९ ॥ जब तक मैं प्रजाका शासक हूँ, तबतक ऐसा अनर्थ नहीं हो सकता । जाओ, मैंने तुम्हारा अपराध क्षमा किया। यह सुना तो कामबाणसे पीडित वे स्त्रियाँ रामके वाक्यरूपी बाणोंसे विद्ध और मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ीं। उनकी इस प्रकार गिरी देखकर रामचन्द्रजी बहुत विह्वल हो गये ॥ ४० ॥ ४१ ॥ वे कृपापूर्वक उनसे कहने लगे-हे नारियों ! मैं तुम्हारा मनोभाव जानता हूँ, किंतु केवल एक बारकी रतिसे तुम लोगोंकी इच्छा नहीं भरेगी और मेरा व्रत भी भंग हो जायगा। इसलिए मेरी बात सुनो--आजसे बहुत दिनों पहले यज्ञमें मैंने सीताकी सौ सुवर्णमयी मूर्तियाँ दान दी हैं। उन्हींके फलसे द्वापरमें मैं कृष्ण होकर बहुत दिनोंतक तुम सबोंके साथ क्रीड़ा करूँगा ॥ ४२-४४ ॥ तुम सब उस समय अनेक राजाओंकी पुत्रियाँ होकर जन्म लोगी। जब भौमासुर तुम सबको चुरा ले जायगा, तब मैं वहाँ पहुँचकर उसे मारूँगा और तुम्हें उससे छुड़ाऊँगा। तुम सबका विवाह द्वारका-पुरीमें होगा । उस समय तुम्हारी संख्या सोलह हजारसे भी ऊपर रहेगी और मैं मैं ही रहूँगा ॥ ४५-४७ ॥ इस प्रकार रामकी बात सुनकर प्रसन्नतापर्वक उन्होंने भगवान्को प्रणाम किया और चुपचाप अपने-अपने घरोंको लौट गयीं। उन स्त्रियोंको विदा करके रामचन्द्रजीने दासियोंको बुलाया, किन्तु

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तेष्वप्येकं न दृष्ट्वा स राघवश्चातिविस्मितः । विमानाट्टालमारुह्य सौमित्रिं वै समाह्वयत् ॥५१॥
उर्मिला रामवाक्यं तच्छ्रुत्वा तं चालयत्पतिम् । उर्मिलाचालनाच्छीघ्रं प्रबुद्धोऽभूत्स लक्ष्मणः ॥५२॥
रामवाक्यं सोऽपि श्रुत्वा रतिशालाबहिर्ययौ । दत्त्वा प्रत्युत्तरं राम ययौ वेगेन लक्ष्मणः ॥५३॥
एतस्मिन्नंतरे रामो रोदनं नगराद्बहिः । शुश्राव स्त्रीकृतं घोरं किमिदं चेति विस्मितः ॥५४॥
ततो दृष्ट्वा स सौमित्रिं सर्वं वृत्तं न्यवेदयत् । लक्ष्मणो रामवाक्य तच्छ्रुत्वा दूतान्निजांस्तदा ॥५५॥
प्रेष्य दूतान्कीर्तनस्थानादाह्वयामास वेगतः । रामदूतास्तदोचुस्तान् कथं श्रीरामकीर्तनम् ॥५६॥
असमाप्तं विहायाद्य गन्तव्यं स्वामिनं प्रति । तेष्वेव केचिदूचुस्ते पालनीया तु सेवकैः ॥५७॥
प्रभोराज्ञाऽद्य चास्माभिर्नो चेन्नः पातकं स्पृशेत् । केचिदुचुरिदं तस्य कीर्तनं मङ्गलप्रदम् ॥५८॥
स्वाम्याज्ञाभंगदोषघ्नं कथं त्यक्त्वा प्रगम्यताम् । केचिदूचुः कीर्तनस्थान् श्रुत्वाऽस्मान्स सुखी भवेत् ५९
इति संदिग्धचित्तास्ते न तदा राघवं ययुः । ततो लक्ष्मणदूतास्ते रामं वृत्तं न्यवेदयन् ॥६०॥
ततः किंचित् क्रोधयुक्तः सौमित्रिं प्राह राघवः । मत्कीर्तनसमासक्तान्नाहं दण्डयितुं क्षमः ॥६१॥
तथाप्येतन्न योग्यं हि किंचिच्छिक्षां करोम्यहम् । इत्युक्त्वा तां तु रुदतीं पुनः श्रुत्वा बहिः प्रभुः ॥६२॥
विमानं प्राह गच्छाद्य बहिः पुर्याः स्त्रियं प्रति । तथेति रामवाक्येन ययौ तन्नगराद्बहिः ॥६३॥
यत्र साऽतिविलापं स्त्री करोति सरयूतटे । तामंजननिभां नारीं रुदंतीं राघवोऽब्रवीत् ॥६४॥

राम उवाच

किं ते दुःखं वदस्वाद्य का त्वं रोदिषि वै कथम् । इति रामवचः श्रुत्वा सा रामं वाक्यमब्रवीत् ॥६५॥
चिरकालं करोम्यत्र रोदनं रघुनन्दन । अद्य श्रुतं त्वया राम किंचित्पुण्यचयान्मुनेः ॥६६॥

वहाँ कोई दासी नहीं दिखायी दी। तब सेवकोंको बुलाया। उनमेंसे भी कोई नहीं बोला। तब पहरेदारोंको पुकारा, किंतु उनमेंसे भी कोई नहीं बोला। जिससे रामचन्द्रजीको बड़ा विस्मय हुआ और विमानके ऊपरवाली अँटारीसे लक्ष्मणको पुकारा। रामचन्द्रकी आवाज उर्मिलाको सुनायी दी और उसने तुरन्त लक्ष्मणको जगाया। जागनेपर लक्ष्मणने भी रामकी आवाज सुनी और तत्काल उनकी बातका प्रत्युत्तर देकर तुरन्त रतिशालाके बाहर आकर वेगसे रामचन्द्रजीकी ओर चले ॥ ४८-५३ ॥ इधर रामचन्द्रजीने नगरके बाहर किसी स्त्रीका रोदन सुना। "हैं, यह क्या है!" यह कहकर वे बड़े विस्मित हुए ॥ ५४ ॥ तब तक लक्ष्मण भी आ पहुँचे और रामने उन्हें सब वृत्तांत सुनाया। लक्ष्मणने तुरन्त अपने दूतोंको उस स्थानपर जानेकी आज्ञा दी, जहांपर कीर्तन हो रहा था। लक्ष्मणके दूतोंने वहाँ पहुँचकर रामके दूतोंसे कहा--चलो, रामचन्द्रजी कबसे तुम सबको बुला रहे हैं। उन सबने जवाब दिया कि बिना रामकीर्तन समाप्त हुए अधूरा छोड़कर हम सब कैसे आयें। उनमेंसे किसीने कहा कि सेवकोंका धर्म है, स्वामीकी आज्ञाका पालन करना ॥ ५५-५७ ॥ यदि उनकी आज्ञा न मानेंगे तो हमको पातक लगेगा। उनमेंसे कोई बोल उठा कि यह रामकीर्तन तो विविध प्रकारके पातकोंको नष्ट करनेवाला है। अब इसको छोड़कर कहाँ जायँगे ॥ ५८ ॥ कुछ लोगोंने कहा कि जब वे हमको कीर्तनमें आया सुनेंगे तो प्रसन्न होंगे ॥ ५९ ॥ इस प्रकार असमञ्जसमें पड़कर वे लोग रामके पास नहीं आये। इधर लक्ष्मणके दूतोंने रामके पास आकर उनका हाल सुनाया ॥ ६० ॥ तब किंचित् क्रोधयुक्त रामने लक्ष्मणसे कहा कि यद्यपि मैं कीर्तन सुननेमें मग्न सेवकोंको दण्ड नहीं दे सकता ॥ ६१ ॥ किन्तु यह भी उचित नहीं है कि मैं उन सबको कुछ शिक्षा भी न दूँ। इतना कहकर रामने फिर वह नगरके बाहरवाला रोदन सुना ॥६२॥ तब उन्होंने विमानको आज्ञा दी कि नगरके बाहर कोई स्त्री रो रही है, तुम उसके पास चलो। 'बहुत अच्छा' कहकर विमान चल पड़ा और सरयूके तटपर जा पहुँचा, जहाँपर वह स्त्री विलाप कर रही थी। अञ्जनके समान उस काली-कलूटी स्त्रीको देखकर रामने पूछा--॥ ६३ ॥ ६४ ॥ तुम्हें क्या कष्ट है? तुम कौन हो और क्यों इस प्रकार रो रही हो? रामकी बात सुनकर उस नारीने कहा--॥ ६५ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

निर्मिता विधिना पूर्वं निद्रानाम्नी त्वहं प्रभो । दत्तं तेन मम स्थानं कुंभकर्णे चिरं सुखम् ॥६७॥
यावत्कालं स्थिता राम स त्वया निहतो रणे । ततो नष्टनिवासाऽहं गता शीघ्रं विधिं प्रति ॥६८॥
तेन त्वां प्रेषिता राम ततः प्राप्ता त्विमां पुरीम् । सीमाचारभयादस्यां नगर्यां न गतिर्मम ॥६९॥
अत्रैव संस्थिता राम शोचंती सरयूतटे । मे स्थानं वद रामाद्य यत्र स्थास्याम्यहं सुखम् ॥७०॥
तत्तस्या वचनं श्रुत्वा राघवो वाक्यमब्रवीत् । स्मृत्वा दूतकृतं पूर्वं तदा क्रोधेन चोदितः ॥७१॥
निद्रे शृणु वचो मेऽद्य ते स्थानं कीर्तयाम्यहम् । पापात्मानो नरा भूम्यां ये शृण्वंति हि कीर्तनम् ॥७२॥
पुराणश्रवणं वेदपठनं पूजनं जपम् । तपो ध्यानं च होमादि यद्यत् कुर्वन्ति पापिनः ॥७३॥
तेषु त्वं तिष्ठ मद्वाक्याद्धीनदेवनरेष्वपि । जडे बालेऽथ गुर्विण्यामुपवासोत्तरोऽशिवे ॥७४॥
तथा विद्यार्थिनि श्रांते वांते जागरकामुके । एतेषु ते स्थलं दत्तमेतान्मोहय मद्वरात् ॥७५॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा सा तुष्टा प्रणनाम तम् । ययौ रामः स्वनगरीं सुखं निद्रां चकार वै ॥७६॥
तदारभ्य पुरोक्तेषु वासं निद्राऽकरोत्सुखम् । पापात्मनामतो निद्रा बाधते पुण्यकर्मसु ॥७७॥
तदारभ्य सेवकेषु नरेष्वप्यवनीतले । निद्राग्रस्तेषु पुण्यात्मा सहस्रेष्वपि कश्चन ॥७८॥
शुश्राव तत्कीर्तनादि चकार पूजनादिकम् ।

श्रीरामदास उवाच

अथान्यां संप्रवक्ष्यामि कथां सीतायशस्करीम् ॥७९॥
कुंभकर्णस्य पुत्रस्य निकुंभस्य च गुर्विणी । प्रभूत्यर्थं पितुर्गेहं गता द्वीपांतरं प्रिया ॥८०॥
रावणादिवधे जाते तस्यां जातस्तु पौंड्रकः । मायापुर्यां शतशिराः शतद्वयकरः पुरा ॥८१॥

हे प्रभो ! यह बहुत समयकी बात है कि जब ब्रह्माने मुझे बनाया था। मेरा नाम निद्रा है और ब्रह्माने मुझपर दया करके कुम्भकर्णकी देहमें रहनेका स्थान दिया। तब मैं बड़े आनन्दसे उसमें रहने लगी ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ लेकिन आपने उसे भी मार डाला। मेरे रहनेका एक झोपड़ा था, उसे भी आपने उजाड़ दिया। ऐसी अवस्थामें रोती-कलपती हुई मैं ब्रह्माके पास गयी और उन्हें अपनी गाथा सुनायी। उन्होंने मुझे आपके पास भेजा और मैं इस जगह आ पहुँची। सीमारक्षकोंके भयसे इस नगरीमें घुसनेका साहस नहीं हुआ। इसलिए इसी सरयूके किनारे बैठी-बैठी विलाप किया करती हूँ। हे राम! अब आप कृपा करके मेरे रहनेके लिए कोई स्थान बतला दीजिए, जहां मैं रह सकूँ ॥ ६८-७० ॥ इस प्रकार उसकी बात सुनकर रामचन्द्रको पहले दूतकी बातें सोचकर कुछ गुस्सा आ गया और निद्रासे बोले—॥ ७१ ॥ हे निद्रे ! सुनो, मैं तुम्हें तुम्हारे रहनेके लिए स्थान बतलाता हूँ। जो पापी मनुष्य मेरा कीर्तन सुनने जायँ और वे पुराणश्रवण, वेदपाठ, पूजन, जप, ध्यान आदि जो कुछ भी करने लगें, उनमें तुम अपना डेरा जमाओ। जो लोग हीन प्रकृतिके हों, वे चाहे देवता हों या मनुष्य, जड़, बालक, गर्भिणी स्त्री, व्रतोत्तर भोजन करनेवाले, विद्यार्थी और थके हुए मनुष्योंमें तुम रहो। जो लोग ज्यादा जागते हों, उन लोगोंमें मैं तुम्हें रहनेके लिए स्थान देता हूँ। मेरे वरदानसे तुम इन्हींपर अपना मोहजाल फैलाओ ॥ ७२-७५ ॥ इस प्रकार रामकी बात सुनकर वह प्रसन्न हुई और उसने भगवान्‌को प्रणाम किया। उधर रामचन्द्र भी अपनी नगरीमें लौट आये और रातभर खूब अच्छी तरह सोये ॥ ७६ ॥ तभीसे ऊपर कहे हुए लोगोंमें निद्रा निवास करने लगी। इसीलिए यदि पापी मनुष्य कोई पुण्यकर्म करने लगता है, तब उसे निद्रा सताती है ॥ ७७ ॥ तभीसे पृथ्वीमण्डलमें निद्राने सेवकोंपर अपना मोहजाल फैलाया। सहस्रों निद्रालु मनुष्योंमें कहीं एक मनुष्य भी मुश्किलसे ऐसा मिलेगा, जो श्रवण-कीर्तन आदि शुभ कर्म करनेवाला पुण्यात्मा हो ॥ ७८ ॥ श्रीरामदास कहने लगे—अब मैं सीताके यशसे भरी एक दूसरी कथा सुना रहा हूँ ॥ ७९ ॥ कुम्भकर्णके बेटे निकुम्भकी गर्भिणी स्त्री बच्चा पैदा करनेके लिए किसी दूसरे द्वीपमें रहनेवाले अपने पिताके घर गयी थी ॥ ८० ॥ जब रामके साथ युद्ध करके रावण वंश समेत नष्ट हो

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

श्रोणानदीतटे चासीद्रावणः क्षीरसागरे । सहायात्पौंड्रकस्तस्योद्वेजयित्वा विभीषणम् ॥८२॥
शताननेन वै सार्धं लंकाराज्यं चकार सः । ततो विभीषणो रामं गत्वा सर्वं न्यवेदयत् ॥८३॥
सीताविभीषणाभ्यां वै रामो लंकां ययौ द्रुतम् । निहत्य रावणं सीता युद्धे रामे जितेऽथ तम् ॥८४॥
विभीषणाय तां लंकां हत्वा तं पौण्ड्रकं ददौ । अथैकदा सभासंस्थं राघवं स विभीषणः ॥८५॥
ययौ विषण्णः सचिवैश्चतुर्भिः ससुतः स्त्रिया । नत्वा रामं साश्रुनेत्रश्चोच्छ्वसन् कंपिताधरः ॥८६॥
उवाच सकलं वृत्तं लंकायाः प्रस्खलद्गिरा । राम राजीवपत्राक्ष त्राहि मां शरणागतम् ॥८७॥
मूलर्क्षे कुंभकर्णेन जातः पुत्रः पुरा वने । दूतैस्त्यक्तो वृक्षमूले बालकस्तत्र वर्धितः ॥८८॥
मक्षिकाभिः स्रवमनजलस्य विंदुभिर्मुहुः । सोऽधुना तरुणः श्रुत्वा त्वत्कृतं स्वकुलक्षयम् ॥८९॥
तपसा तोष्य ब्रह्माणं तद्वरेणातिगर्वितः । पातालस्थै राक्षसैश्च लंकायां समुपागतः ॥९०॥
मया तेन तु षण्मासं कृतं युद्धं महत्तमम् । मां जित्वा स पुरीं यातस्तदाऽहं सचिवैः स्त्रिया ॥९१॥
सपुत्रो गुप्तमार्गेण भूमिजेन पलायितः । शनैर्विवरमार्गेण लंकाया योजनोपरि ॥९२॥
रात्रौ बहिर्विनिर्गत्य विचारात्त्वां समागतः । मूलर्क्षे यः समुत्पन्नस्तरुमूले विवर्द्धितः ॥९३॥
मूलकासुरनाम्नाऽतः परां ख्यातिं गतोऽधुना । संगरे तेन मामुक्तमादौ त्वां तु विभीषणम् ॥९४॥
हत्वा लकापुरीं प्राप्य ततो गच्छामि राघवम् । मत्पिता निहतो येन निहतं सकलं कुलम् ॥९५॥
तं रामं संगरे हत्वाऽऽनृण्यं गच्छाम्यहं पितुः । आगमिष्यति सोऽत्रापि त्वां योद्धुं रघुनन्दन ॥९६॥
इदानीं यद्धितं चाग्रे तत्कुरुष्व रघूत्तम । तत्तस्य सकलं वृत्तं श्रुत्वा रामोऽतिविस्मितः ॥९७॥
लक्ष्मणं प्राह वेगेन पार्थिवान् जगतीतले । स्वस्वराज्यस्थितान्सर्वान्दूतैराकारयाधुना ॥९८॥

गया तो उस गर्भसे पौण्ड्रक नामका पुत्र जायमान हुआ ॥ ८१ ॥ श्रोणानदीके तटपर मायापुरी नामकी नगरीमें एक सौ सिरवाला रावण रहता था । उसके २०० भुजायें थीं । पौण्ड्रकने उस रावणकी सहायतासे विभीषणको परास्त कर दिया और शतानन रावणके साथ लंकाका राज्य स्वयं करने लगा । उस समय विभीषण रामके पास गये और उन्होंने अपना सब वृत्तान्त सुनाया ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ मित्रकी उस दुःखभरी कहानीको सुनकर राम सीता और विभीषणके साथ लंकाको चल दिये । वहाँ पहुँचकर उन्होंने उस सौ मुँहवाले रावण तथा पौण्ड्रकको मारा और फिर विभीषणको लंकाके सिंहासनपर बिठालकर अयोध्या लौट आये । इसके बाद एक दिन राम अपनी सभामें बैठे थे । तब अपनी स्त्री, पुत्र तथा मंत्रियोंके साथ विषण्ण भावसे बैठे हुए विभीषणने कहा—हे राम ! हे राजीवपत्राक्ष ! मैं आपकी शरणमें हूँ, मेरी रक्षा कीजिए ॥ ८४–८७ ॥ बहुत दिनोंकी बात है, जब मूल नक्षत्रमें कुम्भकर्णके एक पुत्र हुआ था । कुम्भकर्णने दूतों द्वारा उस लड़केको जङ्गलमें छोड़वा दिया । वहाँ मधुमक्खियोंने उसके मुँहमें मधुकी एक-एक बूँद टपकाकर उसकी रक्षा की । वह इस समय बड़ा हुआ है । जब उसने लोगोंके मुँहसे यह सुना कि रामने मेरे पिता तथा कुटुम्बियोंका नाश किया है ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ तब उग्र तपस्या द्वारा उसने ब्रह्माको संतुष्ट करके वर प्राप्त कर लिया । वरके प्रभावसे गर्वित होकर पातालनिवासी राक्षसोंकी सहायतासे उसने लङ्कापर चढ़ाई कर दी । मैंने छः महीने तक उसके साथ घमासान युद्ध किया । अन्तमें उसने हमें परास्त करके लङ्कापर अधिकार कर लिया । ऐसी अवस्थामें मैं आधी रातको अपने पुत्र, स्त्री एवं मंत्रियोंके साथ एक सुरङ्गके रास्तेसे भागा ॥ ९०–९२ ॥ एक योजन दूर भाग आनेपर ठहर गया, जब रात्रि व्यतीत हो गयी । तब आगे बढ़ा और आपके पास आ पहुँचा । वह मूल नक्षत्रमें पैदा हुआ तथा वृक्षोंके नीचे उसका पालन-पोषण हुआ है । इसीलिए लोग उसे मूलकासुर कहते हैं । युद्ध करते-करते एक बार उसने मुझसे कहा था कि इस रणभूमिमें पहले तुझको मारकर लङ्कापर अधिकार कर लेनेके बाद मैं उस रामके पास जाऊँगा, जिसने मेरे पिता तथा मेरे कुलका संहार किया है ॥९३–९५॥ संग्रामभूमिमें रामको मारकर मैं अपने पितृऋणसे उऋण हो जाऊँगा । हे रघुनन्दन ! मैं जहाँतक जानता हूँ, शीघ्र ही वह आपसे भी युद्ध करनेके लिए आयेगा ॥ ९६ ॥ ऐसी अवस्थामें आप जो उचित समझें सो करें । विभीषणका हाल

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तथेति रामवचनाद्दूतानाज्ञापयत्तदा । लक्ष्मणस्तेऽपि वेगेन गत्वा दूताः समागताः ॥९९॥
प्रोचुः सभायां श्रीरामं नृपाणां वचनानि ते । केचिन्नृपाः पालयंति तवाज्ञां रघुनन्दन ॥१००॥
केचिन्न पालयंत्याज्ञां तव तत्कारणं शृणु । चंपिकायाः सुमत्याश्च स्वयंवरसमुद्भवम् ॥१०१॥
दुःखं हृदयसंस्थं यत्तदद्यापि गतं न हि । यूपकेतुशराघातभिन्नमर्मस्थलाः पुनः ॥१०२॥
स्मृत्वा मदनसुन्दर्या दुःखं कांत्युद्भवं नृपाः । आज्ञां न पालयंत्यद्य तव राघव सत्प्रभो ॥१०३॥
पालिता यैस्तवाज्ञा ते सुग्रीवाद्या नृपोत्तमाः । स्वस्वकोटिबलैर्युक्ताः समायाताः सहस्रशः ॥१०४॥
तद्दूतवचनं श्रुत्वा रामो राजीवलोचनः । प्राह मानघातांस्ते स्पृहयंति नृपाधमाः ॥१०५॥
आदौ हत्वा कौंभकर्णिं तान्गच्छामि ततस्त्वहम् । इत्युक्त्वा सुदिने रामः सेनया बंधुभिर्जगाम ॥१०६॥
मूलकासुरघातार्थमादौ पुर्या बहिर्ययौ । किंचित्सैन्ययुतं पुर्यां यूपकेतुं न्यवेशयत् ॥१०७॥
कुशाद्याः सप्त बालास्ते रामेण सह निर्ययुः । विमाने सकलां सेनां स्थापयामास राघवः ॥१०८॥
तावत्ते पार्थिवाः सर्वे नानावाहनसंस्थिताः । वेष्टिताः स्वस्वसैन्यैश्च नत्वा रामं पुरः स्थिताः ॥१०९॥
तान् रामः स्थापयामास विमाने सैन्यसंयुतान् । अष्टादशपद्ममितैः कपिभिः कपिराड् ययौ ॥११०॥
आरुरोह विमानाग्र्यं कपिभी राघवाज्ञया । ततः सीतां विना रामः स्वयं स्थित्वा तु पुष्पके ॥१११॥
पश्यन्नानाविधान् देशान्ययौ लङ्कां विहायसा । यात्राकाले यथा यानरचताऽऽसीत्तथा पुनः ॥११२॥
ततो रामं समायातं श्रुत्वा स मूलकासुरः । ययौ लङ्काबहिर्योद्धुं राघवेण बलीयसा ॥११३॥
दशकोटिमितां सेनां बिभ्रन् स वरदर्पितः । ततस्ते राक्षसाः पद्भिर्निहन्युः प्लवगान् मुहुः ॥११४॥
वानरा राक्षसांश्चापि निहन्युस्तान्दृषन्नगैः । एवं बभूव तद्युद्धं तुमुलं दिनसप्तकम् ॥११५॥

सुसकर राम बड़े विस्मित हुए ॥ ९७ ॥ तुरन्त लक्ष्मणसे उन्होंने कहा कि संसारमें जितने राजे हैं, उनके पास दूत भेजकर शीघ्र बुलवा लो ॥ ९८ ॥ लक्ष्मणने रामके आज्ञानुसार दूत भेजे। दूतोंने शीघ्र लौटकर रामसे कहा—हम लोग सब राजाओंके पास हो आये । उनमें कुछ राजे तो आपकी आज्ञाका पालन कर रहे हैं और कुछ नहीं ॥ ९९ ॥ १०० ॥ इसका कारण यह है कि चम्पिका और सुमतिके स्वयंवरके समय उनके हृदयमें जो क्षोभ उपजा था, वह अब तक ज्यों का त्यों बना है। फिर यूपकेतुकी मारसे उनका हृदय अलग विदीर्ण हो चुका है ॥१०१॥१०२॥ जब वे मदनसुन्दरीकी उस अनोखी शोभाको याद करते हैं तो उनका कलेजा टुकड़े-टुकड़े हो जाता है। इन्हीं कारणोंसे वे आपकी आज्ञाका पालन नहीं करना चाहते ॥ १०३ ॥ जिन सुग्रीव आदि नृपतियोंने आपकी आज्ञाका पालन किया है, वे अपने दलबल समेत अयोध्या आ रहे हैं ॥ १०४ ॥ दूतकी बात सुनकर रामचन्द्रने कहा—वे नीच राजे अबतक हमारे साथ ईर्ष्याभाव रखते हैं? अस्तु, पहले कुम्भकर्णके बेटे मूलकासुरको मारकर उन लोगोंपर भी चढ़ाई करूँगा। इस प्रकार निश्चय करके रामने शुभ दिन और मुहूर्तमें अपनी विशाल सेना तथा लक्ष्मण-भरत आदि भ्राताओंके साथ मूलकासुरको मारनेके लिए अयोध्यासे प्रस्थान कर दिया ॥१०५॥१०६॥ पुरीके बाहर आकर उन्होंने कुछ सेनाके साथ यूपकेतुको अयोध्याकी रक्षाके लिए छोड़ दिया और बाकी कुश आदि सात लड़कोंको अपने साथ ले गये। रामने यात्राके समय सारी सेनाको पुष्पक विमानपर बिठा लिया ॥ १०७ ॥ १०८ ॥ रास्तेमें रामके अनुगामी राजे भी अपनी-अपनी सेनाके साथ आकर रामसे मिल गये ॥ १०९ ॥ उन लोगोंको भी रामने विमानमें बिठा लिया। इस यात्रामें सुग्रीव अठारह पद्म बन्दरोंके साथ आये थे ॥ ११० ॥ उनको भी रामने पुष्पकपर बिठाल लिया। इसके अनन्तर सीताको छोड़कर राम विमानपर बैठे। आकाशमार्गसे अनेक देशोंको देखते हुए वे लङ्काकी ओर बढ़े और अल्प समयमें ही निर्दिष्ट स्थानपर पहुँच गये। उधर जब मूलकासुरने यह समाचार सुना तो रामचन्द्रके साथ युद्ध करनेके लिए दस करोड़ सेना लेकर लङ्काके बाहरवाले मैदानमें आ डटा ॥ १११–११३ ॥ उस समय ब्रह्माके वरदानसे वह बड़े घमण्डमें था। फिर क्या कहना था, राक्षसगण वानरोंको लातोंसे मारने लगे। वानरगण भी पहाड़के बड़े-बड़े टुकड़ों तथा वृक्षोंसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तत्र ये ये मृता युद्धे वानरास्तान्स मारुतिः । द्रोणाचलं समानीय जीवयामास पूर्ववत् ॥११६॥
ततः सा राक्षसी सेना चतुर्थांशावशेषिता । तान्नष्टान् राक्षसेन्द्रः स दृष्ट्वा क्रोधयुतस्तदा ॥११७॥
मंत्रिणश्चोदयामास तथा सेनापतीन् बलैः । तानागतान् रणभुवं रामवीराः सहस्रशः ॥११८॥
शतघ्नीभिर्हस्तयंत्रैर्भिन्दिपालभुशुण्डिभिः । परिघैः पट्टिशैः शूलैः कुंतैः खड्गैर्विमर्दयन् ॥११९॥
तेऽपि तालैस्तमालैश्च हिंतालैश्च दृषन्नगैः । शालैः शिलाभिः श्रीरामवीरान् संमर्दयन् रणे ॥१२०॥
पुनर्युद्धं महच्चासीत्तुमुलं रोमहर्षणम् । ततस्तान् मंत्रिणः सर्वांस्तथा सेनापतीनपि ॥१२१॥
रामवीराः क्षणेनैव चक्रुः संयमनीगतान् । तान् सर्वान्निहतान् श्रुत्वा क्रोधेन मूलकासुरः ॥१२२॥
स्वयं दिव्यरथे स्थित्वा किञ्चित्सैन्ययुतो ययौ । तमागतं नृपा दृष्ट्वा ययुर्योद्धुं सहस्रशः ॥१२३॥
ववर्षुः शरजालैश्च चक्रुर्दुन्दुभिनिःस्वनान् । तान्सर्वान् राक्षसेंद्रः स चकार भुवि मूर्छितान् ॥१२४॥
तान् मूर्छितान्नृपान्दृष्ट्वा योद्धुं तेन पुनर्ययुः । सुमंत्राद्या मंत्रिणश्च राघवस्याज्ञया बलैः ॥१२५॥
तान्सर्वान्मूर्छितान् बाणैश्चकार मूलकासुरः । मूर्छितान्मंत्रिणो दृष्ट्वा कुशाद्या बालका ययुः ॥१२६॥
ततो बभूव तुमुलं युद्धं तल्लोमहर्षणम् । ततः कुशः स्वबाणौघैर्लंकायां मूलकासुरम् ॥१२७॥
प्राक्षिपद्धट्टमध्ये स पपात पुनरुत्थितः । ततोऽभिचारिकं होमं रथशस्त्रार्थमुत्तमम् ॥१२८॥
कर्तुं विवेश स गुहां बद्ध्वा द्वाराण्यनेकशः । ततो विभीषणः प्राह होमधूमं निरीक्ष्य च ॥१२९॥
राघवं कल्पवृक्षाधः संस्थितं बंधुवेष्टितम् । होमं करोत्ययं दुष्टः प्रेषयस्व कपीन्पुनः ॥१३०॥
होमे समाप्तेऽजेयः स भविष्यति महासुरः । एतस्मिन्नंतरे ब्रह्मा ययौ रामं सुरैर्युतः ॥१३१॥
नत्वा तं राघवश्चापि पूजयामास सादरम् । तदाऽऽह राघवं ब्रह्मा वरस्त्वस्मै मयाऽर्पितः ॥१३२॥

प्रहार करना आरम्भ कर दिया । इस तरह सात दिन तक उन दोनों सेनाओंमें घमासान युद्ध होता रहा ॥ ११४ ॥ ११५ ॥ उस संग्राममें जो जो वानर मरते थे तो हनुमान्‌जी द्रोणाचल पर्वतवाली औषधि लाकर उन्हें जीवित कर दिया करते थे ॥ ११६ ॥ आठवें रोज राक्षसोंकी एक चौथाई सेना रह गयी, शेष सब मार डाले गये । मूलकासुरने जब देखा कि अब थोड़ेसे राक्षस बचे रह गये हैं तो क्रुद्ध होकर अपने मन्त्रियों, सेनापतियों और सेनाको भेजकर उसने बड़ी वीरताके साथ लड़नेको ललकारा । उधर जब रामदलके वीरोंने देखा कि राक्षसोंकी और भी सेना आ गयी है और वे अपनी तोपों, तलवारों, बन्दूकों आदिसे मेरी सेनाको मारकर ढेर किये दे रहे हैं तब वे भी ताल, तमाल, हिंताल आदि वृक्षों तथा पर्वतकी बड़ी-बड़ी चट्टानोंको लेकर फिर तुमुल युद्ध करने लगे और थोड़ी ही देरमें शत्रुके मंत्री, सेनापति तथा सेनाको यमपुर पहुँचा दिया ॥ ११७–१२१ ॥ जब मूलकासुरने सुना कि वह सेना भी साफ हो गयी तो मारे क्रोधके तमतमा उठा और स्वयं एक दिव्य रथपर सवार हो तथा थोड़ी-सी सेना साथ लेकर लड़नेको चल पड़ा । रामके पार्श्ववर्ती राजाओंने जब उसे लड़नेको तैयार देखा तो वे हजारों राजे भी परिकर बाँध-बाँधकर मैदानमें आ गये ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ उन लोगोंने दुन्दुभीकी घनघोर गर्जनाके साथ उस राक्षसपर बाणवर्षा प्रारम्भ कर दी, लेकिन मूलकासुरने क्षणभरमें उन लोगोंको मूर्च्छित कर दिया ॥ १२४ ॥ जब राजाओंको मूर्च्छित देखा तो रामचन्द्रकी आज्ञासे सुमन्त्र आदि मन्त्री अपनी-अपनी सेनाके साथ लड़नेके लिए जा डटे । मन्त्री भी बेहोश हो गये तो कुश आदि बालक जाकर लड़ने लगे ॥ १२५ ॥ १२६ ॥ कुश आदिके पहुँचनेपर वहाँ भीषण युद्ध हुआ । कुछ देर बाद कुशने अपने बाणोंसे मूलकासुरको उठाकर फेंक दिया और वह लङ्काकी बाजारमें जा गिरा । किन्तु तुरन्त उठ खड़ा हुआ और उत्तम शस्त्र तथा रथ प्राप्त करनेकी इच्छासे एक कन्दरामें घुस गया, द्वार बन्द कर लिया और वहाँ आभिचारिकी क्रियाके अनुसार हवन आदि करने लगा ॥ १२७ ॥ १२८ ॥ जब विभीषणने हवनके धुएँको देखा तो भाइयोंकी मण्डलीमें कल्पवृक्षके नीचे बैठे हुए रामचन्द्रके पास जाकर इस प्रकार कहने लगे—हे राम ! वह दुष्ट कन्दरामें बैठा हवन कर रहा है । अतएव फिर वानरोंको भेजिए । यदि कहीं हवन सम्पन्न हो गया तो फिर वह किसीसे भी नहीं जीता जा सकेगा । इसी बीचमें बहुतसे देवताओंके साथ

CC0. In Public Domain. Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

यदा वीरान्न मे मृत्युर्भवत्विति पुरा मम । अनेन याचितं राम तपोन्तेऽङ्गीकृतं मया ॥१३३॥
अतोऽस्य पुरुषान्मृत्युर्न भविष्यति राघव । स्त्रीहस्तान्मरणं चास्य विद्धि त्वं रघुनन्दन ॥१३४॥
अन्यत् किंचित् प्रवक्ष्यामि कारणं मरणेऽस्य हि । एकदा शोकयुक्तेन पुराऽनेन द्विजाग्रतः ॥१३५॥
सीताचंडीनिमित्तेन जातो मे हि कुलक्षयः । इति यन्निष्ठुरं वाक्यमुक्तं तन्मुनिभिः श्रुतम् ॥१३६॥
तेष्वेकस्तं मुनिः क्रोधाद्ददौ शापं हि राक्षसम् । या चंडीति त्वयोक्ता साऽद्यैव त्वां मारयिष्यति॥१३७॥
तन्मुनेर्वचनं श्रुत्वा तं जघान स राक्षसः । तद्भीत्या मुनयः सर्वे तूष्णींभूताः स्थिता पुरा ॥१३८॥
तस्मात्तन्मुनिवाक्येन ममापि वरदानतः । सीताहस्तान्मृतिश्चास्य भविष्यति न संशयः ॥१३९॥
अतः सीतां समानीय तयैनं जहि राक्षसम् । इत्युक्त्वा राममामंत्र्यं ययौ वेधा निजं पदम् ॥१४०॥
रामोऽपि ब्रह्मवचनं श्रुत्वा प्राह विभीषणम् । मूलकासुरहोमाय न कार्यं विघ्नमद्य हि ॥१४१॥
सीतायामत्र यातायां विघ्नं कार्यं प्लवंगमैः । इत्युक्त्वा गरुडं प्राह रामः पुष्पकसंस्थितः ॥१४२॥
अयोध्यां गच्छ शीघ्रं त्वं वायुपुत्रेण मद्गिरा । तामत्रानय वैदेहीं स्वपृष्ठे तां निवेश्य च ॥१४३॥
समंततस्तां दुष्टेभ्यः पथि रक्षतु मारुतिः ।
तथेति रामवचनमुररीकृत्य सादरम् । तावुभौ राघवं नत्वाऽयोध्यां शीघ्रं प्रजग्मतुः ॥१४४॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे पूर्वार्द्धे शतनारीवरप्रदानं मूलकासुराख्यानं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पञ्चमः सर्गः

(राम-सीताविरह)

श्रीरामदास उवाच

अथ भूमिसुताऽयोध्यापुर्यां सा हृदि राघवम् । स्मरंत्यासीत्तद्विरहाद्व्याकुला नाप शं क्षणम् ॥ १ ॥

ब्रह्माजी वहाँ आ गये ॥ १२९-१३१ ॥ रामने उनको प्रणाम करके विधिवत् पूजन किया । थोड़ी देर बाद ब्रह्माने रामसे कहा-हे रघुनन्दन ! बहुत दिनोंकी बात है, मूलकासूर घोर तपस्या कर रहा था । अन्तमें माँगनेपर मैंने उसे यह वरदान दिया था कि तुम किसी वीरके मारनेसे नहीं मरोगे ॥१३२॥१३३॥ अतएव पुरुषके हाथसे इसकी मृत्यु न होगी । यह किसी स्त्रीके हाथों मारा जा सकेगा ॥ १३४ ॥ एक कारण यह भी है कि एक बार शोकाकुल होकर मूलकासुरने एक ब्राह्मणमंडलीके समक्ष कहा था कि चंडी सीताके कारण ही मेरे कुलका नाश हुआ है । इस निष्ठुर बातको सुनकर एक ऋषिने उसको शाप दे दिया कि जिस सती-साध्वी सीताके लिए तू ऐसे अपमानजनक शब्दोंका प्रयोग कर रहा है, वही सीता तुझे भी शीघ्र ही मारेगी ॥ १३५-१३७ ॥ मुनिका शाप सुनकर मूलकासुरने उसे तुरन्त मार डाला । फिर उसके डरसे शेष ऋषि चुपचाप बैठे रह गये । मेरे कहनेका मतलब यह है कि उस ऋषिके शाप तथा मेरे वरदानसे सीताके हाथों ही इस अधमकी मृत्यु होगी । इसमें कोई संदेह नहीं है ॥ १३८-१४० ॥ रामने ब्रह्माकी बातें सुनकर विभीषणसे कहा कि आज मूलकासुरके यज्ञमें विघ्न डालनेकी कोई आवश्यकता नहीं है । जब सीता यहाँ आ जायँ, तब वानरोंको उसके यज्ञमें विघ्न डालनेकी आज्ञा दी जायगी । फिर राम गरुड़से कहने लगे—तुम जाओ और सीताको अपनी पीठपर बिठाकर यहाँ ले आओ ॥ १४१-१४३ ॥ चलते समय रास्तेमें हनुमानजी दुष्टोंसे उनकी रक्षा करते रहेंगे । रामचन्द्रकी आज्ञाको सादर स्वीकार करके वे दोनों वहाँसे अयोध्याके लिए चल पड़े ॥ १४४ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपाण्डेयविरचित 'ज्योत्स्ना' भाषाटीकासहिते राज्यकांडे पूर्वार्द्धे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

श्रीरामदासने कहा—उधर रामचन्द्रजीके चले जानेपर सीता अयोध्यामें श्रीरामका स्मरण करती हुई उनके वियोगसे व्याकुल रहा करती थीं । क्षण भरके लिए भी उनके हृदयको चैन नहीं मिलती थी ॥ १ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रासादे सा कदा तस्थौ कदा प्रासादमूर्धनि । कदा द्राक्षामंडपाधः कदा संन्यस्तभूषणा ॥ २ ॥
वारस्त्रीणां कदा नृत्यं ददर्श जनकात्मजा । कदा जयार्थं रामस्य कार्तवीर्यमपूजयत् ॥ ३ ॥
कदाऽकरोच्च तुलसीशिवाश्वत्थान् प्रदक्षिणाः । मन्युसूक्तानि विप्रैश्च पाठयामास जानकी ॥ ४ ॥
गोमयेनांजनेयं सा कुड्यां कृत्वाऽर्च्य जानकी । अकरोत्प्रत्यहं पुच्छवृद्धिं स्वांगुलिमात्रतः ॥ ५ ॥
शतरुद्रीयसूक्तस्य जयार्थं राघवस्य सा । दुर्गायाः पूजनं नित्यं चकार नियतव्रता ॥ ६ ॥
गणेशं मारुतिं शम्भुं स्थण्डिले स्थाप्य प्रेमतः । चकार बद्ध्वा द्वाराणि गवाक्षैः सेचयज्जलम् ॥ ७ ॥
कार्तवीर्यस्य यंत्राणि स्थापयामास जानकी । मंचके राघवेन्द्रस्य पूजयामास सर्वदा ॥ ८ ॥
कदा सखीमध्यगा सा त्यक्तालंकारमण्डना । जलयंत्रांतिके निद्रां नाप तद्विरहाग्निना ॥ ९ ॥
कदा निरीक्ष्य प्रासादे काकमाह विदेहजा । यदि शीघ्रं राघवस्य दर्शनं मे भविष्यति ॥१०॥
तर्हि त्वं गच्छ वेगेन नो चेदत्र स्थिरो भव । तत्सीतावचनं श्रुत्वा काकस्तूड्डीय वेगतः ॥११॥
तेन किंचित्समाश्वस्ता पवनं प्राह जानकी । स्पृष्ट्वा त्वं राघवांगानि मां स्पर्शं कर्तुमर्हसि ॥१२॥
कदा चंद्रं निशि प्राह त्वं स्पृष्ट्वा शीतलैः करैः । श्रीरामं मां स्पृशस्वाद्य स्वकरैः सुखकारकैः ॥१३॥
शुक्लपक्षे द्वितीयायां सीताऽलंकारमण्डिता । स्नात्वा प्रासादशिखरात्सखीभिः परिवेष्टिता ॥१४॥
अपश्यच्छशिनं हर्षादेनं रामोऽद्य पश्यति । अन्तरेणाद्य रामस्य संयोगो मां भवेदिति ॥१५॥
रामे गते कदा सीता हरिद्राकजलादिकैः । नात्मानं भूषयामास ह्यत्रिपत्न्यर्पितं विना ॥१६॥
चंदनं पुष्पमालाश्च पुष्पशय्यां विदेहजा । नांगीचकार श्रीरामविरहानलपीडिता ॥१७॥
शकुनान् सा ददर्शाथ श्रीरामदर्शनेच्छया । तुष्टाऽभूच्छकुनैः श्रुत्वा शीघ्रं रामसमागमः ॥१८॥

वे कभी अटारीपर, कभी छतपर और कभी अंगूरोंकी झाड़ीमें अपने वस्त्राभूषण उतारकर बैठी रहती थीं ॥ २ ॥ कभी वेश्याओंके नृत्य देखकर जी बहलाना चाहतीं और कभी रामचन्द्रको विजयकामनासे कार्तवीर्य भगवान्‌का पूजन करती थी ॥ ३ ॥ तुलसी-पीपल आदिके वृक्षोंकी प्रदक्षिणा करती थीं। ब्राह्मणों द्वारा मन्यु-सूक्तका पाठ करवाती थीं। कभी पृथ्वीपर गोबरसे हनुमान्‌जीकी प्रतिमा बनकर पूजन करतीं और हर रोज एक अंगुल उनकी पूँछ बढ़ाया करती थीं ॥ ४ ॥ ५ ॥ रामचन्द्रकी जयके लिए ब्राह्मणों द्वारा सौ-सौ रुद्रीका पाठ करवातीं और दुर्गाजीकी पूजा करतीं थीं ॥ ६ ॥ गणेश, मारुति तथा शिव, इनको जलमें बिठालकर दरवाजे बन्द कर लेतीं। फिर खिड़कीसे उनपर जलधारा डाला करती थीं ॥ ७ ॥ रामचन्द्रजीके मंचपर कार्तवीर्यके यंत्र स्थापित करके सदा-सर्वदा उनका पूजन करती थीं ॥ ८ ॥ कभी सहेलियोंमें बैठी-बैठी अपने अलंकारोंको फेंक देतीं और सखियाँ उन्हें फौवारेके पास ले जाकर सुलानेकी चेष्टा करतीं, फिर भी निद्रा नहीं आती थी ॥ ९ ॥ कभी अँटारीपर बैठे हुए कौएको देखकर सीता कहने लगतीं—"यदि मुझे शीघ्र रामचन्द्रके दर्शन होनेवाले हों तो ऐ कौए ! तू यहाँसे उड़ जा, नहीं तो बैठ" सीताकी बात सुनकर कौआ उड़ जाता। उससे सीताके हृदयको बहुत कुछ ढाढ़स बँध जाया करता था ॥ १० ॥ ११ ॥ इसके बाद सीता पवनसे कहतीं—"हे पवन ! तुम पहले रामचन्द्रजीका स्पर्श करके मुझे स्पर्श करो तो बड़ा उपकार हो" ॥ १२ ॥ रात्रिके समय कभी-कभी चन्द्रमासे विनय करतीं—हे चन्द्रदेव ! तुम अपनी ठंढी किरणोंसे रामचन्द्रके शरीरका स्पर्श करके उन सुखदायिनी किरणोंको मेरेपर डालो ॥ १३ ॥ शुक्लपक्षकी द्वितीयाको सीता विविध प्रकारके वस्त्र और आभूषणोंको पहनकर सखियोंके साथ प्रासादके ऊपर जातीं और इस भावनासे चन्द्रदेवका दर्शन करतीं कि राम आज जहाँ कहीं भी होंगे, चन्द्रमाका दर्शन अवश्य करेंगे। ईश्वर चाहेंगे तो शीघ्र ही हमारा और उनका मिलन होगा ॥ १४ ॥ १५ ॥ जबसे रामचन्द्रजी गये थे, तबसे उन्होंने अपने शरीरमें न हल्दी लगायी, न आँखोंमें काजल दिया और न किसी प्रकारके वस्त्राभूषण पहने ॥ १६ ॥ श्रीरामचन्द्रके विरहानलसे पीडित सीताने चन्दन, पुष्प, फूलकी मालाएँ, फूलकी शय्या आदि कुछ भी नहीं अङ्गीकार किया ॥ १७ ॥ रामके दर्शनोंकी इच्छासे वे सदा शकुन उठाया करती थीं। यदि

CC0. In Public Domain. Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भवेदिति सखीयुक्ता ददौ सर्वान्सुशर्करा: । कदा परगृहं सीता न ययौ राघवं विना ॥१९॥
नैका तस्थौ क्वापि सीता स्वाम्यंगोद्वर्तनं जहौ । न मिष्ठान्नं न ताम्बूलं न गीतं केशबंधनम् ॥२०॥
अंगीचकार श्रीरामविरहानलदीपिता । संभाषणं स नान्येन पुरुषेणाकरोत्कदा ॥२१॥
नाकरोत्सस्मितं वक्त्रं नोर्ध्वास्याऽन्यं ददर्श सा । अन्याक्षिगोचरा नाभून्न संतुष्टाऽभवत्कदा ॥२२॥
पर्यंके शयनं सीता नाकरोद्राघवं विना । मुकुरे न ददर्शेत्थं मुखं विरहपांडुरम् ॥२३॥
न दधौ वसनं चित्रं न चित्रां कंचुकीं दधौ । न तस्थौ द्वारदेशे सा देहल्यंगणभूमिषु ॥२४॥
न ययौ सरयूं स्नातुं ययौ नोपवनं वनम् । आरामं न ययौ सीता न तथा पुष्पवाटिकाम् ॥२५॥
न चकार स्वतो दूरं मांगल्यानि विदेहजा । वस्तूनि द्विजपत्नीस्तैस्तोषयामास जानकी ॥२६॥
नियमानकरोन्नाना देवीनां च पृथक् पृथक् । नियमैश्च व्रतैस्तस्थौ स्वयं नित्यं विदेहजा ॥२७॥
वटकानां महामालामर्पयामि हनूमते । मोदकान् गणराजाय दास्यामि पूरणान्वितान् ॥२८॥
सिद्धान्नेनापि नैवेद्य ते दास्यामि गणाधिप । दुर्गे त्वां बलिदानं च करिष्यामि प्रसीद मे ॥२९॥
चण्डिके त्वां प्रदास्यामि रक्तं जिह्वोद्भवं त्वहम् । सुष्ठ्वन्नं माषसंयुक्तं बलिदीपसमन्वितम् ॥३०॥
शीघ्रं रामो जयं प्राप्य शिशुभिर्यातु वै पुरीम् । मंदवारे करिष्यामि पंच चोपोषणान्यहम् ॥३१॥
नोपभोक्ष्यामि मधुरं नोपभोक्ष्याम्यहं घृतम् । मासमेकं करिष्यामि व्रतान्येवं सविस्तरात् ॥३२॥
कृष्णपक्षे तृतीयायां चतुर्थ्यां वा महेश्वरि । किंचित्किंचिन्मासि मासि तिलवृद्धिं विधाय च ॥३३॥
गुडेनाहं तिलान्भोक्ष्ये यावच्छ्रीरामदर्शनम् । भविष्यति कुशाद्यैश्च लक्ष्मणाद्यैश्च बंधुभिः ॥३४॥
सत्वरं नवरात्रं च सखीभिश्च करोम्यहम् । एकस्मिन्नेव दिवसे नवभिः प्रभुदर्शने ॥३५॥

शकुन अच्छा उठ जाता तो बड़ा हर्ष होता था। वे समझतीं कि शीघ्र ही रामचन्द्रजीका दर्शन होगा। इसी खुशीमें सखियोंको वे मिठाईयाँ बाँटती थीं। जबसे राम परदेश गये, तबसे वे किसीके घर नहीं गयीं ॥ १८ ॥ १९ ॥ तभीसे सीता कभी अकेली नहीं बैठतीं, शरीरमें उबटन नहीं लगातीं, मिठाई नहीं खातीं, ताम्बूल नहीं चबातीं और अपने केशोंको भी नहीं सँवारती थीं। जबसे राम गये, तबसे उन्होंने किसी पुरुषके साथ संभाषण नहीं किया ॥ २० ॥ २१ ॥ कभी किसीसे मुस्कुराकर नहीं बोलीं, ऊपर मुँह उठाकर किसीकी ओर नहीं निहारा, कभी किसी पुरुषने उन्हें नहीं देख पाया और कभी भी उनकी आत्माको चैन नहीं मिली ॥ २२ ॥ रामके विरहसे पीडित सीताने कभी शय्यापर शयन नहीं किया और विरहसे पीले पड़े हुए अपने मुखमण्डलको शीशेमें नहीं देखा। न उन्होंने कभी रङ्ग-बिरङ्गे कपड़े पहने और न रङ्ग-बिरङ्गी चोली ही धारण की। तबसे वे कभी दरवाजेके चौखटपर नहीं खड़ी हुईं ॥ २३ ॥ २४ ॥ सरयू-स्नान करनेको नहीं गयीं और किसी वन या उपवनमें सैर करने नहीं गयीं। किसी बगीचे तथा पुष्पवाटिकामें भी नहीं गयीं ॥ २५ ॥ तबसे उन्होंने कोई मांगलिक कार्य नहीं किया। अनेक प्रकारकी वस्तुएँ दे-देकर उन्होंने ब्राह्मणियोंको प्रसन्न किया और कितने ही तरहके व्रत करके अनेक देवियोंकी पूजाएँ कीं। इस तरह बहुतसे व्रतोंको करके वे अपने उन नीरस दिनोंको बिताती रहीं ॥ २६ ॥ २७ ॥ सदा इस तरह मनौती मानती थीं—हे देवियों और देवताओं! यदि रामचन्द्रजी विजयी होकर अपने भाइयों और पुत्रों समेत शीघ्र अयोध्या वापस आयें तो हे हनुमान्जी! मैं बड़ी भारी माला बनवाकर आपको पहनाऊँगी। हे गणेशजी! आपको पूरी और लड्डूका भोग लगाऊँगी। अनेक प्रकारके पकवान बनवाकर आपको समर्पण करूँगी। हे दुर्गे! मेरे ऊपर प्रसन्न होओ। यदि राम लौट आएँ तो आपके लिए बलिदान करूँगी। हे चण्डिके! मैं आपको विविध प्रकारके स्वादिष्ट अन्नों तथा बलिदीपके साथ अपनी जीभका रक्त चढ़ाऊँगी! पाँच मङ्गलवारका व्रत करूँगी। एक महीने तक मिठाई और घी न खाऊँगी ॥ २८-३२ ॥ हे महेश्वरी! कृष्णपक्षकी तृतीया तथा चतुर्थीको थोड़े-थोड़े गुड़के साथ तिल खाऊँगी। यह व्रत तब तक चलता रहेगा, जब तक मुझे लक्ष्मणादि भ्राताओंके साथ श्रीरामचन्द्रजीके दर्शन नहीं मिलेंगे ॥ ३३ ॥ हे चण्डिके। यदि मुझे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

रविवारे करिष्यामि रवेऽहं पूजनं तव । इत्थं दिने दिने सीता नियमानकरोत्तदा ॥३६॥
ब्राह्मणैरर्घ्यदानं च कारयामास जानकी । न सा सुष्वाप रात्रौ तु दिवा वा वरवर्णिनी ॥३७॥
एवं दिने दिने सीता श्रीरामविरहातुरा । न शमाप क्वापि देशे श्रीरामार्पितमानसा ॥३८॥
एवं ता उर्मिलाद्याश्च चंपिकाद्यापि वै स्त्रियः । स्वस्वस्वामिवियोगाग्निज्वलिता व्याकुलाः क्षणम् ३९॥
न सुखं क्वापि वै प्रापुः स्वकांतार्पितमानसाः । सर्वास्ता लुलुठुर्नार्यो मणिभूमौ मृगीदृशः ॥४०॥
काचिन्नर्तयति क्रीडामयूरं न मुदा तदा । शुकं न पाठयत्यन्या पञ्जरस्थं कुतूहलात् ॥४१॥
लालयेन्नकुलं नान्या नालापयति सारिकाम् । अपराऽतीव संतप्ता नैव खेलति सारसैः ॥४२॥
भेजिरे न विलासं ता रेमिरे नैव मंदिरे । सखीभिरूचिरे नालं वीणावाद्यं न शुश्रुवुः ॥४३॥
कल्पद्रुमप्रसूतं यद्द्रववत्तत्सुधोपमम् । मंदारकुसुमामोदं न षपुर्मधुरं मधु ॥४४॥
योगिन्य इव ता मुग्धा नासाग्रन्यस्तलोचनाः । अलक्ष्यध्यानसंधानाः स्वनाथार्पितमानसाः ॥४५॥
चंद्रकांतमणिच्छन्ने स्रवद्वारिकणद्रवैः । क्षणं वातायने स्थित्वा जलयंत्रेक्षणं क्वचित् ॥४६॥
रचयंति क्षणं शय्या दीर्घिका भोजिनीदलैः । वीज्यमानाः सखीभिस्ताः शीतलैः कदलीदलैः ॥४७॥
इत्थं युगसमां रात्रिं दिनं ता मेनिरे सदा । कथञ्चिद्धारणां कृत्वा विह्वलाः सज्वराः स्थिताः॥४८॥
एतस्मिन्नंतरे सीता नियमैश्च व्रतादिभिः । समानीतावाञ्जनेयगरुडावीयतुः पुरीम् ॥४९॥
प्रास्फुरच्च भुजो वामः सीताया नयनं तथा । सुचिह्नं मन्यमाना सा किंचित्तुष्टाऽभवत्तदा ॥५०॥
अथ तौ कंपनोद्भूतगरुडौ सदसि स्थितम् । अयोध्यायां यूपकेतुं वृत्तं कथयतो जवात् ॥५१॥
तच्छ्रुत्वा यूपकेतुः स वृत्तं सीतां न्यवेदयत् । सा तु तुष्टमनाः सीता तस्मिन्नेव दिने शुभे ॥५२॥

शीघ्र मेरे प्रभुका दर्शन मिल जाय तो मैं अपनी सहेलियोंके साथ नवरात्रका व्रत करूँगी ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ हे सूर्य भगवान् ! प्रत्येक रविवारको मैं आपका विधिवत् पूजन करूँगी । इस प्रकार रामके वियोगवाले दिनोंमें सीता प्रतिदिन अनेक प्रकारकी मनौती माना करती थीं ॥ ३६ ॥ वे ब्राह्मणोंसे अर्घ्यदान कराती रहती थीं । रात-दिन कभी नहीं सोती थीं । इस तरह रामके वियोगसे दुःखिनी सीता कहीं भी सुख नहीं पाती थीं ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ इसी तरह उर्मिला और चम्पिकादिक स्त्रियाँ भी अपने-अपने स्वामियोंके वियोगरूपी अग्निसे दग्ध होकर व्याकुल रहती थीं । वे समस्त स्त्रियाँ अपने महलोंकी मणिमयी भूमियोंपर लोट-लोटकर दिन काटती थीं । उन्हें संसारके किसी भी प्रदेशमें आनन्द नहीं मिलता था ॥ ३९ ॥ ४० ॥ उनमेंसे न कोई क्रीड़ामयूर नचाती, न पिंजरेमें बैठे हुए तोतेको पढ़ाती, न पाले हुए नेवलेको प्यार करती, न मैना पढ़ाती और न कोई स्त्री सारसोंके साथ खेलवाड़ ही करती थी ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ उन्होंने किसी सुखका उपभोग नहीं किया । महलोंमें उन्होंने आनन्द नहीं लिया । वे न अपनी सहेलियोंके साथ हँसी-दिल्लगी करती थीं, न वीणा बजातीं और न सुनती थीं ॥ ४३ ॥ कल्पवृक्षके पुष्पसे उत्पन्न कुसुमकी अमृतसरीखी सुगन्धिका भी उपयोग नहीं करती थीं ॥ ४४ ॥ वे नारियाँ योगियोंसे समान अपनी दृष्टि नासाग्रभागमें रोककर रात-दिन अपने-अपने पतियोंका ध्यान किया करती थीं । उन्होंने अपना-अपना मन अपने-अपने पतियोंको अर्पण कर दिया था ॥ ४५ ॥ वे झरोखेमें लगे हुए चन्द्रकान्त मणिके समीप, जिसमें सदा रातके समय जलकी धारा बहा करती थी, वहाँ बैठकर कुछ देर उसीको निहारा करती थीं ॥ ४६ ॥ कभी कमलके पत्तोंकी शय्यापर सोतीं और सखियोंसे केलेके पत्तोंका पंखा झलवाती थीं ॥ ४७ ॥ इस प्रकार एक-एक रात्रिको युगके समान मानकर बड़े सन्तापसे विह्वल होकर समय बिताती थीं । जब सीता इतनी कठिन यंत्रणा भोग रही थीं, उसी समय गरुड़ और हनुमान्जी वहाँ आ पहुँचे । सहसा सीताकी बायीं आँख तथा भुजा फड़कने लगीं । इसे शुभ शकुन मानकर वे अपने मनमें कुछ प्रसन्न हुईं ॥ ४८–५० ॥ थोड़ी देर बाद गरुड़ और हनुमान्जी राजसभामें बैठे हुए यूपकेतुके पास पहुँचे और उन्होंने रामका सन्देश सुनाया ॥ ५१ ॥ उसे सुनकर यूपकेतुने सीताको बतलाया और रामके आज्ञानुसार सीता उसी दिन कुछ ब्राह्मणों, पुरोहितों

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

रामवाक्यादारुरोह गरुडं वेगवत्तरम् । अग्निहोत्रं पुरस्कृत्य ऋत्विग्भिश्च पुरोधसा ॥५३॥
पतिं विनाऽग्निना नारी सीमामुल्लंघ्य न व्रजेत् । स दोषोऽत्र न विज्ञेयः सीतोद्योगो विहायसा ॥५४॥
भये प्राप्ते प्रवासोऽपि स्त्रीणामुक्तोऽग्निभिः सह । पतिना रहितानां च न दोषः कथ्यतेऽत्र हि ॥५५॥
भूमिगैर्ब्राह्मणाद्यैश्च न देवचरितं चरेत् । ततः स रक्षयामास मारुतिस्तां समंततः ॥५६॥
पश्यंती विविधान् देशान् सीता लंकां ययौ मुदा । ददर्श कल्पवृक्षाधः पुष्पकस्थं रघूत्तमम् ॥५७॥
ननाम शिरसा भक्त्या साऽवरुह्य खगाधिपात् । तां दृष्ट्वा राघवः प्राह सीते तेऽद्य मुखं कथम् ॥५८॥
विवर्णमंगयष्टिस्ते कृशाऽद्य परिलक्ष्यते । तद्रामवचनं श्रुत्वा जानकी सस्मितानना ॥५९॥
विलज्जंती विनोदेन राघवं प्राह सादरम् । स्वामिंस्त्वद्विरहादेतत्सर्वं त्वं विद्धि राघव ॥६०॥
न निद्रामि न जागर्मि नाश्नामि न पिबाम्यहम् । ध्यायाम्यहं केवलं त्वां योगिनीव वियोगिनी॥६१॥
निद्रादरिद्रनयना स्वप्नेऽपि न तवाननम् । आनंदि सर्वथा यन्मे मंदभाग्या विलोकये ॥६२॥
त्वदाननप्रतिनिधिर्विधुर्विधुरया मया । उदितोऽपि न चालोकि तापं वै त्यक्तुकामया ॥६३॥
त्वदालापसमालापं कलयन् किल काकलीम् । कोकिलोऽपि मयाऽऽकर्णि नालकाकीर्णकर्णया ॥६४॥
त्वदंगसंगमधुरो धवधूपितया मया । नानिलोऽपि मयालिंगि क्वचिद्दिश्रांतया भृशम्॥६५॥
नाना यमाश्च नियमा जयार्थं तव राघव । कुर्वत्या मम नैवाभूत्सुखं त्वद्विरहाग्निना ॥६६॥
ततो विहस्य श्रीरामस्तामलिंग्य पुनः पुनः । कराभ्यां तत्स्तनौ स्पृष्ट्वा पपौ बिंबाधरामृतम् ॥६७॥
अथापरदिने रामः स्नात्वा स्नातां विदेहजाम् । अस्त्रविद्यां शस्त्रविद्यामस्त्राह्वानविसर्जने ॥६८॥

तथा अग्निको साथ लेकर गरुड़पर जा बैठीं ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ यह एक नियम है कि स्त्री बिना अग्निके अपने गाँवकी सोमाको लाँघकर कहीं नहीं जाती। अग्निको साथ ले लेनेसे वह दोष नहीं रहता ॥ ५४ ॥ दूसरे एक जगह शास्त्र यह भी आज्ञा देता है कि यदि किसी प्रकारके खतरेका अवसर आ जाय तो अग्निको साथ लेकर वह प्रवास भी कर सकती है। यदि उस समय वह पतिसे वियुक्त हो तो उसको ऐसा करनेपर कोई दोष नहीं लगता ॥ ५५ ॥ मर्त्यलोकनिवासियों तथा ब्राह्मणोंको चाहिए कि वे देवताओंका अनुकरण न करें। अस्तु, सोता गरुड़पर सवार हुईं। हनुमान्जी सीताकी रक्षा करने लगे और सीता रास्तेके अनेक देशोंको देखती हुई लङ्काकी तरफ चलीं। इस प्रकार बहुत शीघ्र लङ्कामें पहुँचकर उन्होंने देखा कि रामचन्द्रजी वहाँ कल्पवृक्षके नीचे बैठे हुए हैं ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ वहाँ पहुँचीं तो उतरकर उन्होंने रामचन्द्रको प्रणाम किया। रामने कहा—साते! मैं देखता हूँ कि तुम्हारा मुँह कुम्हलाया हुआ है और शरीर दुर्बल हो गया है। रामकी बात सुनकर मुस्कराती हुई सीता लज्जाके साथ कहने लगीं—हे स्वामिन्! यह सब आपके विरहका प्रभाव है ॥ ५८-६० ॥ मुझे न नींद आती है, न जाग ही पाती हूँ और न खाती-पीती हूँ। आपसे वियुक्त होकर योगिनीके समान सदा आपका ध्यान किया करती हूँ ॥ ६१ ॥ निद्राकी दरिद्र मेरी आँखें स्वप्नमें आपके ही मुखको देखा करती हैं। उसीमें इनको आनन्द मिलता है ॥ ६२ ॥ आपके मुखका प्रतिनिधिस्वरूप चन्द्रमा भी उदित होता है तो मुझे अच्छा नहीं लगता। सन्तापको दूर करनेकी कामनासे भी उसकी ओर निहारनेको मन नहीं करता ॥ ६३ ॥ यद्यपि तुम्हारी ही बोलोंकी तरह कोकिलकी बोल होती है, किन्तु वह भी सुननेकी इच्छा नहीं होती। उसकी बोल कानोंको शूलके समान लगती है ॥ ६४ ॥ यद्यपि तुम्हारे अङ्गोंके स्पर्शके समान ही मधुर धूपके सुगंधसे मिली वायु भी है, किन्तु उसका भी मैंने कभी आलिंगन नहीं किया ॥ ६५ ॥ आपकी विजयके लिए मैं विविध प्रकारके व्रतों और उपवासोंको करती रही। आपकी विरहाग्निसे संतप्त होनेके कारण कभी मुझे सुख नहीं मिला ॥ ६६ ॥ इसके अनन्तर हँसकर रामने बार-बार सीताको अपनी छातीसे लगाया, स्तनस्पर्श किया और होठोंको चूमा ॥ ६७ ॥ इसके बाद दूसरे दिन रामने स्नान किया, सीताको भी स्नान करवाया और सब अस्त्रविद्या, शस्त्रविद्या एवं उनके आवाहन तथा विसर्जनकी रीति सिखलायी। कहनेका तात्पर्य यह कि उन्होंने थोड़े ही समयमें सीताको समस्त धनुर्वेदकी शिक्षा दे दी। रामकी आज्ञासे लक्ष्मणने रथ तैयार

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

शिक्षयामास सकलां धनुर्विद्यां सविस्तराम् । रामाज्ञया लक्ष्मणोऽपि रथं सिद्धं चकार सः ॥६९॥
दारुकः सारथिर्यस्मिन् शस्त्राण्यस्त्राण्यनेकशः । गदापद्मं तु यत्रास्ति यत्रास्ति गरुडो ध्वजे ॥७०॥
यस्मिन् शैब्यश्च सुग्रीवस्तथा चैव बलाहकः । मेघपुष्पश्च चत्वारो वायुगास्तुरगोत्तमाः ॥७१॥
यत्र छत्रं वरं दिव्यं हेमदंडं विराजते । यस्मिन् शुक्ले चामरे द्वे यस्मिन्कीलादिरुक्मजम् ७२।
तं रथं राघवो दृष्ट्वा जानकीं वाक्यमब्रवीत् । सीते स्थित्वा स्यंदनेऽस्मिन् जहि त्वं मूलकासुरम् ७३।
तथेति रामवाक्याच्छायां सीता प्रचोदयत् । तामसी साऽपि तं नत्वा परिक्रम्य पुनः पुनः ॥७४॥
आरुरोह रथं वेगाद्घोरा घर्घरनिःस्वना । एतस्मिन्नंतरे रामप्रेरिता वानरोत्तमाः ॥७५॥
लंकां गत्वा पूर्ववच्च हवनात्तं प्रचालयन् । ततस्ते वानराः सर्वे ययुः श्रीराघवं पुनः ॥७६॥
ययौ स्थित्वा रथे योद्धुं क्रोधेन मूलकासुरः । मार्गे भुवि पपातास्य मुकुटः स्खलितो भुवि ॥७७॥
अनिवर्त्यासुरो गर्वाद्ययौ रणभुवं जवात् । सीताछायाऽपि सैन्येन ययौ सा लक्ष्मणादिभिः ॥७८॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे राज्यकांडे पूर्वार्धे सीताविरहो नाम पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः

(रामके द्वारा राज्यका विभाजन)

श्रीरामदास उवाच

अथ छाया टणत्कृत्य शार्ङ्गं तच्च महद्धनुः । ययौ रणभुवं वेगात्तां ददर्शासुरोऽपि सः ॥ १ ॥
करालदंष्ट्रानयनां विद्युत्पिंगशिरोरुहाम् । तालजंघां शूर्पपादां दरिवक्त्रां घनप्रभाम् ॥ २ ॥
लोमशां प्रललच्जिह्वां विदीर्णास्यां महच्छिराम् । तां दृष्ट्वा कौंभकर्णिः स भीतः प्राह स्खलद्गिरा ॥ ३ ॥
का त्वं समागताऽस्यत्र किमर्थं योद्धुमिच्छसि । मम सर्वं वदस्व त्वं मदग्रे मा स्थिरा भव ॥ ४ ॥

किया ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ उस रथका दारुक सारथी था, विविध प्रकारके अस्त्र-शस्त्र एवं गदा-पद्म उसमें रक्खे थे और रथके ऊपर गरुड़से अंकित पताका फहरा रही थी ॥ ७० ॥ उसमें शैव्य, सुग्रीव, मेघपुष्प और बलाहक नामवाले चार घोड़े जुते हुए थे ॥ ७१ ॥ उसपर बढ़िया छत्र लगा था और सुवर्णके दण्ड लगे दो सफेद चमर रक्खे थे। उस रथमें जगह-जगह सुवर्णकी कीलें लगी हुई थीं ॥ ७२ ॥ इस प्रकार उस सुसज्जित रथको देखकर रामने सीतासे कहा—सीते ! अब तुम इस रथपर बैठकर मूलकासुरको मारो ॥ ७३ ॥ सीताने रामकी बात अङ्गीकार की और अपनी तामसी छायाको प्रेरित किया। उस तामसी छायारूपिणी सीताने बार-बार रामकी प्रदक्षिणा की और घर्घर शब्द करते हुए रथपर जा बैठीं। उसी समय रामके द्वारा प्रेरित वानर लङ्कामें पहुँचे और उन्होंने मूलकासुरको हवनकर्मसे विचलित कर दिया। फिर लौटकर वे वानर रामके पास पहुँचे और सब समाचार सुनाया। उधर मूलकासुर कुपित होकर रथपर जा बैठा और संग्रामके लिए चल पड़ा। जाते-जाते रास्तेमें एक जगह उसका मुकुट माथेसे खिसककर जमीनपर गिरा और वह स्वयं भी फिसलकर गिर पड़ा ॥ ७४–७७ ॥ फिर भी वह लौटा नहीं, उसी गर्वके साथ रणभूमिमें पहुँचा। इधर सीता भी रथपर बैठीं और अपने लक्ष्मणादि वीर सैनिकोंके साथ रणभूमिकी ओर चल पड़ीं ॥ ७८ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपांडेयकृत'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासमन्विते राज्यकांडे पूर्वार्द्धे पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

श्रीरामदासने कहा–इसके अनन्तर उस छायामयी सीताने अपने धनुषका विकराल टंकोर किया और संग्रामभूमिमें जा डटीं। तब मूलकासुरने भी उन्हें देखा ॥ १ ॥ उस समय सीताके बड़े-बड़े दाँत, डरावनी आँखें, बिजलीके समान पीतवर्णके केशपाश, तालकी नाईं लम्बी-चौड़ी जाँघें, सूपकी तरह चौड़े पैर, कन्दराके समान भयावना तथा मेघके समान काला मुँह, लपलपाती जीभ और बड़ा भारी माथा था। उन्हें देखकर कुंभकर्णके बेटेने घबराकर कहा—॥ २ ॥ ३ ॥ तुम कौन हो ? यहाँ युद्ध करनेके लिये क्यों आयी हो ? इन बातोंका

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

यदि जीवितुमिच्छाऽस्ति न मे स्त्रीष्वस्ति पौरुषम् । अथ सा रामसीताभ्यां विमानान्मुहुरीक्षिता ॥ ५ ॥
तमुवाच तदा छाया गिरा निर्दरती गिरीन् । मूलकासुर तां सीतां चंडां मां विद्धि चंडिकाम् ॥ ६ ॥
यन्निमित्तात्कुलं नष्टं तव लङ्का प्रधर्षिता । मत्पक्षपातिनं विप्रं पूर्वं त्वं हतवानसि ॥ ७ ॥
तस्यानृण्यं गमिष्यामि त्वां हत्वाऽद्य रणाजिरे । इत्युक्त्वा चापमानम्य पंचबाणैर्जघान तम् ॥ ८ ॥
ततः सोऽपि धनुर्धृत्वा छायां बाणान्मुमोच ह । तद्युद्धं पार्थिवाश्चास्ते जीविता ये हनूमता ॥ ९ ॥
ददृशुर्वानराः सर्वे पुष्पकाट्टालसंस्थिताः । सीतया रघुवीरस्तु कल्पवृक्षतले स्थितः ॥१०॥
रुक्ममाणिक्यपर्यंके दासीभिः परिवीजितः । उपबर्हणपृष्ठः स धृताधोंकोपबर्हणः ॥११॥
युद्धं ददर्श तच्छायामूलकासुरयोर्महत् । मूलकासुरसंत्यक्तान् बाणांश्छाया समागतान् ॥१२॥
छित्त्वा स्वबाणजालैस्तानन्पुनर्बाणान्मुमोच सा । चतुर्भिस्तुरगान् हत्वा मुकुटं कवचं धनुः ॥१३॥
सा बिभेद त्रिभिर्बाणैस्तदा पद्भ्यां महासुरः । गत्वाऽन्यं रथमारुह्य छायां योद्धुं पुनर्ययौ ॥१४॥
ततश्छायां मुमोचासौ वह्न्यस्त्रं मूलकासुरः । छाया मुमोच मेघास्त्रं तद्वह्न्यस्त्रं न्यवर्तयत् ॥१५॥
पर्वतास्त्रं कौम्भकर्णिस्ततश्छायां मुमोच सः । न्यवारयत्तच्छाया सा पवनास्त्रेण पार्वतम् ॥१६॥
पुनर्मुमोच वेगेन सर्पास्त्रं मूलकासुरः । गारुडास्त्रेण तच्छाया चकार विफलं क्षणात् ॥१७॥
एवं तत्तुमुलं युद्धं बभूव दिनसप्तकम् । तदा छाया महारौद्रा चंडिकाऽस्त्रेण तं रिपुम् ॥१८॥
हंतुकामा महास्त्रं तन्मुमोच मूलकासुरम् । तदा चचाल जगती मर्यादामब्धयस्तदा ॥१९॥
लंघयामास रजसा व्याप्ताश्चासंस्तदा दिशः । चण्डिकास्त्रं तु चिच्छेद मूलकासुरसच्छिरः ॥२०॥
पपात कायो लंकायां राजद्वारि महच्छिरः । हाहाकारो महानासील्लंकायां रक्षसां तदा ॥२१॥

उत्तर दो और यदि तुम्हें अपने प्राण प्रिय हों तो मेरे आगेसे हट जाओ। स्त्रियोंसे लड़नेके लिए मुझमें पुरुषार्थ नहीं है। थोड़ी ही देर बाद सीता आकाशमें रामके साथ विमानपर बैठी हुई दिखायी पड़ीं ॥४॥५॥ वहाँ हीसे अपनी घनघोर वाणीमें पर्वतोंको भी कँपाती हुई सीता कहने लगी—हे मूलकासुर! इस समय उग्र रूप धारण किये मैं चण्डिका सीता हूं,। जिसके कारण तुम्हारा सारा कुल नष्ट हो गया था और लंका ध्वस्त हो गयी थी, वही सीता मैं हूँ। तुमने मेरे पक्षपाती एक ब्राह्मणको मार डाला है ॥ ६ ॥ ७ ॥ उसके बदले आज तुम्हें मारकर मैं उसके ऋणसे मुक्त हो जाऊँगी। इतना कहकर सीताने अपना धनुष उठाया और तड़ातड़ पाँच बाणोंसे मूलकासुरपर प्रहार किया॥ ८ ॥ इसके अनन्तर उस दैत्यने भी अपना धनुष सम्हालकर सीताके ऊपर कई बाण चलाये। उन दोनोंके उस तुमुल युद्धको देखनेके लिए वे बहुतसे राजे तथा वानर पुष्पक विमानपर बैठे थे, जिनको हनुमानजीने संजीवनी बूटीसे जीवित कर दिया था ॥ ९ ॥ थोड़ी देर बाद वानरोंने देखा कि राम सीताके साथ कल्पवृक्षकी छायामें स्वर्णजटित आसनपर बैठे हैं ॥ १० ॥ दासियाँ पंखा झल रही हैं और उनके आगे-पीछे तकिया लगी हुई है ॥ ११ ॥ रामचन्द्रजी वहींसे बैठे-बैठे छायामयी सीता तथा मूलकासुरका युद्ध देखते रहे। सीता मूलकासुरकी ओरसे आये बाणोंको शीघ्रताके साथ काट-काटकर अपने बाणोंको उसके ऊपर छोड़ती जाती थीं। चार बाणोंसे सीताने मूलकासुरके रथमें जुते घोड़ों और तीनसे उसके माथेका मुकुट, धनुष तथा कवच काट डाला ॥१२॥१३॥ ऐसी अवस्थामें वह पैदल दौड़ता हुआ गया और एक दूसरे रथपर सवार होकर फिर सीतासे युद्ध करनेके लिए आ डटा ॥ १४ ॥ वहाँ पहुँचते ही उसने सीतापर वह्न्यस्त्र छोड़ा। सीताने मेघास्त्रका प्रयोग करके उसके वह्न्यस्त्रको शान्त कर दिया ॥ १५ ॥ फिर उसने सीता-पर पर्वतास्त्र छोड़ा। सीताने पवनास्त्र छोड़कर उसका निवारण किया। इसके अनन्तर वेगके साथ उसने सर्पास्त्र चलाया। सीताने गरुडास्त्र छोड़कर उसे व्यर्थ कर दिया ॥ १६ ॥ १७ ॥ इस प्रकार सीता और मूलकासुरमें सात दिन पर्य्यन्त महान् युद्ध होता रहा। तदनन्तर कुपित होकर सीताने मूलकासुरका नाश करनेके लिए अपना एक महान् अस्त्र चलाया। जिससे पृथ्वी डगमगाने लगी और समुद्र अपनी मर्यादाको लाँघकर बड़ी-बड़ी लहरें उछालने लगा ॥ १८ ॥ १९ ॥ दसों दिशाएँ धूलसे व्याप्त हो गयी और उन चण्डीरूपधारिणी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

निनेदुर्देववाद्यानि देवाश्चाकाशसंस्थिताः । ववर्षुः कुसुमैश्छायां रामं सीतां मुहुर्मुहुः ॥२२॥
ततो निवर्त्य सा छाया ययौ सीतांतिकं पुनः । नत्वा रामं च सीतां च सीतादेहे लयं ययौ ॥२३॥
तदा निनेदुर्वाद्यानि ननृतुश्चाप्सरोगणाः । तुष्टुवुर्मागधाद्याश्च जगुर्गीतं नटादयः ॥२४॥
ततः सुरगणैः सर्वैर्वेधाः श्रीराघवं ययौ । नत्वा रामं च सीतां च तुष्टाव जानकीं मुदा ॥२५॥

ब्रह्मोवाच

जनकजात्मजे राघवप्रिये कनकभासुरे भक्तपालिके ।
दशरथात्मजप्राणवल्लभे तव पदांबुजालिः शिरोऽस्तु मे ॥२६॥
मूलकासुरप्राणघातके रामरक्षिते रामसेविते ।
राममोहिनि स्यंदनस्थिते त्वत्पदांबुजालिः शिरोऽस्तु मे ॥२७॥
राममञ्चकाधिष्ठिते रमे रामवीजिते रामलालिते ।
रामसंस्तुते रामरंजिते त्वत्पदाम्बुजालिः शिरोऽस्तु मे ॥२८॥
लोकपावनि श्रीरजे वरे भूमिकन्यके लोकपालिके ।
पद्मलोचने धरात्मजे परे त्वत्पदांबुजालिः शिरोऽस्तु मे ॥२९॥
कंजलोचने नागगामिनि स्वीयसत्सुखे रम्यरूपिणि ।
रुक्मभूषिते मौक्तिकांकिते त्वत्पदांबुजालिः शिरोऽस्तु मे ॥३०॥
जलरुहानने चित्रवासिनि त्वमवसि सर्वदा स्वीयसेवकान् ।
मुनिरिपून् सदा दुःखदायिके त्वत्पदांबुजालिः शिवोऽस्तु मे ॥३१॥

सीताके उस महान् अस्त्रने बातकी बातमें मूलकासुरके मुण्डको शरीरसे अलग कर दिया ॥ २० ॥ उसका धड़ लंकाके राजद्वारपर जा गिरा । इस घटनासे लङ्कानगरीके दैत्योंमें हाहाकार मच गया ॥ २१ ॥ उधर देवताओंने प्रसन्न होकर अपनी दुन्दुभी बजायी, अपने-अपने विमानोंपर बैठकर वे आकाशमें आये और राम तथा सीतापर उन्होंने पुष्पवृष्टि की ॥ २२ ॥ इसके बाद सीताकी छाया रणांगणसे लौटकर रामके समीप पहुँची । वहाँ वह राम तथा सात्त्विकी सीताको प्रणाम करके उन्हीके स्वरूपमें लय हो गयी ॥ २३ ॥ उस समय फिर देवताओंने अपने मंगलवाद्य बजाये और अप्सराएँ नाचने लगीं । मागध-बन्दीजनादिकोंने सीताकी स्तुति की और नटोंने उनका यशोगान किया ॥ २४ ॥ थोड़ी देर बाद ब्रह्माजी समस्त देवताओंके साथ रामचन्द्रके पास पहुँचे और उनको तथा सीताको प्रणाम करके इस प्रकार स्तुति करने लगे । ब्रह्माने कहा-हे जनकात्मजे ! हे सुवर्णदृश दमकनेवाली भव्यमूर्तिधारिणी सीते ! हे राघवप्रिये ! हे भक्तोंका पालन करनेवाली माँ ! हे रामचन्द्रकी प्रेयसी ! हमें ऐसा आशीर्वाद दो कि हमारा मस्तक सदा तुम्हारे चरणकमलका भौंरा बना रहे ॥ २५ ॥ २६ ॥ हे मूलकासुरघातिनि ! हे रामरक्षिते ! हे रामसेविते ! हे रामको मुग्ध करनेवाली ! हे रथपर आरूढ़ होकर दुष्टोंका दर्प दूर करनेवाली सीते ! हमें आशीर्वाद दो कि हमारा मस्तक सदैव तुम्हारे चरणकमलका भ्रमर बना रहे॥ २७ ॥ हे रामके साथ दिव्य सिंहासनपर बैठनेवाली ! हे लक्ष्मी ! हे रामजीविते ! हे रामलालिते ! हे रामसंस्तुते ! हे रामरञ्जिते सीते ! हमें आशीर्वाद दो कि हमारा मस्तक सदा तुम्हारे चरणकमलका भ्रमर बना रहे ॥ २८ ॥ हे लोकपावनि ! हे श्री ! हे अजे ! हे वरे ! हे भूमिकन्यके ! हे लोकपालिके ! हे पद्मलोचने ! हे धरात्मजे सीते ! हमें आशीर्वाद दो कि हमारा मस्तक सर्वदा तुम्हारे चरणकमलका मधुकर बना रहे ॥ २९ ॥ हे कंजलोचने ! हे गजगामिनि ! हे स्वीयसत्सुखे ! हे रम्यरूपिणि ! हे रुक्मभूषिते ! हे मौक्तिकांकिते सीते ! हमें आशीर्वाद दो कि हमारा मस्तक सर्वदा तुम्हारे चरणोंका भौंरा बना रहे ॥ ३० ॥ हे कमल सरीखे मुखवाली सीते ! हे चित्रवसने ! तुम सदा अपने भक्तोंकी रक्षा करती हो । ऋषियोंको दुःख देनेवाले राक्षसोंको दुःख देनेवाली हे सीते ! तुम ऐसा कुछ करो कि जिससे हमारा मस्तक सर्वदा तुम्हारे चरणकमलका भृङ्ग बना रहे ॥ ३१ ॥

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

त्वन्मुखेक्षणाद्रक्षसां पतिः प्राप संक्षयं रामसत्प्रिये ।
त्वद्दृगेक्षणाल्लज्जिता मृगी त्वत्पदांबुजालिः शिरोऽस्तु मे ॥३२॥
कुशलवांबिके जलरुहानने जलरुहेक्षणे पापदाहिके ।
मधुरसुस्वने नूपुरस्वने त्वत्पदांबुजालिः शिरोऽस्तु मे ॥३३॥
घ्राणमुत्तमं ते स्मितानने तेऽधरः शुभो बिंबसन्निभः ।
अद्य वै त्वया मूलकासुरो मारितो रणे तारिता वयम् ॥३४॥
ब्रह्मणेरितं नवकमुत्तमं भास्करोदये पठपि यः पुमान् ।
सर्ववांछितं लभति सोऽत्र ना प्राप्नुयात्सुखं रामसन्निधिम् ॥३५॥

इति स्तुत्वाऽमरैर्ब्रह्मा वस्त्रालंकारमण्डनैः । सीतां रामं च संपूज्य राघवेणापि पूजितः ॥३६॥
प्रययौ राममामंत्र्य सत्यलोकं मनोरमम् । ततो विभीषणः प्राह लंकायां न त्वया पुरा ॥३७॥
समागतमिदानीं त्वं मां कृतार्थं कुरु प्रभो । तथेति प्रतिनंद्याथ तद्वाक्यं रघुनन्दनः ॥३८॥
विमानेन ययौ लंकामध्ये मित्रगृहं प्रति । ततो विभीषणं राज्ये लंकायां त्वभ्यषेचयत् ॥३९॥
तदा महोत्सवश्चासील्लंकायां परमाद्भुतः । ततो विभीषणो रामं सीतां ताँल्लक्ष्मणादिकान् ॥४०॥
वस्त्रैराभरणै रत्नैः पूजयामास सादरम् । अर्पयामास सर्वस्वं स्वीयं रामाय राक्षसः ॥४१॥
तदा कपिलवाराहमूर्तिं रावणपूजिताम् । रामस्तां रोचयामास सोऽपि रामाय तां ददौ ॥४२॥
मनसा कपिलेनैव पुरा मूर्तिर्विनिर्मिता । चिरकालं तमाराध्य लब्धा मघवता तु या ॥४३॥

हे रामसत्प्रिये ! तुम्हें देखते ही राक्षसोंका राजा मूलकासुर नष्ट हो गया। तुम्हारी आँखोंकी शोभा देखकर मृगी लज्जित हो जाती है। इस प्रकार सुन्दर-स्वरूपवाली हे सीते ! हमें यही आशीर्वाद दो कि हमारा मस्तक सदा तुम्हारे चरणकमलका भ्रमर बना रहे ॥ ३२॥ हे कुश-लवकी माता ! हे कमलके समान मुखवाली ! हे कमलके समान आँखोंवाली ! हे पापोंको नष्ट करनेवाली ! हे मीठे स्वरवाली ! हे नूपुर सदृश मधुर स्वर-वाली सीते ! हमें आशीर्वाद दो कि हमारा मस्तक सदा तुम्हारे चरणकमलोंका भौंरा बना रहे ॥ ३३ ॥ हे मुस्कुराहट भरे मुखवाली सीते ! तुम्हारी नासिका बहुत सुन्दर है। बिंबफलके समान तुम्हारे लाल ओष्ठ हैं। आज तुमने संग्राममभूमिमें मूलकासुरको मार डाला। इससे हमलोगोंका उद्धार हो गया ॥३४॥ श्रीरामदासने कहा–जो प्रातःकालके समय ब्रह्माजीके द्वारा स्तुति किये गये इन नौ श्लोकोंका पाठ करता है, उसकी समग्र कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं और अन्त समयमें उसे रामचन्द्रजीके समीप स्थान मिलता है ॥ ३५ ॥ इस तरह ब्रह्माने स्तुति करके विविध प्रकारके वस्त्राभूषणोंसे राम और सीताकी पूजा की। रामने भी ब्रह्माजीका विधि-वत् पूजन किया ॥ ३६ ॥ तदनन्तर रामसे आज्ञा लेकर समस्त देवताओंके साथ ब्रह्मा अपने लोकको लौट गये। तब विभीषणने भगवान्से प्रार्थना की कि पहले जब आप रावणको मारनेके लिए लंकामें आये थे तो पिताकी आज्ञा न होनेके कारण आपने नगरीमें प्रवेश नहीं किया था ॥ ३७ ॥ किन्तु अबकी बार आप मेरे घर पधारकर मुझे कृतार्थ कीजिए । रामने वह प्रार्थना स्वीकार कर ली और अपने पुष्पक विमानपर बैठकर लंकामें अपने मित्र विभीषणके भवनमें पधारे । वहाँ पहुँचकर रामने विभीषणका अभिषेक करके लंकाके राजसिंहासनपर बिठाला। उस समय लंकामें बड़ा उत्सव मनाया गया। इसके बाद विभीषणने राम, सीता तथा लक्ष्मणादिका विविध रत्नों और वस्त्राभूषणोंसे सत्कार किया । तत्पश्चात् उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति रामको अर्पण कर दी ॥ ३८–४१ ॥ उस समय विभीषणकी सारी सम्पत्तिमेंसे रामको कपिलवाराहकी मूर्ति अच्छी लगी। जिसकी पूजा रावण स्वयं करता था । विभीषणने रामको वह मूर्ति दे दी ॥ ४२ ॥ उस मूर्तिके विषयमें ऐसा सुना जाता है कि कपिल भगवान्ने अपनी मनःशक्तिसे उस मूर्तिकी रचना की थी। बहुत दिनों तक कपिल मुनिने स्वयं उसकी पूजा की। उसके बाद वह इन्द्रके हाथ लग गयी।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तं जित्वा रावणेनैव समानीता निजां पुरीम् । यां सदा पूजयामास लंकायां रावणश्चिरम् ॥४४॥
विभीषणेन सा दत्ता राघवाय दृषन्मयी । तां मूर्तिं स्थापयामास विमाने रघुनन्दनः ॥४५॥
ततः सीताऽथ रामेण देवरैर्बालकैर्मुदा । अशोकवनिकां गत्वा शिंशपावृक्षमुत्तमम् ॥४६॥
दर्शयामास रामाय यत्र पूर्वं स्थिता स्वयम् । ततो वामकरेणैव रामस्य हि कनिष्ठिकाम् ॥४७॥
धृत्वा दक्षिणहस्तस्य सीता बभ्राम तद्वनम् । स्नानासनादिकं पूर्वं यत्र यत्र कृतं वने ॥४८॥
रामं नीत्वा तत्र तत्र दर्शयामास जानकी । ततस्तां त्रिजटां सीता वस्त्रैराभरणादिभिः ॥४९॥
कृत्वाऽतितुष्टां रामाग्रे सरमां वाक्यमब्रवीत् । अनया रक्षिता पूर्वं राक्षसीग्रहभीतितः ॥५०॥
मत्तुल्या माननीयेयं सर्वदा सरमे त्वया । इत्युक्त्वा सरमाहस्ते त्रिजटाकरमर्पयत् ॥५१॥
ततो वासस्थलं सीता ययौ रामेण सा शनैः । एवं निकुंभिलादीनि दृष्ट्वा नानास्थलानि हि ॥५२॥
पुष्पकस्थो ययौ रामो विभीषणसमन्वितः । विभीषणस्य सचिवं लंकायां संन्यवेशयत् ॥५३॥
रामः करे धनुर्धृत्वा लंकायाः परितस्तदा । प्रदक्षिणोपमं वेगाद्भ्रामयामास सादरम् ॥५४॥
ततो विभीषणं प्राह वचनं रघुनन्दनः । राक्षसेंद्र मया चापं रक्षार्थं भ्रामितं तव ॥५५॥
ततो रामो विमानेन ययौ शीघ्रं विहायसा । विभीषणस्य रक्षार्थं तस्यैवानुमतेन च ॥५६॥
मच्चापरेखाऽप्यन्येषां दुःखोत्तीर्या भविष्यसि । अमुं बाणं मया दत्तं त्वं गृहाण विभीषण ॥५७॥
मम नाम्नांकितं तीक्ष्णं तव प्राणस्य रक्षकम् । चापरेखा बाणहस्तं येयं त्वां धर्षयिष्यति ॥५८॥
मद्बाणहस्तं त्वां कश्चिन्न रिपुर्धर्षयिष्यति । इत्युक्त्वा तं ददौ बाणं विभीषणकरे प्रभुः ॥५९॥
प्रणनाम मुदा रामं बाणहस्तो विभीषणः । ततो रामो विमानेन पश्यन् देशान् मनोरमान् ॥६०॥

जब रावणने इन्द्रसे संग्राम करके उन्हें पराजित किया । तब रावण उस मूर्तिको इन्द्रसे छीन लाया और बहुत समय तक उसका पूजन करता रहा ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ आज उसे ही विभीषणने रामको अर्पण कर दिया । रामने बड़े प्रेमसे उसे अपने पुष्पक विमानपर रक्खा ॥ ४५ ॥ इसके पश्चात् अपने पति राम और लक्ष्मणादि देवरों तथा कुश आदि बच्चोंके साथ सीता उस शिंशपा वृक्षके नीचे पहुँचीं, जहाँ रावणके हर ले जानेपर बहुत दिनों तक रह चुकी थीं । वहाँ पहुँचकर सीताने बतलाया कि यह वही स्थान है, जहाँ आपसे वियुक्त होकर मैं बहुत दिन तक रही । इसके अनन्तर रामके दाहिने हाथकी उँगली पकड़कर सीता अशोकवाटिकामें इधर-उधर घूमती हुई उन स्थानोंको दिखलाने लगीं, जहाँ स्नानादि कृत्य करती थीं । घूमती-घूमती सीता त्रिजटाके स्थानपर पहुँचीं और विविध प्रकारके वस्त्राभूषणोंसे त्रिजटाका सत्कार किया ॥ ४६–४९ ॥ जब त्रिजटा प्रसन्न हो गयी तो विभीषणकी स्त्री सरमासे सीताने कहा—जिस समय राक्षसियाँ अपना भयानक मुँह दिखाकर मुझे डराती-धमकाती थीं, तब यह त्रिजटा ही मेरी रक्षा करती थी । हे सरमे ! मैं तुमसे विनयपूर्वक कहती हूँ कि सर्वदा तुम मेरी ही तरह इसका सम्मान करना । इतना कहकर सीताने त्रिजटाका हाथ सरमाके हाथोंमें थम्हा दिया ॥ ५० ॥ ५१ ॥ इस तरह घूम-फिरकर राम सीताके साथ डेरेपर पहुँचे और लंकामें मन्त्रीको राज्यकी देख-भाल करनेके लिए छोड़कर विभीषणको अपने साथ लिये हुए ही अयोध्याको प्रस्थान कर दिया । अपने भक्त विभीषणके प्रार्थना करनेपर रामने उसकी रक्षाके लिए अपना धनुष उठाकर बड़े वेगके साथ लंकाके चारों ओर घुमाया और इस प्रकार कहने लगे–हे राक्षसेन्द्र ! मैंने तुम्हारी रक्षाके लिये यह धनुष घुमाया है । मेरे धनुषकी यह रेखा शत्रुके लिए दुस्तर होगी । तुम्हें यह बाण भी दे रहा हूँ, इसे ग्रहण करो ॥ ५२–५७ ॥ इसमें मेरा नाम लिखा हुआ है । यह सदा तुम्हारे प्राणोंका रक्षक होगा । एक बात और भी है । वह यह कि तुम इस बाणको लिये हुए मेरे धनुषकी इस रेखाको लांघोगे तो तुम्हें यह कोई कष्ट नहीं पहुँचायेगी ॥ ५८ ॥ मेरा बाण जब लिये रहोगे, उस समय कोई शत्रु भी तुम्हारे ऊपर आक्रमण नहीं करेगा । इतना कहकर रामने अपना बाण विभीषणको दे दिया ॥ ५९ ॥ बाणको हाथोंमें लेकर विभीषणने रामको प्रणाम किया । इसके अनन्तर राम पुष्पक विमानपर

CC0. In Public Domain. Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पूजितो दानमानैश्च नृपैः स्वनगरीं ययौ। तदा निनेदुर्वाद्यानि ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥६१॥
प्रत्युज्जगाम श्रीरामं यूपकेतुः सनागरः। प्रासादशिखरारूढाः पौरनार्यः सहस्रशः ॥६२॥
सीतां रामं निरीक्ष्याथ ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः। ततो विवेश श्रीरामः सभां तां पार्थिवैः सह ॥६३॥
विवेश स्वीयगेहं सा जानकी तुष्टमानसा। गेहे कपिलवाराहमूर्तिं रामो न्यवेशयत् ॥६४॥
एकदा राघवस्तुष्टः शत्रुघ्नाय हि तां ददौ। सीताऽपि सा पुरा यान्यान्यमाँश्च नियमादिकान्॥६५॥
सङ्कल्पयामास सर्वांस्तांश्चकार यथाविधि। उद्यापनान्यनेकानि सर्वेषां साऽकरोन्मुदा ॥६६॥
एकदा मुनयः सर्वे यमुनातीरवासिनः। आजग्मू राघवं द्रष्टुं भयाल्लवणरक्षसः ॥६७॥
कृत्वाऽग्रे तु मुनिश्रेष्ठं भार्गवं च्यवनं द्विजाः। असंख्याताः सशिष्यास्ते रामादभयकांक्षिणः ॥६८॥
तान् पूजयित्वा परया भक्त्या रघुकुलोद्वहः। उवाच मधुरं वाक्यं हर्षयन् मुनिमण्डलम् ॥६९॥
करवाणि मुनिश्रेष्ठाः किमागमनकारणम्। धन्योऽस्मि यदि यूयं मां प्रीत्या द्रष्टुमिहागताः॥७०॥
सुदुष्करं वा यत्कार्यं भवतां तत्करोम्यहम्। आज्ञापयन्तु मां भृत्यं ब्राह्मणा दैवतं हि मे ॥७१॥
तच्छ्रुत्वा सहसा हृष्टश्च्यवनो वाक्यमब्रवीत्। मधुनामा महादैत्यः पुरा राम कृते युगे ॥७२॥
आसीदतीव धर्मात्मा देवब्राह्मणपूजकः। तस्मै तुष्टो महादेवो ददौ शूलमनुत्तमम् ॥७३॥
तं प्रहारेण यं हंसि स तु भस्मीभविष्यति। रावणस्यानुजा तस्य भार्या कुंभीनसी स्मृता ॥७४॥
तस्यां तु लवणो नाम राक्षसो भीमविक्रमः। आसीद्दुरात्मा दुर्धर्षो देवब्राह्मणहिंसकः ॥७५॥
मधुः स तव हस्तेन मृतः पूर्वं यतस्तदा। मधुसूदननामाऽभून्मधुघाताद्रघूत्तम ॥७६॥
पीडिता लवणेनाद्य वयं त्वां शरणं गताः। तच्छ्रुत्वा राघवोऽप्याह मा भैर्वो मुनिपुंगवाः॥७७॥

बैठे और अनेक देशोंको देखते हुए अयोध्याको चल पड़े ॥ ६० ॥ रास्तेमें अनेक राजाओंकी भेंटोंको स्वीकार करते हुए वे अपनी नगरीमें पहुँचे। रामके वहाँ पहुँचनेपर नाना प्रकारके बाजे बजे और अप्सराएँ नाचीं ॥ ६१ ॥ यूपकेतु बहुतसे लोगोंको साथ लिये हुए रामकी अगवानी करने पहुँचे। अयोध्यानिवासिनी नारियोंने कोठेपर चढ़कर सीता और रामका दर्शन कर-करके उनपर पुष्पोंकी वृष्टि की। इसके बाद राम अनेक महिपालोंके साथ अपने सभाभवनमें गये। सीता अपने महलोंमें चली गयीं। बादमें रामचन्द्रजीने वहाँ कपिलवाराह मूर्तिकी स्थापना की ॥६२–६४॥ एक दिन रामचन्द्रजीने प्रसन्न होकर वह मूर्ति शत्रुघ्नको दे दी। सीताने रामके वियोगकालमें जिन व्रतों और नियमोंकी मनौती मानी थी, उनको बड़े विधि-विधान समेत सम्पन्न करके उनका उद्यापन भी यत्नके साथ किया ॥६५॥६६॥ एक दिन यमुना तटपर रहनेवाले सब ऋषि लवणासुर नामक राक्षससे भयभीत होकर रामके पास आये ॥ ६७ ॥ उन लोगोंने भार्गव च्यवन ऋषिको अपना अगुवा बनाया और हजारोंसे अधिक संख्यामें एकत्रित होकर रामके पास जा पहुँचे ॥ ६८ ॥ रामने उन लोगोंका विधिवत् पूजन किया और उनको प्रसन्न करते हुए इस प्रकार कहने लगे—हे श्रेष्ठ मुनिगण ! आप लोग किस कार्यसे मेरे पास आये है ? आपकी जो आज्ञा हो, उसे पूर्ण करनेकें लिये मैं तैयार हूँ। मैं अपनेको धन्य समझता हूँ जो आप सब मुझे देखनेके लिए मेरे यहाँ पधारे ॥ ६९ ॥ ७० ॥ यदि कोई अत्यन्त दुष्कर कार्य होगा तो मैं उसे भी करनेके लिए बराबर प्रस्तुत हूँ। क्योंकि ब्राह्मण मेरे लिए देवता सदृश हैं। आपलोग बिना किसी अड़चनके मुझ सेवकको आज्ञा दीजिए ॥ ७१ ॥ इस प्रकार रामकी बात सुनकर उनमेंसे च्यवन नामक ऋषि गद्गद होकर कहने लगे—हे राम ! बहुत दिन हुए, मधु नामका एक महादैत्य हुआ था। वह ब्राह्मणोंका पूजक एवं बड़ा धर्मात्मा था। उसकी इस सहृदयतासे प्रसन्न होकर शिवजीने उसे एक त्रिशूल दिया और कहा—॥ ७२ ॥ ७३ ॥ तुम इस त्रिशूलसे जिसे मारोगे, वह भस्म हो जायगा। रावणके छोटे भाई कुम्भकर्णकी कुम्भीनसी नामकी भार्या थी। उससे लवण नामके एक राक्षसकी उत्पत्ति हुई। जो बड़ा भारी दुरात्मा, दुर्धर्ष तथा देवताओं और ब्राह्मणोंके लिए दुखदायी है ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ सत्ययुगमें आपने मधुनामके राक्षसको मारा था। इसीलिए आपका मधुसूदन नाम पड़ा था। मधुके समान ही आज लवणासुरसे अकुलाकर हम आपकी शरणमें आये

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

लवणं नाशयिष्यामि गच्छंतु विगतज्वराः । इत्युक्त्वा प्राह रामोऽपि शत्रुघ्नं सदसि स्थितम् ॥७८॥
अद्य त्वामभिषेक्ष्यामि मथुराराज्यकारणात् । तद्रामवचनं श्रुत्वा शत्रुघ्नो वाक्यमब्रवीत् ॥७९॥
नाङ्गीकरोम्यहं राज्यं त्वं मां निजपदात्प्रभो । न दूरं कुरु राजेन्द्र प्रार्थयामीति ते मुहुः ॥८०॥
तत्तस्य वचनं श्रुत्वा शत्रुघ्नस्य रघूत्तमः । तथैव भरतं प्राह न सोऽप्यङ्गीचकार तत् ॥८१॥
ततो रामः सुबाहुं च यूपकेतुं द्विजैर्नृपैः । अभिषिच्याब्रवीद्वाक्यं शत्रुघ्नं पुरतः स्थितम् ॥८२॥
दत्त्वा तस्मै शरं दिव्यं निजनामाङ्कितं शुभम् । अनेनैव हि बाणेन लवणं लोककंटकम् ॥८३॥
हनिष्यसि क्षणादेव वृत्रं देवपतिर्यथा । स तु संपूज्य तं शूलं गेहे गच्छति काननम् ॥८४॥
भक्षणार्थं हि जंतूनां घातं कर्तुं समुद्यतः । स तु नायाति सदनं यावद्वनचरो भवेत् ॥८५॥
तावदेव पुरद्वारि तिष्ठ त्वं धृतकार्मुकः । योत्स्यते स त्वया क्रुद्धस्तदा बाणेन घातय ॥८६॥
अनेनैकेन बाणेन क्षणादेव मरिष्यति । तं हत्वा लवणं क्रूरं तद्वने मधुसंज्ञिते ॥८७॥
निर्माय मथुरानाम्नीं नगरीं यमुनातटे । तस्यां स्थाप्य सुबाहुं वै पत्नीभ्यां बालकैः सह ॥८८॥
यूपकेतुं च विदिशानगरे शत्रुनिषूदन । संस्थाप्य दयिताभ्यां च सैन्येन बालकैः सह ॥८९॥
ततो ममान्तिकं याहि शीघ्रं शत्रुनिषूदन । अश्वानां पंचसाहस्रं रथानां च तदर्धकम् ॥९०॥
गजानां षट्शतान्येव पत्तीनामयुतत्रयम् । आगमिष्यन्ति त्वत्पश्चादग्रे साधय राक्षसम् ॥९१॥
आगते त्वयि पश्चाद्धि नृपान् जेतुं पुनस्त्वहम् । गंतुमिच्छामि तस्मात्त्वं शीघ्रमागच्छ मां प्रति ॥९२॥
इत्युक्त्वा मूर्ध्न्यवघ्राय शत्रुघ्नं रघुनन्दनः । प्रेषयामास तैर्विप्रैराशीर्भिरभिनन्दितः ॥९३॥
शत्रुघ्नोऽपि नमस्कृत्य रामं मधुवनं ययौ । निनाय पूजनार्थं तां मूर्तिं सोऽप्यात्मनः प्रियाम् ॥९४॥
अग्रे संप्रेष्य शत्रुघ्नं ततः श्रीरघुनन्दनः । सुबाहुयूपकेतू तौ स्वस्वस्त्रीभ्यां च बालकैः ॥९५॥

हैं। मुनिश्रेष्ठ च्यवनकी बात सुनकर रामने कहा—हे ऋषियों ! आप लोग मत डरें ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ आप सब अपने-अपने आश्रमको जाते जायें। मैं उस दुष्ट लवणासुरको मारूँगा। उनसे इतना कहकर राम शत्रुघ्नसे बोले—शत्रुघ्न ! आज मैं तुम्हारा अभिषेक करके तुम्हें मथुरा राज्यको भेजूँगा। उत्तरमें शत्रुघ्नने कहा – हे राजेन्द्र ! मुझे राज्य नहीं चाहिए । मेरे ऊपर कृपा करके आप मुझे अपने चरणोंसे दूर न कीजिए। इसके बाद रामने वही बात भरतसे कही और उन्होंने भी अस्वीकार कर दिया ॥ ७८–८१ ॥ तब रामने सुबाहु और यूपकेतुको तैयार करके अनेक ब्राह्मणोंके साथ उनका अभिषेक किया और सामने बैठे हुए शत्रुघ्नको अपने नामसे अङ्कित बाण देते हुए कहा कि लोगोंके लिए कंटकस्वरूप लवणासुरको तुम इसी बाणसे क्षण भरमें उसी तरह मार डालोगे, जैसे इन्द्रने वृत्रासुरको मारा था। वह लवणासुर सदा घरमें उस त्रिशूलका पूजन करके जङ्गलमें पशुओंको मारनेके लिए चला जाया करता है। सो तुम ऐसे ही समय उसके घर पहुँचो, जब वह वनको चला गया हो । उसके द्वारपर तबतक बैठे रहो, जबतक वह वनसे न लौट आये। जब वह आये तो उसे भीतर जानेका अवसर मत दो, द्वारपर ही छेड़-छाड़ करके युद्ध शुरू कर दो। वह भी तुरन्त क्रोधातुर होकर लड़ने लगेगा । तब तुम इसी बाणसे उसे क्षणभरमें मार डालोगे। उस दुष्ट लवणासुरको मारकर मधुवनमें ॥८२–८७॥ यमुना नदीके तटपर मथुरा नामकी नगरी बसा तथा उसमें स्त्री-बच्चों समेत सुबाहुको बिठालकर विदिशा नगरीमें बच्चों तथा सेनाके साथ जाकर यूपकेतुको राजगद्दीपर बिठा देना। यह सब काम करके हे शत्रुनिषूदन ! तुम फिर मेरे पास लौट आओ । तुम आगे-आगे जाओ, तुम्हारे पीछें पाँच हजार घोड़े, ढाई हजार रथ, छः सौ हाथियाँ और तीस हजार पैदल सैनिक तुम्हारी सहायताके लिए भेजता हूँ। जब तुम वहाँसे लौट आओगे, तब मैं एकबार फिर राजाओंको जीतनेके लिये यात्रा करूँगा ॥ ८८–९२ ॥ इतना कहकर रामने शत्रुघ्नका माथा सूँघा और अनेकशः आशीर्वाद देकर उन ब्राह्मणोंके साथ भेज दिया ॥ ९३ ॥ शत्रुघ्न भी रामको प्रणाम करके मधुवनकी ओर चल पड़े। साथमें रामकी दी हुई वह कपिल वाराहकी मूर्ति भी लेते गये। रामने उन विप्रोंके साथ

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रेषयामास सैन्यैश्च दासीदासैश्च गोधनैः । शत्रुघ्नोऽपि तथा चक्रे यथा रामेण शिक्षितः ॥९६॥
हत्वा तं लवणं वेगान्मधुरामकरोत्पुरीम् । स्फीतान् जनपदांश्चक्रे माथुरान्दानमानतः ॥९७॥
मथुरायां सुबाहुं तं स्थाप्य स्त्रीभ्यां सुतादिभिः । स्त्रीभ्यां पुत्रैर्यूपकेतुं विदिशानगरे तथा ॥९८॥
संस्थाप्य सैन्यैः शत्रुघ्नो मथुरायां कियद्दिनम् । स्थित्वा सुबाहवे मूर्तिं तदा तुष्टो ददौ सुखम् ॥९९॥
अद्यापि मथुरायां सा मूर्तिस्तत्रैव वर्तते । शत्रुघ्नोऽपि ततः सैन्यैः शीघ्रं रामांतिकं ययौ॥१००॥
सर्वं वृत्तं राघवाय कथयामास सादरम् । अथैकदा स भरतः कैकेयीनन्दनो महान् ॥१०१॥
युधाजिता मातुलेन ह्याहूतोऽगात्ससैनिकः । रामाज्ञया गतस्तत्र हत्वा गंधर्वनायकान् ॥१०२॥
तिस्रः कोटीः पुरे द्वे तु निवेश्य रघुनन्दनः । पुष्करं पुष्करावत्यां पूर्वमेवाभिषेचितम् ॥१०३॥
अयोध्यायां राघवेण स्थापयामास सेनया । स्त्रीभ्यां पुत्रैर्दासदासीजनाद्यैः परिवेष्टितम् ॥१०४॥
ततो मुहूर्ते भरतस्तक्षं तक्षशिलाह्वये । नगरे स्थापयामास राघवेणाभिषेचितम् ॥१०५॥
अयोध्यायां पूर्वमेव महामंगलपूर्वकम् । स्त्रीभ्यां पुत्रादिभिस्तक्षस्तस्थौ तक्षशिलाह्वये॥१०६॥
उभौ कुमारौ सौमित्रे गृहीत्वा पश्चिमां दिशम् । गत्वा मल्लान्विनिर्जित्य दुष्टान्सर्वापकारिणः ॥१०७॥
पुनरागत्य भरतो रामसेवापरोऽभवत् । ततः प्रीतो रघुश्रेष्ठो लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत् ॥१०८॥
द्वावंगदचित्रकेतू महासत्त्वपराक्रमौ । मयाभिषेचितौ वीरौ स्त्रीभ्यां पुत्रबलैर्युतौ ॥१०९॥
द्वयोर्द्वे नगरे कृत्वा गजाश्वधनरत्नके । स्थापयित्वा तयोः पुत्रौ शीघ्रमागच्छ मां पुनः॥११०॥
रामाज्ञां स पुरस्कृत्य गजाश्वबलवाहनैः । गत्वा हत्वा रिपून् सर्वान् गजाश्वेऽङ्गदनामकः॥१११॥
धनरत्ने चित्रकेतू स्थापयामास देहजौ । स्वस्वस्त्रीभ्यां बालकैश्च दासीदासैर्बलान्वितौ ॥११२॥
सौमित्रिः पुनरागत्य रामसेवापरोऽभवत् । अथ रामः समाहूय गणकान् परिपूज्य च ॥११३॥

आगे-आगे शत्रुघ्नको और पीछे स्त्रियों-बालकों समेत सुबाहु एवं यूपकेतुको उपर्युक्तसंख्यक सेनाके साथ भेज दिया। वहाँ पहुँचकर शत्रुघ्नने ठीक वैसा ही किया, जैसा रामने कहा था। इस प्रकार शीघ्र ही उन्होंने लवणासुरको मारकर मथुरा नगरी बसायी। मथुरावासियोंको अनेक प्रकारका दान-मान देकर मथुराको कुछ दिनोंमें ही उन्होंने एक सुन्दर नगरी बना दी। शत्रुघ्नने एक विशाल सेनाके साथ सुबाहुको वहाँकी गद्दीपर बिठाला और स्त्री तथा पुत्रों समेत यूपकेतुको अपने साथ लेकर विदिशा नगरीको प्रस्थान कर दिया ॥ ९४-९८ ॥ वहाँ पहुँचकर यूपकेतुको गद्दीपर बिठाया। इसके बाद फिर मथुरा लौट आये और कुछ दिन वहाँ रहे। एक रोज प्रसन्न होकर शत्रुघ्नने वह कपिलवाराहकी मूर्ति सुबाहुको दे दी। आज भी मथुरामें वह मूर्ति विद्यमान है। इसके अनन्तर शत्रुघ्न सेनाके साथ रामके पास अयोध्या आये और वहाँ पहुँचकर उन्होंने रामको मथुराका सब समाचार सुनाया ॥ ९९ ॥ १०० ॥ एक समय कैकेयीनन्दन भरत अपने मामा युधाजित्के बुलावेपर रामकी आज्ञासे बहुतेरे सैनिकोंके साथ ननिहाल गये। वहाँ गन्धर्वोंको मारा और तीन करोड़ नागरिकोंको विभक्त करके दो पुरी बसायी। वहाँपर पूर्वसे ही अभिषिक्त पुष्करको राजगद्दीपर बिठाला। तदनन्तर कितने ही दासी-दास तथा स्त्री-पुत्रोंको साथ लेकर पुष्कर वहाँ रहने लगे ॥ १०१-१०४ ॥ इसके बाद भरतने तक्षको तक्षशिला नामकी नगरीमें अभिषिक्त करके बिठाला। यह सब काम करके भरत अयोध्या लौट आये और फिर पहलेकी तरह रामचन्द्रजीकी सेवा करने लगे। इसके बाद एक दिन प्रसन्न होकर रामने लक्ष्मणसे कहा—लक्ष्मण! तुम अपने दोनों पुत्रोंको साथ लेकर पश्चिम दिशाकी ओर जाओ। वहाँ सब लोगोंका अपकार करनेवाले दुष्ट मल्लोंको जीतकर अंगद तथा चित्रकेतु इन दोनों बेटोंको, जिनका अभिषेक मैं पहले हो कर चुका हूँ, वहाँकी गद्दीपर बिठाल दो। वहाँ दो पुरी बसाकर गज-वाजि तथा धनसे परिपूर्ण करके मेरे पास लौट आओ ॥ १०५-११० ॥ रामकी आज्ञा स्वीकार करके लक्ष्मण दोनों पुत्रोंको साथ लेकर बहुतेरी सेनाके साथ वहाँ पहुँचे और बातकी बातमें

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अवनीं जेतुमुद्युक्तो मुहूर्तं तानपृच्छत । ततस्तैर्गणकैर्दत्तो मुहूर्तः परमः शुभः ॥११४॥
तं श्रुत्वा तान् पुनः पूज्य सर्वान् रामो व्यसर्जयत् ।
ततो रामोऽब्रवीद्वाक्यं लक्ष्मणं पुरतः स्थितम् ॥११५॥
अवनिस्थान्नृपान् जेतुं सोऽहं गच्छामि पार्थिवैः । विमानेनैव गच्छामि सेनां चोदय सत्वरम् ॥११६॥
नानाशस्त्राणि यंत्राणि वाहनानि समंततः । स्थापयस्व विमानेऽद्य शतघ्न्यः शतशो वराः॥११७॥
धनधान्यतृणादीनां संग्रहं कुरु पुष्पके । पुरीं गोप्तुं सुमंत्रोऽस्तु सैन्येन परिवेष्टितः ॥११८॥
एवमाज्ञाप्य सौमित्रिं श्रीरामो जानकीगृहम् । ययौ चकार सौमित्रिर्यथा रामेण शिक्षितः ॥११९॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे पूर्वार्द्धे राज्यविभागो नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः

(रामकी भारतवर्षपर विजय)

श्रीरामदास उवाच

अथ रामो रहः सीतां स्वोद्योगमवदच्छनैः । अवनिस्थान्नृपान् जेतुं पुत्राभ्यां बन्धुभिर्नृपैः ॥ १ ॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा जानकी प्राह लज्जिता । नाहं त्वद्विरहं सोढुं समर्था रघुनन्दन ॥ २ ॥
त्वयाऽहमवनीं द्रष्टुं यास्यामि जगतां प्रभो । तथेत्युक्त्वा रघुश्रेष्ठो लालयामास जानकीम् ॥ ३ ॥
एतस्मिन्नन्तरे सर्वा उर्मिलाद्याः स्त्रियश्च ताः । कुशस्य च लवस्यापि पत्न्यः श्रुत्वाऽवनेर्जयम् ॥ ४ ॥
कर्तुं रामसमुद्योगं पुत्राभ्यां बन्धुभिर्नृपैः । जानकीं प्रार्थयामासुर्यास्यामोऽद्य त्वया सह ॥ ५ ॥
स्वस्वकांतवियोगं च सोढुं नैव क्षमा वयम् । सीता तासां वचः श्रुत्वा राघवं श्राव्य तद्वचः ॥ ६ ॥

शत्रुओंको परास्त करके गजाश्वपुरमें अङ्गदको तथा धनरत्नपुरमें चित्रकेतुको विठाल दिया और वहाँसे लौटकर लक्ष्मण फिर रामकी सेवामें लग गये । इसके अनन्तर रामने ज्योतिषियोंको बुलाकर उनकी पूजा की और पृथ्वीविजय करनेके लिए शुभ मुहूर्त पूछा । उन गणकोंने भी रामको बहुत ही बढ़िया मुहूर्त बताया ॥ १११-११४ ॥ मुहूर्त सुनकर रामने फिर उनकी पूजा की और विदा कर दिया । फिर रामने लक्ष्मणसे कहा–मैं पृथ्वीपर रहनेवाले समस्त राजाओंको जीतनेके लिए विमानसे यात्रा करूँगा । तुम जाकर सेनाको तैयार करके भेजो । विविध प्रकारके अस्त्र-शस्त्र और सैकड़ोंकी संख्यामें अच्छी-अच्छी तोपें लेकर मेरे विमानमें रखवाओ । खर्चके लिए धन-धान्य तथा घास आदिका ठीकसे प्रबन्ध करके पुष्पक विमानमें रखवा दो । अयोध्यापुरीकी रक्षाके लिए कुछ सेनाके साथ सुमन्त्र यहाँपर ही छोड़ दिये जायँगे ॥ ११५ ॥ ॥ ११६ ॥ इस प्रकार आज्ञा देकर राम अपने रनिवासमें चले गये और लक्ष्मण रामके आज्ञानुसार सेना आदिकी तैयारीमें लग गये ॥ ११७-११९ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेज-पाण्डेयविरचित'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासमन्विते राज्यकांडे पूर्वार्धे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

श्रीरामदास फिर कहने लगे–इसके पश्चात् राम एकान्तमें सीतासे बोले कि मैं अपने पुत्रों तथा बान्धवों-को साथ लेकर पृथ्वीके राजाओंको जीतनेके लिए जाऊँगा । इस प्रकारकी बात सुनी तो लज्जित होकर सीताने रामसे कहा–हे रघुनन्दन ! मैं आपका विरह नहीं सहन कर सकूँगी । मैं भी इस पृथ्वीतलको देखनेके लिए आपके साथ-साथ चलूँगी । रामने सीताकी माँग स्वीकार कर ली ॥१-३॥ यह खबर धीरे-धीरे उर्मिलादिक स्त्रियों तथा कुश-लव आदिकी पत्नियोंके पास पहुँची और उन्होंने सीतासे प्रार्थना की कि आप हमको भी अपने साथ ले चलें । हम भी अपने-अपने पतियोंका वियोग सहन करनेमें असमर्थ हैं । सीताने उनकी बातें सुनीं तो रामसे

CC-0. In Public Domain. Vinay Avasthi Sahib Bhuvan Vani Trust / Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

रामाज्ञया तदा सर्वास्तोषयन्ती वचोऽब्रवीत् । आगंतव्यं मया साकं युष्माभिर्निश्चयेन हि ॥ ७॥
गच्छध्वं स्वीयगेहानि सर्वास्तुष्टा गतज्वराः । एवं सीतावचः श्रुत्वा तदा ताः कंजलोचनाः ॥ ८॥
सीतां नत्वा ययुः सर्वाः सन्तुष्टा मुदिताननाः । स्वस्वगेहानि वेगेन रुक्मनूपुरनिःस्वनाः ॥ ९॥
अथ रामस्तु तां रात्रिं निनाय सीतया सुखम् । ब्राह्मे मुहूर्ते श्रुत्वा स वन्दिगीतं मनोरमम् ॥१०॥
रामः प्रबुद्धस्तु जवात्कृतशौचादिसत्क्रियः । स्नात्वा नित्यविधिं कृत्वा कृत्वा शंभोः प्रपूजनम् ११॥
कथां पौराणिकीं श्रुत्वा दत्त्वा दानान्यनेकशः । कृत्वोद्योगविधानं च संपूज्य गणनायकम् ॥१२॥
कृत्वाऽऽभ्युदयिकं श्राद्धं घृतश्राद्धं सविस्तरम् । कामधेनुं कल्पवृक्षं पुष्पकं च सुरद्रुमम् ॥१३॥
मणिद्वयं पृथक् पूज्य सर्वैः कृत्वा तु भोजनम् । धृत्वा वस्त्राणि शस्त्राणि बद्ध्वा मातॄः प्रणम्य च॥१४॥
ययौ स शिबिकारूढः पुष्पकं बन्धुभिर्नृपैः । पुत्राभ्यां सचिवैः सैन्यैः सेवकैर्वाहनादिभिः ॥१५॥
यानमारुरुहुः सर्वाः सीताद्यास्ताः स्त्रियः शुभाः ॥१६॥
कौसल्याद्या मातरश्च तस्थुर्याने यथासुखम् । यात्राकाण्डे यथा शिष्य विमानरचना पुरा ॥१७॥
ते वर्णिता मया तद्वदधुनाऽऽसीच्छुभा पुनः । तदा निनेदुर्वाद्यानि तष्टुवुर्मागधादयः ॥१८॥
ननृतुर्वारनार्यश्च नटा गानं प्रचक्रिरे । अथ रामोऽब्रवीद्यानं गच्छ पूर्वदिशं प्रति ॥१९॥
तथेत्युक्त्वा पुष्पकं तद्ययावाकाशवर्त्मना । नत्वा रामं सुमंत्रोऽपि तस्थौ पुर्यां यथासुखम् ॥२०॥
पूर्वदेशे नृपाः सर्वे श्रुत्वा रामं समागतम् । प्रत्युज्जग्मू राघवेंद्रं प्रबद्धकरसंपुटाः ॥२१॥
प्रणेमुस्ते रमानाथं नानोपायनपाणयः । पूजयामास श्रीरामं नीत्वा राज्यं निजं निजम् ॥२२॥
रामाज्ञया ससैन्याश्च तस्थुर्याने नृपोत्तमाः । स्वकोशादीनि रामाय समर्प्य स्थिरमानसाः ॥२३॥
मागधान् समतिक्रम्य विमानेन रघूत्तमः । पश्यन्नानाविधान् देशान् भूरिकीर्तेः पुरं ययौ ॥२४॥

सलाह की। फिर रामके आज्ञानुसार सीता सबको प्रसन्न करती हुई कहने लगीं--तुम लोग भी मेरे साथ चलो। अब कोई चिन्ता मत करो और अपने-अपने महलोंमें जाकर हमारे साथ चलनेकी तैयारी करो। इस तरह सीताकी बात सुनकर कमल सरीखे नेत्रोंवाली उन स्त्रियोंने सीताको प्रणाम किया और प्रसन्नतापूर्वक सुनहले नूपुरोंका झंकार करती हुई अपने महलोंको चली गयीं ॥३-९॥ तदनन्तर रामने सीताके साथ वह रात्रि सुखपूर्वक बितायी। ब्राह्म मुहूर्तमें उन्होंने बन्दीजनोंके मुखसे गीत सुना तो जागे। तब शीघ्र शौचादि क्रियायें कीं और स्नानादि नित्यकर्म करनेके पश्चात् शिवजीका विधिवत् पूजन किया ॥ १० । ११ ॥ बादमें पौराणिकी कथाएँ सुनीं, अनेक प्रकारके दान दिये और अनेक उपचारोंसे गणपतिकी पूजा की ॥ १२ ॥ तब आभ्युदयिक श्राद्ध तथा घृतश्राद्ध करके कामधेनु, कल्पवृक्ष, पुष्पक, पारिजात वृक्ष तथा दोनों मणियोंका पूजन किया। इसके बाद अपनी समस्त माताओंको प्रणाम करके कपड़े पहने, अनेक प्रकारके शस्त्र बाँधे और बन्धुओं तथा कितने ही राजाओंके साथ पालकीमें सवार होकर पुष्पक विमानके पास जा पहुँचे ॥ १३-१५ ॥ वहाँ अपने पुत्रों, मन्त्रियों, सेनाओं, सेवकों तथा वाहनों समेत विमानपर पहले सीतादि स्त्रियाँ और कौसल्यादि माताएँ सवार हुईं। रामदासने कहा–हे शिष्य ! यात्राकाण्डमें मैं जिस प्रकार यानकी रचना कह आया हूँ ॥ १६ ॥ १७ ॥ ठीक उसी तरह इस यानकी भी रचना थी। उनकी यात्राके समय अनेक प्रकारके बाजे बजे और मागध तथा बन्दीजनोंने स्तुति की, वेश्यायें नाचीं और गायकोंने गाने गाये। इसके अनन्तर रामने विमानको पूर्व दिशाकी ओर चलनेकी आज्ञा दी ॥ १८ ॥ १९ ॥ तब पुष्पक रामके आज्ञानुसार आकाशमार्गसे उड़ता हुआ चला। रामको प्रणाम करके सुमन्त्र अयोध्यापुरीमें आनन्दपूर्वक रहने लगे ॥ २० ॥ जब पूर्व देशके लोगोंने सुना कि राम आये हैं तो वहाँके बड़े-बड़े राजे हाथ जोड़कर उनके पास गये ॥ २१ ॥ सामने पहुँचकर उन्होंने भगवान्‌को प्रणाम किया और अनेक प्रकारकी भेंटें उनकी सेवामें उपस्थित कीं और विधिवत् पूजन किया ॥ २२ ॥ इसके बाद उन्होंने अपना समस्त कोश आदि रामको अर्पण कर दिया और उनकी आज्ञासे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तेनातिपूजितो रामः शनैर्यानेन दक्षिणाम् । ययावब्धितटेनैव द्राविडं देशमुत्तमम् ॥२५॥
कृष्णातीरप्रदेशांस्तान् पश्यन् रामः शनैः शनैः । कांतिं ययौ विमानेन कंबुकंठोऽपि राघवम् ॥२६॥
पूजयामास विधिवत्कोशाद्यैः सुहृदं निजम् । आरवारं महादेशं तथा तच्चोलमण्डलम् ॥२७॥
समतिक्रम्य श्रीरामस्तत्रस्थैः पूजितो नृपैः । ययौ स केरलान् देशानांध्रं कर्णाटकं ययौ ॥२८॥
पूजितो विजयेनापि विजयापुरवासिना । कोंकणस्थान्नृपान् जित्वा महाराष्ट्रं ययौ प्रभुः ॥२९॥
दुर्गं देवगिरिं नाम चकार स्ववशं क्षणात् । तथान्यान्यपि दुर्गाणि स्वाधीनान्यकरोद्विभुः ॥३०॥
कृत्वा विराटदेशं च देशान् विंध्याचलाश्रितान् । पश्यन् ययौ स रेवायास्तीरेणोंकारमीश्वरम् ॥३१॥
मालवस्थान्नृपान् जित्वा ययौ रामः स उज्जयाम् । उग्रबाहुं रणे जित्वा ययौ हैहयपत्तनम् ॥३२॥
जित्वा प्रतीपं श्रीरामः स ययौ हस्तिनापुरम् । एतस्मिन्नन्तरे सोमवंशजास्ते त्रयो नृपाः ॥३३॥
पुरूरवास्तथाऽगच्छच्चाल्पसैन्येन वै पुरात् । रामेण संगरं कर्तुं नानावाहनसंस्थितः ॥३४॥
ययुर्ववर्षुः शस्त्राणि पुष्पकस्थं रघूत्तमम् । युद्धं बभूव तैः साकं त्रिदिनं रोमहर्षणम् ॥३५॥
तदासीद्रक्तपूर्णा सा जाह्नवी पापनाशिनी । चतुर्थे दिवसे रामस्तान् जित्वा तत्पुरं ययौ ॥३६॥
सुषेणं वानराणां च वैद्यं वानरसेनया । गजाह्वये पुरे स्थाप्य तांस्त्रीन् सोमान्वयोद्भवान् ३७॥
कारागृहस्थितान् कृत्वा सुग्रीवाद्यै रघूत्तमः । ययौ स मथुरां द्रष्टुं सुबाहुपरिपालिताम् ॥३८॥
दृष्ट्वा सुबाहुं राज्यस्थं विदिशानगरं ययौ । यूपकेतुं तत्र दृष्ट्वा राज्यस्थं तेन वन्दितः ॥३९॥
कुरुक्षेत्रं पुष्करं च दृष्ट्वा रामो विहायसा । मरुं च समतिक्रम्य ययौ गुर्जरमुत्तमम् ॥४०॥
प्रभासं च ततो गत्वा मल्लदेशं ययौ ततः । गजाश्वनगरे दृष्ट्वांगदं राज्यपदस्थितम् ॥४१॥
धनरत्नैश्चित्रकेतुं दृष्ट्वा राज्यपदस्थितम् । आनर्तं स ययौ रामस्तत्रस्थैः परिपूजितः ॥४२॥

अपनी सेनाके साथ पुष्पके विमानपर सवार होकर रामके साथ-साथ चले ॥ २३ ॥ मगध देशको लाँघकर राम रास्तेके अनेक देशोंको देखते हुए भूरिकीर्ति नामके राजाकी राजधानीमें पहुँचे ॥ २४ ॥ उनसे पूजित होकर विमान द्वारा धीरे-धीरे दक्षिण दिशाको चले और समुद्रतटसे चलकर द्रविड़ देशमें जा पहुँचे ॥ २५ ॥ कृष्णा नदीके आस-पासवाले देशोंको देखते हुए राम कांतिदेशमें जा पहुँचे। वहाँ कम्बुकण्ठ नामके राजाने उनका आदर-सत्कार किया और फिर वहाँसे आरवार महादेश और चोलदेशको लाँघकर ॥ २६ ॥ २७ ॥ वहाँके राजाओंसे पूजित होते हुए केरल देशको गये। वहाँ विजयपुरमें रहनेवाले विजय नामके राजासे पूजित होकर कोंकणदेशमें रहनेवाले राजाओंको परास्त करके महाराष्ट्रमें पहुँचे ॥ २८ ॥ २९ ॥ वहाँ देवगिरि नामके किलेको क्षणभरमें अपने अधीन करके और भी बहुतसे किलोंको अपने कब्जेमें कर लिया ॥ ३० ॥ इसके अनन्तर विराट देशमें जाकर विंध्याचलके आस-पासवाले देशोंको देखते हुए रेवातटसे ओंकारेश्वर पहुँचे। वहाँ मालव देशके राजाओंको जीतकर उज्जयिनी गये। वहाँपर राजा उग्रबाहुको जीतकर हैहयनगरमें गये ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ उसके समीपवर्ती राजाओंको जीतकर श्रीरामचन्द्र हस्तिनापुरी पहुँचे। तभी सोमवंशी तीन राजे तथा पुरुरवा नामक राजा थोड़ीसी सेना लेकर रामचन्द्रसे युद्ध करनेके लिए आ पहुँचा ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ वहाँ पहुँचते ही पुष्पक विमानपर बैठे हुए रामके ऊपर उन लोगोंने शस्त्रोंकी वर्षा प्रारम्भ कर दी। तब उनके साथ रामने तीन दिन तक लोमहर्षण युद्ध किया। उस समय जाह्नवी रक्तसे पूर्ण हो गयी थी। चौथे दिन रामने उनको परास्त करके उनकी पुरीपर अधिकार कर लिया ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ हस्तिनापुरीमें वानरोंके वैद्य सुषेणको गद्दीपर बिठाकर सोमवंशी राजाओंको जेलमें ठूँस दिया और वहाँसे सुबाहु-परिपालित मथुरा पुरीको देखनेके लिए गये ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ सुबाहुको राज्यगद्दीपर आसीन देखकर विदिशा नगरीको गये। वहाँ यूपकेतुने रामका विधिवत् आदर-सत्कार किया। वहाँसे कुरुक्षेत्र-पुष्कर आदि तीर्थोंको देखकर आकाशमार्गसे रामचन्द्रजी मरुदेशको लाँघते हुए गुजरात गये ॥ ३९ ॥ ४० ॥ फिर प्रभासक्षेत्र जाकर मल्लदेश गये। वहाँ गजाश्वपुरमें अङ्गदको राज्यासनपर देखकर धनरत्न नामक नगरके राज्यासनपर बैठे हुए चित्रकेतुको देखा।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रययौ पुष्करं द्रष्टुं राज्यस्थं पुष्करावतीम् । ततो रामो विमानेन ययौ तक्षशिलाह्वये ॥४३॥
तक्षं दृष्ट्वा पदस्थं तं ययौ भरतमातुलम् । युधाजिता पूजितः स रामो राजीवलोचनः ॥४४॥
ययौ विहायसा शीघ्रं शकदेशं मनोरमम् । जित्वा यवनदेशस्थान्नृपान् सर्वान् रघूत्तमः ॥४५॥
पश्यन्नानाविधान् देशांस्ताम्रदेशं ययौ ततः । ततो मायापुरीं गत्वा कलापग्राममाययौ ॥४६॥
नरनारायणौ दृष्ट्वा चोपास्यौ रघुनन्दनः । उपासकं नारदं च वर्षे भारतसंज्ञके ॥४७॥
तान्नत्वाऽर्च्य रघुश्रेष्ठस्तत्रस्थैः परिपूजितः । भारतेशं रणे हत्वा तत्पदे स्थाप्य स्वानुगम् ॥४८॥
भारतं पृष्ठतः कृत्वा पुण्यदेशं मनोरमम् । योजनानां सहस्रैश्च नवभिः परिविस्तृतम् ॥४९॥
अग्रे ददर्श श्रीरामो हिमालयमहाचलम् । योजनानां सहस्राभ्यां रम्यं विपुलमुत्तमम् ॥५०॥
त्रिसप्ततिसहस्रैश्च दीर्घः प्रोक्तस्तु योजनैः । तत्र नानाकौतुकानि ददर्श रघुनन्दनः ॥
दर्शयामास वैदेह्यै विमानस्थो मुदान्वितः ॥५१॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे पूर्वार्धे भारतवर्षजयो नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः

(रामद्वारा जम्बूद्वीप-विजय)

श्रीरामदास उवाच

अथ ह स किंपुरुषं नाम वर्षं नवसहस्रयोजनविस्तीर्णं स्वीयानादिसिद्धराममूर्तिदेवतोपास्य-विराजमानपवनसुतोपासकमधिष्ठितमुपजगाम ॥ १ ॥ तत्र ह वाव दर्शितनाकौतुकस्तद्वर्षनृप-समूहपरिवेष्टितः पुष्पकसमधिष्ठितो नववाद्यस्वनपुरःसरः पुरतोऽनुससार ॥ २ ॥ अथ हेमकूट नाम पर्वतमतिकमनीयं द्विसहस्रयोजनविपुलमेकाशीतिसहस्रयोजनदीर्घं नानाधातुविराजितं समुन्नत-

---

इसके बाद आनर्त देशको गये । वहाँवालोंने रामका अच्छी तरह सत्कार किया ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ वहाँसे पुष्करावती-के राज्यासनपर बैठे हुए पुष्करको देखने गये । फिर तक्षशिलाकी राजधानीमें सिंहासनपर बैठे हुए तक्षको देख-कर भरतके ननिहाल गये । वहाँ पहुँचनेपर राजा युधाजित्ने रामका पूजन किया ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ इसके बाद आकाशमार्गसे सुन्दर शकदेशको गये । वहाँ यवनदेशमें रहनेवाले राजाओंको जीतकर अनेक प्रकारके देशोंको देखते हुए ताम्रदेशको गये । फिर मायापुरी होते हुए कलापग्रामको गये ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ वहाँ सबके उपास्य नर-नारायणका दर्शन करके नारदका दर्शन किया । फिर भारतसंज्ञक देशमें गये । वहाँ संग्राम करके भारतनरेशको मार डाला और अपने किसी सेवकको वहाँका राजा बनाकर नौ हजार योजन विस्तृत पुण्यदेश (पूना) को गये ॥ ४७–४९ ॥ इसके अनन्तर महापर्वत हिमालयके पास गये, जो एक हजार योजन है । वहाँ रामने अनेक प्रकारके कौतुक देखे । फिर विमानपरसे ही सीताको भी वहाँका कौतुक दिखाया ॥ ५० ॥ ५१ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेय-विरचित "ज्योत्स्ना" भाषाटीकासमन्विते राज्यकाण्डे पूर्वार्द्धे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—इसके अनन्तर राम नौ हजार योजन विस्तृत किम्पुरुष नामक देशको गये । जहाँ बहुतसे देवताओं तथा हनुमान्जीकी मूर्तिके साथ रामकी अनादि मूर्ति स्थापित थी ॥ १ ॥ उस देशमें अनेक प्रकारके कौतुक देखते हुए वहाँके राजाओंसे परिवेष्टित होकर पुष्पक विमानपर बैठे बैठे आगे बढ़े ॥ २ ॥ जाते-जाते अतिशय कमनीय हेमकूट पर्वत पर पहुँचे, जो दो हजार योजन विस्तृत

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

शिखरविराजमानं पुष्पकसमधिष्ठितो रघुनाथ उपजगाम ॥ ३ ॥ अथ तृतीयं वर्षं नाम नवसहस्रयोजनपरिमितं नृसिंहोपास्यप्रह्लादोपासकविराजमानमतिकमनीयं दशरथतनयः समनुययौ ॥ ४ ॥ तद्वर्षवासिनृपवरवृन्दतुमुलसंग्रामसम्पादितजयश्रीरिपुकोशादिपूजितनृपदयितारार्तिकनीराजितजनकजादर्शितमानकौतुकध्वजपताकातोरणघंटाकिंकिणीविराजमानपुष्पकसमधिष्ठितः श्रीरघुनन्दन उपजगाम ॥ ५ ॥ अथ निषधं नाम पर्वतं द्विसहस्रयोजनविपुलं नवतिसहस्रयोजनदीर्घमतिकमनीयं स रघुनन्दनो नयनगोचरं चकार ॥ ६ ॥ अथ सुवर्णाद्रिसमंततश्चतुर्दिक्षु समानमानमिलावृतं नाम चतुर्थं वर्षं चतुस्त्रिंशत्सहस्रयोजनपरिमितं स रघुनायक उपजगाम ॥ ७ ॥ तत्र ह वाव मेरोराश्रयभूते मेरोर्दक्षणदिक्स्थिते मेरुमंदरपर्वतेऽतिविराजमाने समुन्नतजंबूवृक्षमतिविशालं जंबूद्वीपाख्यसूचकं सफलमपूर्वमतिकमनीयं स रामचंद्रोऽवनिदुहित्रे दर्शयामास ॥ ८ ॥

ततो मेरुपश्चिमतो मेरोराश्रयभूते सुपार्श्वपर्वते विराजमानकदंबवृक्षमतिसमुन्नतमतिविपुलमतिकमनीयं पुष्परंजितं स रघुनायको नेत्रविषयं चकार ॥ ९ ॥ अथ मेरोरुत्तरतस्तस्याश्रयभूते कुमुदनाम्नि पर्वते विराजमानमतिसमुन्नतं वटवृक्षमतिविशालमतिस्थूलं स कौसल्यानंदनो नृपसमूहविराजितो जनकजायै दर्शयामास ॥ १० ॥ अथ मेरुपूर्वतस्तस्याश्रयभूते मंदरपर्वते विराजमानमतिविशालमतिसमुन्नतमतिस्थूलं सहकारवृक्षमतिकमनीयं सुपक्वमधुरघटतुल्यफलभारविनम्रं पश्यन्स रघुवंशभूषणो जनकजाजानिः ॥ ११ ॥ तत्रेलावृते विराजमानसंकर्षणोपास्यरुद्रोपासकं स रघुनायको दयितासहायः शिरसा प्रणनाम ॥ १२ ॥ तद्वर्षवासिनृपप्रबद्धकरकमलशिरोवंदितपदजलरुहद्वंद्वः स रघुनायकः पूर्वदिशमनुजगाम ॥ १३ ॥ अथ स गंधमादनपर्वतं द्विसहस्रयोजनविपुलं चतुस्त्रिंशत्सहस्रयोजनदीर्घं नयनगोचरं चकार ॥ १४ ॥ अथ भद्राश्वं नाम पंचमं वर्षमेकत्रिंशत्सहस्रयोजनदीर्घं हयग्रीवोपास्यभद्राश्वोपासकसमधिष्ठितं स रघुनायक उपजगाम ॥ १५ ॥ तत्र क्वचित्संग्रामस्तद्वर्षविराजमाननृपसमूहेभ्यः क्वचिच्छरणागतप्रबद्धकरयुगलावनिपतिभ्यः स्वकरभारान्लभमानः स

तथा इक्यासी हजार योजन लम्बा था, जिसपर अनेक प्रकारकी धातुयें विद्यमान् थीं। जिसके ऊँचे-ऊँचे शिखर आकाशसे बातें कर रहे थे ॥ ३ ॥ उसके आगे तीसरे देशमें गये, जो नृसिंह भगवान्के भक्त प्रह्लादका बसाया हुआ था ॥ ४ ॥ उस देशके राजाओंसे तुमुल संग्राम करके राम विजयश्री लाभ करते हुए शत्रुओंकी सम्पत्ति अपने अधीन करके सीताको मार्गमें विविध प्रकारके कौतुक दिखाते हुए कितने ही ध्वजा, पताका, तोरण, घंटा और किंकिणीसे सुशोभित पुष्पकविमानपर बैठे हुए आगे बढ़े ॥ ५ ॥ इसके अनन्तर दो हजार योजन विस्तृत तथा नौ हजार योजन लम्बे अति सुन्दर निषध पर्वतपर पहुँचे ॥ ६ ॥ उसके आगे चारों ओर सुवर्ण-पर्वतोंसे परिवेष्ठित इलावृत नामक चतुर्थ देशमें गये। जो चौवालिस हजार योजन लम्बा-चौड़ा था ॥ ७ ॥ वहाँ सीताको सुमेरु पर्वतके दक्षिण ओर खूब ऊँचे और अतिशय विशाल जम्बूद्वीपको सूचित करनेवाले एक बड़े भारी जामुनके वृक्षको दिखाया ॥ ८ ॥ इसके अनन्तर पश्चिमकी ओर सुपार्श्व पर्वतपर बड़े भारी कदम्ब वृक्षको देखा, जो बहुत ऊँचा और फूलोंसे लदा हुआ था ॥ ९ ॥ इसके अनन्तर मेरुके उत्तर ओर कुमुद नामक पर्वतपर अतिशय विशाल सर्वस्थूल एक वटवृक्ष सीताको दिखाया ॥ १० ॥ मेरुके उत्तर ओर उसके पासवाले मंदर पर्वतपर स्थित खूब लम्बे चौड़े, खूब पके तथा घड़ेके बराबर फलोंसे लदे एक आम्रवृक्षको देखा ॥ ११ ॥ उस इलावृतमें बलरामजीके पूज्य रुद्रभगवान्को सीताके साथ रामने प्रणाम किया ॥ १२ ॥ उस देशके निवासी राजाओंने हाथ जोड़कर रामको प्रणाम किया और राम वहाँसे आगे पूर्व दिशाकी ओर बढ़े ॥ १३ ॥ तदनन्तर वे गन्धमादन पर्वतपर पहुँचे, जो दो हजार योजन चौड़ा तथा चौंतीस हजार योजन लम्बा था ॥ १४ ॥ तदनन्तर भद्राश्व नामक पाँचवें देशमें पहुँचे, जो एकतीस हजार योजन लम्बा था और वहाँ हयग्रीवके उपास्य भद्राश्व भगवान् रहते थे ॥ १५ ॥ उस देशके बहुतसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जनकजाजानिरुपययौ परिवृत्य पश्चिमामिमुखः ॥ १६ ॥ अथ मेरोः पश्चिमदिक्स्थितं माल्यवंतं पर्वतं द्विसहस्रयोजनविस्तीर्णं चतुस्त्रिंशत्सहस्रयोजनदीर्घमतिकमनीयं स जनकजारञ्जनो नयनगोचरं चकार ॥ १७ ॥ तत्पश्चिमतः केतुमालं नाम षष्ठं वर्षं एकत्रिंशत्सहस्रयोजनविस्तीर्णं चतुस्त्रिंशत्सहस्रयोजनदीर्घं कामदेवोपास्यलक्ष्म्युपासिकासमधिष्ठितमनोहरं स रामचन्द्रोऽनुजगाम ॥ १८ ॥ तद्वर्षनृपसमूहमुकुटावंतसपरागपूजितचरणाविंदयुगलः स रघुकुलदीपकः सीतया पुष्पकस्थोऽतिमुदमवाप ॥ १९ ॥ अथ मेरोरुत्तरतः स नीलपर्वतं द्विसहस्रयोजनविस्तीर्णं नवतिसहस्रयोजनदीर्घं रघुकुलतिलको नयनविषयं चकार ॥ २० ॥ अथ रम्यकं नाम सप्तमं वर्षं नवसहस्रयोजनपरिमितं मत्स्योपास्यमनूपासकविमानमधिष्ठितः स रघुनन्दन उपजगाम ॥ २१ ॥ तत्रस्थैरवनिपालैः स्वकोशादिपूजितः स रघुनायकः सीतां रञ्जयन् पुरतोऽनुससार ॥ २२ ॥ तस्योत्तरतः श्वेतपर्वतं द्विसहस्रयोजनविस्तीर्णमेकाशीतिसहस्रयोजनदीर्घमतिकमनीयं स स्वलोचनविषयं चकार ॥ २३ ॥ अथ हिरण्मयं नामाष्टमं वर्षं नवसहस्रयोजनपरिमितं कूर्मोपास्यार्यमोपासकमधिष्ठितमतिकमनीयं स समनुययौ ॥ २४ ॥ तद्वर्षवासिनृपदयिताशिरोभूषणमणितेजोदीपितजानकीचरणारविंदयुगलमीक्षमाणः स रघुनन्दनो मुदमवाप ॥ २५ ॥ तस्योत्तरतः शृङ्गवन्तं पर्वतं द्विसहस्रयोजनविस्तीर्णं त्रिसप्ततिसहस्रयोजनदीर्घं स रघुनन्दनो ददर्श ॥ २६ ॥ अथोत्तकुरुवर्षं नवमं नवसहस्रयोजनपरिमितं वाराहोपास्यभूम्युपासिकासमधिष्ठितमनोहरं स रामचंद्रस्तमनुययौ ॥ २७ ॥ तद्वर्षचारिरणत्कंपितावयवनृपमहावतंसमणिमुक्ताविराजितपदजलरुहद्वंद्वः स रघुनायको मुदमवाप ॥ २८ ॥ अथ रामो लवं जम्बूद्वीपपतिं करिष्यामीति निश्चित्य कियद्दिनं तदधिकारे विजयं नाम स्वमन्त्रिणं स्थापयामास ॥ २९ ॥ एतेषां जम्बूद्वीपांतर्गतवर्षाणां तथा सर्वद्वीपांतर्गतवर्षाणां यानि यानि नामानि

राजाओंके साथ रामने संग्राम किया और वहुतोंको शरणमें आ जानेपर क्षमा प्रदान किया। तदनन्तर सबसे कर लेते हुए वहाँसे लौटकर पश्चिम दिशाकी ओर बढ़े ॥ १६ ॥ इसके बाद मेरु पर्वतके पश्चिम माल्यवान् पर्वतपर पहुँचे, जो दो हजार योजन विस्तृत तथा चौंतीस हजार योजना लम्बा था ॥ १७ ॥ इसके आगे केतुमाल नामक छठें देशमें पहुँचे, जो इकतीस हजार योजन विस्तृत एवं चौंतीस हजार योजन लम्बा था और वहाँ कामदेवकी उपासिकाएँ रहती थीं ॥ १८ । जब उस देशके राजाओंने अपना मुकुटविभूषित मस्तक रामचन्द्रजीके चरणोंपर रख दिया तो सीता तथा रामको बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ १६ ॥ फिर मेरु पर्वतके उत्तर ओर विराजमान नील पर्वतको देखा, जो दो हजार योजन विस्तृत तया नब्बे हजार योजन लम्वा था ॥ २० ॥ इसके अनन्तर रमणक नामके सातवें देशमें पहुँचे, जो नौ हजार योजन विस्तृत था। वहाँ मत्स्यभगवान्‌के बहुतसे उपासक लोग रहा करते थे ॥ २१ ॥ वहांके राजाओंने अपना कोश आदि देकर रामकी पूजा की और रघुनाथजी सीताको प्रसन्न करते हुए आगे बढ़े ॥ २२ ॥ उसके उत्तर ओर रामने श्वेत पर्वतको देखा, जो दो हजार योजन विस्तृत तथा इक्यासी हजार योजन लम्बा था ॥ २३ ॥ इसके बाद हिरण्मय नामके आठवें देशमें पहुँचे, जहाँ अधिकांश कूर्म भगवान् तथा सूर्य नारायणके उपासक लोग रहा करते थे ॥ २४ ॥ उस देशके राजाओंकी स्त्रियोंने जब जानकीके चरणोंमें मस्तक रखकर प्रणाम किया तो रामचन्द्रजोको बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ २५ ॥ उसके उत्तर दो हजार योजन विस्तृत तथा तिहत्तर हजार योजन लम्बे शृङ्गवान् नामक पर्वतको देखा ॥ २६ ॥ इसके अनन्तर नवें देश उत्तर कुरुमें पहुँचे, जो हजार योजन लम्बा-चौड़ा था। वहाँ विशेष करके वाराह भगवान्‌के उपासक तथा भूमिकी उपासिका स्त्रियाँ रहा करती थीं ॥ २७ ॥ जब उस देशके राजे संग्रामभूमिमें भयसे काँपकर रामके चरणोमें लोट गये, तब रामको बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ २८ ॥ इसके बाद रामने जम्बूद्वीपके राजाको मार डाला और मनमें यह निश्चय किया कि यहाँसे लौटकर अयोध्या पहुँचनेपर लवको जम्बूद्वीपका अधिपति बनाऊँगा। तबतक कुछ दिनोंके लिए अपने विजय नामके मन्त्रीको वहाँकी देख-भाल करनेके लिए छोड़ दिया ॥ २९ ॥ जम्बूद्वीपके अन्तर्गत जितने राज्य थे, वे सब प्रियव्रत नामक राजाके पौत्रोंके नामसे प्रसिद्ध

CC0. In Public Domain. Vipin Kumar Sharma Najafgarh Delhi Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तानि प्रियव्रतनृपपौत्रनामसूचितानि सन्ति । तेषु ये ये नृपा जायंते ते तद्वर्षनामसूचिता एव भवंत्यतः सर्वेषां पृथक् नामानि मयाऽत्र नोच्यंते ॥ ३० ॥ एवं जम्बूद्वीपमायामविस्ताराभ्यां लक्षयोजनपरिमितमतिक्रमनीयं समवर्तुलं पुष्करपत्रोपमं नववर्षमण्डितं स रघुनायकः स्ववशं चकार ॥ ३१ ॥ मेरुपर्वताग्रेऽष्टपुर्योऽष्टदिक्पालानां संति । तत्पालकाः सुराधीशवह्नियमनिर्ऋतिवरुणवायु-कुबेरेशास्ते सर्वे ममाज्ञां परिपालयंत्विति निश्चित्य स रघुनायकस्तान् प्रति जगाम ॥ ३२ ॥ ता अष्टपुर्यः पृथक् पृथक् सार्धद्विसहस्रयोजनपरिमाणेनायामविस्तारतो ज्ञातव्याः ॥ ३३ ॥ मेरुर्लक्षयोजनमुन्नतो मूर्ध्नि द्वात्रिंशत्सहस्रयोजनविततो मूले षोडशसहस्रयोजनविततश्चाधः षोडश-सहस्रयोजनमितो भूम्यां प्रविष्टश्चतुरशीतिसहस्रयोजनमितो भूम्या बहिर्धत्तूरपुष्पवद्दृश्यते ॥ ३४ ॥ तत्र मेरुपर्वताग्रेऽष्टदिक्पालपुरीणां मध्ये ब्रह्मपुरी दशसहस्रयोजनायामविस्तारतो ज्ञातव्या ॥ ३५ ॥ सर्वे वर्षमर्यादीभूताष्टपर्वता दशसहस्रयोजनसमुन्नता ज्ञातव्याः ॥ ३६ ॥ वर्षदीर्घता पर्वतसमाना ज्ञातव्या ॥ ३७ ॥ जम्बूद्वीपस्योपद्वीपानष्टौ हैक उपदिशंति ॥ ३८ ॥ सगरात्मजरथान्वेषण इमां महीं परितो निखनद्भिरुपकल्पितान् ॥ ३९ ॥ तद्यथा स्वर्णप्रस्थः चन्द्रशुक्ल आवर्तनो रमणकः मंदरहरिणः पाञ्चजन्य सिंहलो लङ्का चेति ॥ ४० ॥ तेषु लंकां विना सप्तसु यदा यद्यत्समीपं तदा तत्र तत्र गत्वा तत्रस्थानुपद्वीपपालकान् श्रीरामचन्द्रः स्ववशांश्चकार ॥ ४१ ॥ भारतेला-वृतवर्षाभ्यां विना सप्तसु वर्षेष्वसंख्याता नद्यो गिरयश्च संति । तेषां विस्तारं को वक्तुं क्षमः ॥४२॥ अथेलावृतसंस्थिता मुख्यनद्य एवोच्यंते ॥ ४३ ॥ अरुणोदाजंबुनदीपयोदधिघृतमधुगुडान्नांबर-शय्यासनाभरणसंज्ञा नदास्तदा पञ्च मधुधारानद्यस्तथा सीताऽलकनंदाचक्षुर्भद्रेति मेरोरधश्चतुर्दिक्षु पतिता जाह्नवीभेदाश्चत्वार एवमिलावृतनद्यः ॥ ४४ ॥ तासु सीता पूर्वसमुद्रं चक्षुर्भद्रा पश्चिमसमुद्रं भद्रोत्तरसमुद्रमलकनंदा दक्षिणस्यां दिशि भारते वर्षे जलनिधिं प्रविशति ॥ ४५ ॥ भारतेऽस्मिन्

थे । जहाँका जो राजा था, उसीके नामसे वह राज्य विख्यात था । इसीलिये सबका अलग-अलग नाम मैं नहीं बतला रहा हूँ ॥ ३० ॥ इस प्रकार एक लाख योजन लम्बे-चौड़े, अतिशय सुन्दर एवं वर्तुलाकार कमल-पत्रके समान विराजमान जम्बूद्वीपको उन्होंने जीत लिया ॥ ३१ ॥ मेरुपर्वतके आगे आठ लोकपालोंको आठ पुरियाँ हैं । वे सब भी मेरी आज्ञाका पालन करें । इसी विचारसे रामचन्द्रजी आगे बढ़े ॥ ३२ ॥ वे आठों पुरियाँ अलग-अलग अढ़ाई-अढ़ाई हजार योजन लम्बी-चौड़ी हैं । मेरु पर्वत एक लाख योजन उँचा है और उसकी चोटीपर बत्तीस हजार योजन लम्बा-चौड़ा मैदान है । नीचे सोलह हजार योजन विस्तार है और सोलह ही हजार योजन वह पृथ्वीके भीतर समाया हुआ है । चौरासी हजार योजनकी लम्बाई-चौड़ाईवाला वह पर्वत धतूरके फूलकी तरह दीखता है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ मेरु पर्वतके आगे पूर्वोक्त आठ पूरियोंमें ब्रह्मपुरीकी लंबाई-चौड़ाई विस्तारमें ठीक दस हजार योजन है ॥ ३५ ॥ जिन-जिन पर्वतोंपर वे आठों पुरियाँ हैं, वे प्रत्येक पर्वत दस-दस दजार योजन ऊँचे हैं ॥ ३६ ॥ प्रत्येक पुरीका विस्तार पर्वतके विस्तारकी तरह ही समझना चाहिए ॥३७॥ जंबूद्वीपके भी आठ उपद्वीप हैं ॥३८॥ जिस समय महाराज सगरके साठ हजार पुत्र समुद्रको खोद रहे थे, तब उन्होंने ही इन द्वीपोंकी रचना की थी ॥ ३९ ॥ उन आठों द्वीपोंके नाम इस प्रकार हैं—स्वर्णप्रस्थ, चंद्रशुक्ल, आवर्त, रमणक, मन्दरहरिण, पांचजन्य, सिंहल और लङ्का ॥ ४० ॥ इनमेंसे लङ्काको छोड़कर शेष सब द्वीपोंमें जाकर वहाँके राजाओंको रामने अपने वशमें कर लिया ॥ ४१ ॥ भारत और इलावर्तको छोड़कर सातों देशोंमें असंख्य पर्वत और नदियाँ हैं, जिनका विस्तार बतलानेमें कोई समर्थ नहीं है ॥ ४२ ॥ इलावृत द्वीपमें जो मुख्य-मुख्य नदियाँ हैं, उन्हें ही हम बतलाते हैं । वे हैं—॥ ४३ ॥ अरुणोदा, जंबुनदी, दूध, घी, मधु, गुड़, अन्न, वस्त्र, शय्या, आसन और आभरणसंज्ञक नदियाँ हैं । इनमें पाँच नदियाँ तो ऐसी हैं, जिनमें सदा मधुकी धारा बहती रहती है । मेरु पर्वतसे सीता, अलकनन्दा, मधु, भद्रा तथा जाह्नवी ये पाँच नदियाँ निकली हैं

CC-0. In Public Domain. Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वर्षे सरिच्छैलाः सन्ति बहवः ॥ ४६ ॥ तद्यथा मलयो मंगलप्रस्थो मैनाकस्त्रिकूटः ऋषभः कुटकः सह्यो देवगिरिर्ऋष्यमूकः श्रीशैलो वेंकटो महेंद्रो वारिधरो विंध्यः शक्तिमानृक्षगिरिः पारियात्रो द्रोणश्चित्रकूटो गोवर्धनो रैवतकः ककुभो नीलो गोकामुख इन्द्रकीलः कामगिरिश्चेत्यन्ये च शतसहस्रशः शैलास्तेषां नितंबप्रभवा नदा नद्यश्च संत्यसंख्याताः ॥ ४७ ॥ चंद्रवशा ताम्रपर्णी अवटोदा कृतमाला वैहायसी कावेरी वेणी पयस्विनी शर्करावर्ता तुंगभद्रा कृष्णा वेणा भीमरथी निर्विन्ध्या पयोष्णी तापी मही सुरसा नर्मदा चर्मण्वती सिंधुः शोणश्च नदौ महानदी वेदस्मृतिः ऋषिकुल्या त्रिसामा कौशिकी मंदाकिनी यमुना सरस्वती दृषद्वती गोमती सरयू रोधस्वती सप्तवती सुषोमा शतद्रुश्चन्द्रभागा मरुधन्वा वितस्ता असिक्नी विश्वेति महानद्यः ॥ ४८ ॥ एवं शिष्य रघुनायको नायकः सोपद्वीपं जम्बुद्वीपं स्ववशं कृत्वा लक्षयोजनविस्तीर्णं जंबूद्वीपपरिखोपमं समुल्लंघ्य पुष्पकस्थः प्लक्षं नाम द्वितीयं द्वीपं ददर्श ॥ ४९ ॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानंदरामायणे वाल्मीकीये राज्यकांडे पूर्वार्धे जंबूद्वीपजयो नामाष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः

(राम द्वारा प्लक्षादि छः द्वीपोंकी विजय)

श्रीरामदास उवाच

अथ रामो ययौ श्रीमान् प्लक्षद्वीपं मनोरमम् । द्विलक्षयोजनमितं सप्तवर्षसमन्वितम् ॥ १ ॥
उपास्यो यत्र वै सूर्यो ब्राह्मणाश्च ह्युपासकाः । द्वीपाख्याकृच्च यत्रास्ति प्लक्षवृक्षो हिरण्मयः ॥ २ ॥
यथाऽऽरामाद्बहिर्ज्ञेयाः परिखाश्च समंततः । जंबूद्वीपाच्च क्षारोदाद्बहिर्द्वीपस्तथा त्वयम् ॥ ३ ॥

॥ ४४ ॥ उनमेंसे सीता पूर्व समुद्रमें; चक्षुर्भद्रा पश्चिम समुद्रमें और अलकनन्दा दक्षिण समुद्रमें जाकर मिलती है ॥ ४५ ॥ भारतवर्षमें भी बहुत-सी नदियाँ और पर्वत हैं ॥ ४६ ॥ मलय, मंगलप्रस्थ, मैनाक, त्रिकूट, ऋषभ, कुटक, सह्य, देवगिरि, ऋष्यमूक, श्रीशैल, बेंकट, महेन्द्र, वारिधर, विन्ध्य, शक्तिमान्, ऋक्षगिरि, पारियात्र, द्रोण, चित्रकूट, गोवर्धन, रैवतक, ककुभ, नील, गोकामुख, इन्द्रकील और कामगिरि ये पर्वत हैं। इनके अतिरिक्त और भी बहुत-से पर्वत हैं, जिनकी तलैटीसे बहुतसे नद और नदियाँ निकली हैं। जैसे—॥ ४७ ॥ चन्द्रवशा, ताम्रपर्णी, अवटोदा, कृतमाला, वैहायसी, काबेरी, बेणी, पयस्विनी, शर्करावती, तुङ्गभद्रा, कृष्णा, वेणा, भीमरथी, गोदावरी, निर्विन्ध्या, तापी, मही, सुरसा, नर्मदा, चर्मण्वती। सिंधु और शोण ये दोनों महानद हैं। वेदस्मृति, ऋषिकुल्या, त्रिसामा, कौशिकी, मन्दाकिनी, यमुना, सरस्वती, दृषद्वती, गोमती, सरयू, रोधस्वती, सप्तवती, सुषोमा, शतद्रु, चन्द्रभागा, मरुधन्वा, वितस्ता, असिक्नी और विश्वा ये महानदियाँ हैं ॥ ४८ ॥ हे शिष्य ! इस प्रकार उपद्वीपों समेत जम्बुद्वीपको अपने वशमें करके राम एक लाख योजन विस्तृत लवणसमुद्र, जो कि जम्बूद्वीपको खाईंके समान था, उसे पार करके पुष्पक विमान द्वारा प्लक्ष नामके एक दूसरे द्वीपमें जा पहुँचे ॥ ४९ ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपांडेयविरचित'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासमन्विते आनन्दरामायणे राज्यकांडे पूर्वार्धे अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

श्रीरामदासने कहा—इसके बाद श्रीमान् रामचन्द्र अतिशय मनोरम प्लक्षद्वीपको गये, जो दो लाख योजन विस्तृत था और उसमें सात देश थे ॥ १ ॥ वहाँ सबके आराध्य देवता सूर्य और देवाराधक ब्राह्मण थे। वहाँ सुवर्णका एक बड़ा-सा प्लक्ष (पाकड़) का वृक्ष था और उस प्लक्षके ही कारण उसका प्लक्षद्वीप नाम पड़ा था ॥ २ ॥ जिस तरह किसी बगीचेके चारों ओर खाई बना दी जाय, ठीक उसी तरह उसको चारों ओरसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मेरोः पूर्वदिशायां वै तत्र वर्षं शिवाह्वयम् । आदौ ययौ रामचन्द्रः क्षणादेव विहायसा ॥ ४ ॥
नदी यत्रारुणा नाम्नी सर्वपापप्रणाशिनी । तस्यां स्नात्वा रघुश्रेष्ठः शीघ्रं तद्वर्षपं ययौ ॥ ५ ॥
तेन वर्षाधिपेनैव युद्धमासीत्सुदारुणम् । तं जित्वा पञ्चमासैश्च तैश्च पार्थिवसत्तमैः ॥ ६ ॥
पूजितो रघुनाथस्तु वज्रकूटाचलं ययौ । वज्रकूटं महाश्रेष्ठं द्वयोः सागरयोः स्थितम् ॥ ७ ॥
परस्परं वर्षयोश्च सीमाभूतं ददर्श सः । तं गिरिं पृष्ठतः कृत्वा वर्षं यवयसं ययौ ॥ ८ ॥
नृम्णानदीजले स्नात्वा ययौ यावयसेश्वरम् । तेन संपूजितो रामस्ततस्तद्वर्षपार्थिवैः ॥ ९ ॥
सहितः पुष्पकेनैवमुपेंद्रसेनपर्वतम् । दृष्ट्वा कृत्वा पृष्ठतस्तं सुभद्रं वर्षमाययौ ॥१०॥
आंगीरसीनदीतोये स्नात्वा स रघुनायकः । वर्षाधिपेन कोशैः संपूजितः पार्थिवैः सह ॥११॥
ज्योतिष्मन्तं गिरिं गत्वा तं कृत्वा पृष्ठतः क्षणात् । शांतिवर्षेऽथ सावित्रीनदीतोये विगाह्य च ॥१२॥
तद्वर्षेशं नृपं जित्वा तथा तद्वर्षसंस्थितान् । नृपान् जित्वा क्षणादेव सुवर्णपर्वतं ययौ ॥१३॥
ततो गत्वा क्षेमवर्षं सुप्रभातानदीजले । स्नात्वा रामः क्षेमपेन स्वकोशैः परिपूजितः ॥१४॥
हिरण्यष्ठीवनामानं गिरिं रम्यं विलंघ्य च । वर्षेऽमृते तन्नृपेण पार्थिवैः परिपूजितः ॥१५॥
ऋतंभरानदीतोये चकार स्नानमादरात् । मेघमालं गिरिं त्यक्त्वा पृष्ठतः पुष्पकेण हि ॥१६॥
वर्षेऽभये तन्नृपतिं क्षणाज्जित्वा रणे प्रभुः । सत्यंभरानदीतोये स्नात्वा स रघुसत्तमः ॥१७॥
सुचंद्राख्यं नृपं प्लक्षद्वीपेशं तीक्ष्णसंगरैः । कृत्वा वै स्वपदाक्रान्तं तेन तद्द्वीपपार्थिवैः ॥१८॥
मणिकूटं गिरिवरं समतिक्रम्य वै क्षणात् । इक्षूरसोदनामानं द्विलक्षयोजनं वरम् ॥१९॥
तीर्त्वा तं सागरं भीमं प्लक्षस्य परिखोपमम् । तथा च शाल्मलीद्वीपं चतुर्लक्षमितं ययौ ॥२०॥
द्वीपाख्याकृच्च यत्रास्ति शाल्मली द्वीपपादपः । यत्रोपास्यश्च सोमोऽस्ति तत्रस्थास्तदुपासकाः ॥२१॥
विस्तारद्वीपमानानि दीर्घतायाः स्मृतानि च । तत्र क्रमेण वर्षाणि कथ्यंते पूर्ववन्मया ॥२२॥

लवण-समुद्र घेरे हुए था ॥ ३ ॥ मेरुपर्वतकी पूर्व ओर प्लक्षद्वीपमें शिवजीके नामका एक देश था। रामचन्द्रजी क्षणमात्रमें आकशमार्गसे वहाँ पहुँचे ॥ ४ ॥ वहांपर सब पापोंका नाश करनेवाली अरुणा नदी बहती थी। जिसमें उन्होंने स्नान किया और उस देशके राजाके पास गये ॥ ५ ॥ उस राजाके साथ रामका भयङ्कर युद्ध छिड़ गया। पाँच महीनेतक घमासान युद्ध होनेके पश्चात् वहाँका राजा रामके वशमें आ गया और उसने उनकी पूजा की ॥ ६ ॥ फिर वहाँसे वज्रकूटाचलपर गये। वह पर्वत दो सागरोंके बीचमें स्थित होकर दोनों देशोंकी सीमाका काम कर रहा था। उसको लाँघकर यवयस नामक देशको गये ॥ ७ ॥ ८ ॥ वहाँ उन्होंने नृम्णा नदीमें स्नान किया और यवयस देशवाले राजाके पास गये। उसने रामकी पूजा की। इसके बाद रामने वहाँके भी बहुतसे राजाओंको अपने पुष्पक विमानपर बिठा लिया और आगे उपेन्द्रसेन नामक पर्वतपर पहुँचे। उसे देखकर वे सुभद्र देशको गये ॥ ९ ॥ १० ॥ वहाँ आंगिरसी नदीमें स्नान करनेके पश्चात् वहाँके राजासे मिले। उसने बहुतसे धनका व्यय करके रामचन्द्र तथा उनके साथवाले राजाओंका सत्कार किया ॥ ११ ॥ फिर ज्योतिष्मान् नामक पर्वतको लाँघकर वे शान्तिदेशको गये। वहाँ सावित्री नदीमें स्नान करके उस देशके राजाको परास्त किया और उसके आगे सुवर्ण पर्वतपर गये। वहाँसे क्षेमदेशमें पहुँचे। वहाँ रामने सुप्रभाता नामकी नदीमें स्नान किया और क्षेमदेशके राजाने रामका विधिवत् पूजन किया ॥ १२–१५ ॥ इसके अनन्तर ऋतंभरा नदीमें स्नान करके मेघमाल नामके पर्वतको लाँघते हुए राम अभय देशमें पहुँचे। वहाँके राजाको क्षणमात्रमें जीतकर सत्यंभरा नदीमें स्नान किया। फिर सुचन्द्र नामक राजा, जो प्लक्षद्वीपका शासक था, उसे भयानक युद्धमें हराकर वहाँके बहुत-से राजाओंको अपने साथ लेकर इक्षुरसोद नामके भयंकर समुद्रको पार किया। वह प्लक्षद्वीपकी खाईके समान दो लाख योजन विस्तृत था। वहाँसे चलकर शाल्मली द्वीपमें पहुँचे, जो चार लाख योजन विस्तृत था ॥ १६–२० ॥ वहाँ एक विशालका शाल्मली (सेमर) का

CC0. In Public Domain. Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मेरोः पूर्वदिगारभ्य सर्वत्र क्रम उच्यते । सुरोचनं सौमनस्यं तथा रमणकं शुभम् ॥२३॥
देववर्षं पारिभद्रनामाप्यायनमप्युत्तमम् । अविज्ञातं सप्तमं च सप्त वर्षाणि वै क्रमात् ॥२४॥
अनूमती सिनीवाली तथैव च सरस्वती । कुहूश्च रजनी नन्दा राका नद्यः प्रकीर्तिताः ॥२५॥
शतशृंगो वामदेवो कुंदश्च कुमुदस्तथा । पुष्पवर्षः पञ्चमश्च सहस्रश्रुतिरुत्तमः ॥२६॥
स्वरसः पर्वताः सप्त ज्ञेयाः सीमासु वै क्रमात् । एतेषु सप्तवर्षेषु वर्षपालान् विजित्य सः ॥२७॥
जित्वा द्वीपेश्वरं रामः सुबाहुं मुदमाययौ । सुरोदं च चतुर्लक्षमितं तीर्त्वा पयोनिधिम् ॥२८॥
कुशद्वीपमष्टलक्षमितं रामो ययौ क्षणात् । तत्रोपास्यो जातवेदाः सर्वेषां द्वीपवासिनाम् ॥२९॥
द्वीपाख्याकृच्च यत्रास्ति कुशस्तंबः सुरैः कृतः । तत्र क्रमेण वर्षाणि कीर्त्यंते सप्त वै मया ३०॥
वसुं च वसुदानं च तथा दृढरुचिं शुभम् । नाभिगुप्तं तथा सत्यव्रतं विविक्तमुत्तमम् ॥३१॥
वामदेवं सप्तमं च वर्षं ज्ञेयं क्रमेण हि । रसकुल्या मधुकुल्या मित्रविंदा नदी शुभा ॥३२॥
श्रुतिविंदा देवगर्भा तथा चैव घृतच्युता । मंत्रमाला क्रमेणैव नद्यः सप्तसु वै क्रमात् ॥३३॥
चतुःशृङ्गश्च कपिलश्चित्रकूटो मनोरमः । देवानीक ऊर्ध्वरोमा द्रविणश्चक्र ईरितः ॥३४॥
एते सीमासु वर्षाणां गिरयः सप्त वै क्रमात् । एतेषु सप्तवर्षेषु संस्थितान्पार्थिवोत्तमान् ॥३५॥
राघवः संगरे जित्वा लब्ध्वा चानुत्तमं यशः । कुशद्वीपपतिं जित्वा महासेनं तुतोष सः ॥३६॥
अष्टलक्षमितं तीर्त्वा घृतोदं सागरोत्तमम् । क्रौंचद्वीपं ययौ रामः पुष्पकेणातिभास्वता ॥३७॥
कुशद्वीपाच्च स ज्ञेयो द्विगुणो द्वीप उत्तमः । द्वीपाख्याकृच्च यत्रास्ति क्रौञ्चनामा गिरिर्महान् ॥३८॥
यत्रोपास्योऽम्मयो देवो हरिस्तद्द्वीपवासिनाम् । तत्रापि सप्त वर्षाणि कथ्यंतेऽत्र क्रमेण हि ॥३९॥
आमं मधुरुहं मेघपृष्ठं चैव मनोहरम् । सुधामानं च भ्राजिष्ठं लोहितार्णं वनस्पतिम् ॥४०॥

वृक्ष था। इसीलिए वह देश शाल्मली द्वीपके नामसे विख्यात था। वहाँ चन्द्रदेव सबके आराध्य देवता हैं और वहाँके निवासी चन्द्रमाकी ही उपासना करते हैं। पीछे जिन द्वीपोंका जो विस्तार कह आये हैं, उन्हींके अनुसार वह भी विस्तृत था। वहाँके जो देश हैं, अब उनको बतलाता हूँ ॥ २१ ॥ २२ ॥ मेरुके पूर्व ओरसे लेकर क्रमशः सब देशोंका नाम कहूँगा। जैसे—सुरोचन, सौमनस्य, रमणक, देववर्ष, पारिभद्र, आप्यायन और अविज्ञात ये सात देश उस द्वीपमें हैं ॥ २३ ॥ २४ ॥ वहाँपर अनूमती, सिनीवाली, सरस्वती, कुहू, रजनी, नन्दा और राका ये नदियाँ हैं ॥ २५ ॥ शतशृङ्ग, वामदेव, कुन्द, कुमुद, पुष्पवर्ष, सहस्रश्रुति और स्वरस ये उस देशके सात पर्वत हैं, जो उसकी सीमाका काम कर रहे हैं। इन सातों देशोंके राजाओंको रामने जीत लिया ॥ २६ ॥ २७ ॥ इसके अनन्तर उस द्वीपके अधीश्वरको जीतकर चार लाख योजनके लगभग लम्बे-चौड़े सुरासमुद्रको लांघकर वे सुबाहुके पास पहुँचे ॥ २८ ॥ फिर क्षणमात्रमें राम आठ लाख योजन विस्तृत समुद्रको लांघकर कुशद्वीप गये। उस द्वीपके समस्त निवासी अग्निके उपासक हैं ॥ २९ ॥ द्वीपके नामको स्पष्ट करनेके लिए वहाँपर एक कुशका जंगल देवताओं द्वारा लगाया हुआ है। अब वहाँके जो सात देश हैं, उनको बतलाते हैं—॥ ३० ॥ वसु, वसुदान, दृढ़रुचि, नाभिगुप्त, सत्यव्रत, विविक्त और सातवाँ वामदेव नामक देश है। उन सातों देशोंमें रसकुल्या, मधुकुल्या, मित्रविन्दा, श्रुतिविन्दा, देवगर्भा, घृतच्युता तथा मन्त्रमाला ये सात नदियां हैं। चतुःशृङ्ग, कपिल, चित्रकूट, देवानीक, ऊर्ध्वरोमा, द्रविण और चक्र ये सात पर्वत उस द्वीपमें हैं ॥ ३१–३४ ॥ इन सातों देशोंके राजाओंको रामने जीतकर कुशद्वीपके अधिपति महासेन नामक राजाको भी उन्होंने जीत लिया। इससे रामको प्रसन्नता हुई ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ फिर आठ लाख योजन विशाल घृतोद नामके सागरको पार करके वे अपने देदीप्यमान पुष्पक विमान द्वारा क्रौञ्चद्वीप गये ॥ ३७ ॥ कुशद्वीपकी अपेक्षा यह द्वीप दुगुना लम्बा-चौड़ा है। वहाँ उस द्वीपका नाम सार्थक करनेके लिये एक विशाल क्रौञ्च पर्वत है ॥ ३८ ॥ वहाँके समस्त निवासी वरुणके उपासक हैं और विष्णुभगवान्

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

एतानि सप्त वर्षाणि ज्ञातव्यान्युत्तमानि हि । वर्द्धमानो भोजनश्च तथोपबर्हणो महान् ॥४१॥
नन्दश्च नन्दनश्रेष्ठः सर्वतोभद्र एव च । शुक्ला सप्ताचलाः प्रोक्ता सीमासु परमाः शुभाः ४२॥
अमृता अमृतौघा च तथा चैवार्यका शुभा । तथा तीर्थवती रम्या वृत्तिरूपवती तथा ॥४३॥
पवित्रवती सुपुण्या वै शुक्लेति सप्त कीर्तिताः । सप्तवर्षेषु नद्यश्च स्नानात्पातकनाशनाः ॥४४॥
एतेषु सप्तवर्षेषु पार्थिवेभ्यो निजं प्रभुः । करभारं पृथग्लब्ध्वा तैः सर्वैः परिपूजितः ॥४५॥
क्रौंचद्वीपपतिं युद्धे जित्वा तं कञ्जलोचनम् । हस्त्युष्ट्ररथतुरगैः कोशाद्यैस्तेन पूजितः ॥४६॥
स्तुतो मागधवर्यैश्च नितरां मुदमाप सः । ततस्तीर्त्वा तु क्षीरोदं क्रौंचद्वीपसमं मुदा ॥४७॥
शाकद्वीपं ययौ रामो द्वात्रिंशल्लक्षसंमितम् । द्वीपाख्याकृच्च यत्रास्ति शाकवृक्षोऽतिरञ्जनः॥४८॥
यत्रोपास्यो वायुरूपी हरिस्तद्द्वीपवासिनाम् । तत्रापि सप्त वर्षाणि कथ्यंते पूर्ववन्मया ॥४९॥
पुरोजवं नाम वर्षं तथा तच्च मनोजवम् । पवमानं महच्छ्रेष्ठं धूम्रानीकं मनो मम् ॥५०॥
बहुरूपं चित्ररूपं विश्वाधारं तथा स्मृतम् । एवं सप्तसु वर्षेषु नद्यश्चापि ब्रवीम्यहम् ॥५१॥
अनघा च तथाऽऽयुर्दा चोभयसृष्टिरेव च । तथाऽपराजिता पुण्या शुभा पञ्चपदी स्मृता ॥५२॥
सहस्रश्रुतिरन्या सा प्रोक्ता निजधृतिस्तथा । एवं सप्तसु वर्षेषु सप्त नद्यः शुभावहाः ॥५३॥
उरुशृङ्गो बलभद्रस्तथान्यः शतकेसरः । सहस्रस्रोतोऽन्यः प्रोक्तो देवपालो महानसः ॥५४॥
ईशानाः पर्वताः सप्त सीमास्वेते प्रकीर्तिताः । एवं सप्तसु वर्षेषु तत्र तत्र नृपोत्तमैः ॥५५॥
पूजितो रघुनाथः स शाकद्वीपपतिं रणे । सुन्दराख्यं नृपं युद्धे सप्ताहोभिर्महाबलम् ॥५६॥
जित्वा संपूजितस्तेन वादयामास दुन्दुभीम् । तीर्त्वा तं दधिमंडोदं द्वात्रिंशल्लक्षसंमितम् ॥५७॥
चतुःषष्टिलक्षमितं पुष्करद्वीपमाययौ । मेखलावत्तस्य मध्ये पर्वतं कंकणोपमम् ॥५८॥
मानसोत्तराचलाख्यं तं ददर्श रघूद्वहः । द्वे वर्षे तत्र वै प्रोक्ते पूर्वं रमणकं शुभम् ॥५९॥

वहाँके देवता हैं । उस द्वीपमें भी बड़े-बड़े सात देश हैं । उन्हें बतलाते हैं—॥ ३९ ॥ आम, मधुरुह, मेघपृष्ठ, सुधामा, भ्राजिष्ठ, लोहितार्ण और वनस्पति ॥ ४० ॥ ये हो क्रौंचद्वीपके सात देश हैं । वर्धमान, भोजन, उपबर्हण, नन्द, नन्दन, सर्वतोभद्र और शुक्ल ये सात विशाल पर्वत चारों ओरसे उस द्वीपको घेरे हुए हैं ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ अमृता, अमृतौघा, आर्यका, तीर्थवती, वृत्तिरूपवती, पवित्रवती और पुण्या ये पवित्र नदियाँ उन सातों देशोंमें बहती हैं । जिनमें स्नान करनेसे समस्त पातक नष्ट हो जाते हैं ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ इन सातों देशोंके राजाओंसे रामने अलग-अलग कर लिया और उन राजाओंने रामकी पूजा की ॥ ४५ ॥ तदनन्तर रामने क्रौंचद्वीपके अधीश्वरको संग्रामभूमिमें परास्त किया और उससे बहुतेरे हाथी, घोड़े, रथ, ऊँट आदिका उपहार पाकर पूजित हुए ॥ ४६ ॥ वहाँपर वन्दीजनोंने रामकी स्तुति की, जिससे रामचन्द्रजी परम प्रसन्न हुए । इसके बाद क्षीरोदनामक समुद्रको पार करके क्रौञ्चद्वीपके समान ही बत्तीस लाख योजनके लगभग विस्तृत शाकद्वीपमें गये । जहाँपर द्वीपके नामको चरितार्थ करनेवाला एक बड़ा भारी शाकवृक्ष है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ वहाँपर वायुरूप धारण करनेवाले विष्णुभगवान्‌के उपासक रहते हैं । वहाँ भी सात देश हैं, जिन्हें कह रहा हूँ—॥ ४९ ॥ पुरोजव, मनोजव, पवमान, धूम्रानीक, चित्ररूप, बहुरूप और विश्वाधार ये ही सात देश हैं । अनघा, आयुर्दा, उभयदृष्टि, अपराजिता, पञ्चपदी सहस्रश्रुति तथा निजधृति ये नदियाँ उन सातों देशोंमें बहती हैं । उरुशृङ्ग, बलभद्र, शतकेसर, सहस्रस्रोत, देवपाल, महानस और ईशान ये सात पर्वत उन देशोंको सीमापर स्थित हैं । उन सातों देशोंके राजाओंने रामकी पूजाकी और सुन्दरनामक शाकद्वीपके अधीश्वरको उन्होंने सात दिन पर्यन्त युद्ध करके हरा दिया ॥ ५०-५६ ॥ इसके बाद उसने भी रामकी पूजा की । रामके इस सुकृत्यसे प्रसन्न होकर देवताओंने दुन्दुभी बजायी । तत्पश्चात् राम बत्तीस लाख योजन विस्तृत दधिमण्डोद नामक समुद्रको पार करके चौंसठ लाख योजन विस्तृत पुष्करद्वीपमें पहुँचे । जिसके मध्यमें मेखलाके समान मानसाचल

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अपरं तद्धातकीत्याख्यातं ते कंकणोपमम् । तद्वर्षपौ नृपौ जित्वा ततो द्वीपेश्वरं नृपम् । ६०॥
उत्तरांगाह्वयं रामः परां मुदमवाप सः । ददर्श पुष्करं तत्र द्वीपाख्याकारकं वरम् ॥६१॥
कमलासनस्य यज्ज्ञेयं ब्रह्मणः परमासनम् । तत्र कर्ममयं लिंगं ब्रह्मलिंगं जनोऽर्चयत् ॥६२।
वर्षयोर्बहुला नद्यः पापनिष्कृंतनक्षमाः । दशसाहस्रमानेन प्रांशुर्ज्ञेयः स पर्वतः ॥६३॥
तस्मिन् गिरौ पूर्वभागे पुरी मघवतः शुभा । देवधानीति नाम्ना सा मनोज्ञा ज्वलनप्रभा ॥६४॥
गिरौ तस्मिन् दक्षिणस्यां दिशि संयमनी पुरी । यमराजस्य सा ज्ञेया मनोज्ञा ज्वलनप्रभा ॥६५॥
पश्चिमे वरुणस्याथ पुरी निम्लोचनी स्मृता । उत्तरस्यां तु कौबेरी पुरी ख्याता विभावरी ॥६६॥
भिन्नाः पुर्यस्त्विमा ज्ञेया मेरुस्थाश्यःशुभावहाः । यथा नृपस्य स्थानानि ह्यनेकानि तथा त्विमाः ॥
सर्वे सीमापर्वतास्ते विस्तीर्णाश्च पृथक् स्मृताः । द्विसहस्रयोजनैश्च प्रोच्चतां ते वदाम्यहम् ॥६८॥
सर्वेषां दशसाहस्रैर्योजनैः प्रोच्चतेरिता । ततस्तीर्त्वा तु शुद्धोदं पुष्करद्वीपसंमितम् ॥६९॥
सीतायाः कौतुकार्थं हि स जगाम रघूत्तमः । उद्धारार्थं स्वावलोकात्तत्रस्थानां नृणामपि ॥७०॥

ततोऽग्रे भूमिं सार्धसप्तलक्षोत्तरसार्द्धकोटि (१५७५००००) परिमितां क्वचित् प्राणिसहितां रघुनन्दनो ददर्श ॥ ७१ ॥ तैः सर्वभूमिनिवासिभिः संपूजितो रघुनन्दनो मैथिलीरंजनार्थमग्रे जगाम ॥ ७२ ॥ सैकचत्वारिंशत्सहस्रसप्तलक्षोत्तरं सार्द्धकोटि (१५७४१०००) योजनपरिमितं मेरुमानसोत्तराचलयोरंतराले मानं ज्ञातव्यम् ॥ ७३ ॥ ततोऽग्रे आदर्शतलोपमां कांचनीं भूमिं देवैरधिष्ठितां चैकोनचत्वारिंशल्लक्षोत्तरकोट्यष्ट (८३९०००००) परिमितां दृष्ट्वा देवैः संपूजितः श्रीरामचन्द्रो मुदमवाप ॥ ७४ ॥ ततोऽग्रे लोकालोकपर्वतं सार्द्धद्वादशकोटि (१२५०००००) परिमितं विस्तीर्णोन्नतया भूमिप्राकारोपमं केनाप्यविलंध्यं स रघुनन्दनो ददर्श ॥ ७५ ॥ यस्मिन्नष्टदिक्षु द्विरदपतयः ऋषभः पुंडरीकः पुष्करचूडः कुमुदो वामनः पुष्पदंतोऽपराजितः सुप्रतीक इत्यष्टौ दिग्गजाः

पर्वत विद्यमान है, उसे रामने देखा। उस द्वीपमें दो प्रधान देश हैं—पहला रमणक देश और दूसरा घातकी। ये दोनों देश उस द्वीपके कङ्कणके समान हैं। रामने उन देशोंके राजाओं तथा पुष्करद्वीपके स्वामी उत्तरांगको जीत लिया, जिससे उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। इसके अनन्तर उस द्वीपके नामको सार्थक करनेवाले पुष्कर सरोवरको देखा॥ ५७–६१ ॥ वह सरोवर ब्रह्माका एक विशेष आसन है। यहाँपर कर्ममय ब्रह्माकी मूर्तिको लोग पूजते हैं॥ ६२ ॥ उन दोनों देशोंमें पापको नष्ट करनेमें समर्थ बहुत-सी नदियाँ बहती हैं। वह पर्वत दस हजार योजनके लगभग ऊँचा है। उसपर पूर्वकी ओर इन्द्रकी देवघानीपुरी है। पश्चिम ओर वरुणकी निम्लोचनी नामकी पुरी है। उत्तर ओर कुबेरकी अलकापुरी है॥ ६३–६६ ॥ मेरु पर्वतपर देवताओंकी जो पुरियाँ हैं, उनके अतिरिक्त इन्हें समझना चाहिए। जैसे राजाके एक नहीं, अनेक स्थान होते हैं, उसी तरह इनके विषयमें भी जानना चाहिए ॥ ६७ ॥ उसके आस-पास जितने सीमापर्वत हैं। वे सब अलग-अलग दो-दो हजार योजन ऊँचे हैं। इस तरह सब मिलाकर दस हजार योजन उनकी उँचाई है। इसके बाद रामचन्द्रजी शुद्धोद नामक समुद्रको पार करके सीताके कौतुक या यह कहिये कि उस द्वीपके निवासियोंको अपने दर्शनोंसे कृतार्थ करनेके लिये आगे बढ़े॥ ६८–७० ॥ डेढ़ करोड़ साढ़े सात लाख योजन विस्तृत भूभाग जहाँ कहीं-कहीं मनुष्योंकी आबादी थी, उस देशको देखा ॥७१॥ वहाँके निवासियोंने सीतारामकी पूजा की और ये लोग आगे बढ़े॥ ७२ ॥ मेरु और मानसोत्तराचलके बीचमें डेढ़ करोड़ साढ़े सात लाख एकतालीस हजार योजन परिमित अन्तराल है। इसके अनन्तर रामने शाशेके समान चमकती कांचनमयी भूमि देखी, जहाँ कि देवतालोग रहते हैं। जिसका विस्तार आठ करोड़ उनतालिस लाख योजन है। वहांके भी निवासियोंने रामकी पूजा की और वे प्रसन्न हुए। इसके अनन्तर साढ़े बारह करोड़ योजन परिमित विस्तीर्ण तथा ऊँचे लोकालोक नामक पर्वतको देखा, जिसे कि आजतक कोई नहीं लाँघ सका है॥ ७३–७५ ॥ जहाँकी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सकललोकस्थितिहेतवः ॥ ७६ ॥ तस्मिन्नेव गिरिवरे भगवान् परममहापुरुषो महाविभूतिपतिः सकललोकहिताय आस्ते ॥ ७७ ॥ ततः परस्ताद्योगेश्वरगतिं विशुद्धामुदाहरन्ति ॥ ७८ ॥ एवं पञ्चाशत्कोटिगुणितो भूगोलको ज्ञेयः ॥ ७९ ॥ एवं पञ्चविंशतिकोटिमितां भूमिं लोकालोकमध्यवर्तिनीं स रघुनन्दनः स्ववशां कृत्वाऽऽकाशपथा परिवर्त्य सर्वान् द्वीपान् पूर्ववत्पश्यन् जंबुद्वीपे भारतवर्षमध्यगतां स्वां राजधानीमयोध्यां सप्तद्वीपनृपपरिवेष्टितोऽनुययौ ॥ ८० ॥ ततो रामोऽयोध्यानिकटं गत्वा दूतैः स्वागमनं सुमंत्रं सूचयामास ॥ ८१ ॥

सम्प्रायातं रामचन्द्रं श्रुत्वा स मंत्रिसत्तमः । अयोध्यां भूषयामास पताकाध्वजतोरणैः ॥८२॥
वारणेन्द्रं पुरस्कृत्य पौरैर्जानपदैः सह । प्रत्युद्गम्य रामचन्द्रं नत्वाऽयोध्यां निनाय सः॥८३॥
तदा निनेदुर्वाद्यानि ननृतुश्चाप्सरोगणाः । तुष्टुवुर्मागधाद्याश्च नटा गानं प्रचक्रिरे ॥८४॥
रामागमनमाकर्ण्य पौरनार्यः सुभूषिताः । प्रासादशिखरारूढा ववर्षुः पुष्पवृष्टिभिः ॥८५॥
राजद्वारं विमानेन शनैः स रघुनन्दनः । गृह्णन् पौरोपायनानि स्त्रीभिर्नीराजितः पथि ॥८६॥
ययौ यानादवरुह्य सभायां निज आसने । तस्थौ समन्ततः सर्वैर्नृपैश्च परिवेष्टितः ॥८७॥
ततः स्थलानि सर्वेषां वस्तुमाज्ञाप्य लक्ष्मणम् । दधिश्राद्धादि सम्पाद्य कृतकार्यममन्यत ॥८८॥
आत्मानं सकलान्पृथ्वीस्थितान् जित्वा समुद्धतान् । ततस्तैः सप्तद्वीपस्थैः पार्थिवैः परिपूजितः ॥८९॥
रामः स्वभ्रातरं विप्रैर्भरतं भारताधिपम् । चकार पार्थिवैर्युक्तो लक्ष्मणानुमतेन सः ॥९०॥
आदावेव वसिष्ठेन ह्युक्तं भरतनाम तत् । विचिंत्येदं भावि वृत्तं जातकर्मणि निश्चितम् ॥९१॥
पूर्वमाज्ञापितं स्वीयसेवकं भरतस्य च । रक्षणे तं रामचन्द्रः कार्यान्तरमकल्पयत् ॥९२॥

आठों दिशाओंमें ऋषभ, पुण्डरीक, पुष्करचूड, कुमुद, वामन, पुष्पदन्त, अपराजित और सुप्रतीक ये सभी लोकोंको अपने सिरपर धारण करनेवाले आठ दिग्गज विद्यमान हैं ॥ ७६ ॥ उसी पर्वतके ऊपर परममहापुरुष और महाविभूतिपति भगवान् समस्त संसारके हितकी कामनासे रहा करते हैं ॥ ७७ ॥ इसके आगे विशुद्ध योगेश्वरोंकी ही गति है, ऐसा लोग कहते हैं ॥ ७८ ॥ इस प्रकार सब मिलाकर पचास करोड़गुना विस्तृत भूगोल है। उनमेंसे पचीसको अपने वशमें करके राम आकाशमार्गसे लौटकर रास्तेके विविध द्वीपोंको देखते हुए जम्बुद्वीपके भारतवर्षस्थ अयोध्या नामकी अपनी राजधानीमें सातों द्वीपोंके राजाओंके साथ वापस आये ॥७९—८१॥ अयोध्याके समीप पहुँचकर रामने एक दूत द्वारा सुमन्त्रको अपने आगमनकी सूचना दी। सुमंत्रने रामका आगमन सुना तो पताका, ध्वजा तथा तोरणादिकसे अयोध्याको सुसज्जित करवाया ॥ ८२ ॥ फिर एक बड़े भारी हाथीको आगे करके पुरवासी जनोंके साथ रामके समक्ष पहुँचे और उन्हें प्रणाम करके अयोध्या लाये ॥ ८३ ॥ उस समय अनेक प्रकारके बजे बाजे, अप्सराएँ नाचीं, गायकोंने गाने गाये और बन्दीजनोंने स्तुति की ॥ ८४ ॥ रामका आगमन सुनकर अयोध्याकी स्त्रियाँ भाँति-भाँतिके वस्त्राभूषण पहनकर अपने कोठोंपर चढ़ गयीं और वहाँसे फूलोंकी वर्षा करने लगीं ॥ ८५ ॥ रामचन्द्रजी धीरे-धीरे पुरवासियोंकी भेटें स्वीकार करते हुए पुष्पक विमान द्वारा अपने राजद्वारपर पहुँचे। रास्तेमें स्त्रियोंने रामकी आरती उतारी ॥ ८६ ॥ राजद्वारपर पहुँचे तो पुष्पक विमानसे उतरकर सभाभवनमें गये और अपने सिंहासनपर बैठे। उनके साथ जो राजे आये थे, वे भी सिंहासनके चारों ओर बैठ गये ॥ ८७ ॥ इसके अनन्तर सब मेहमानोंको ठहरनेके लिए स्थान बतलानेके निमित्त लक्ष्मणसे कहकर राम दधिश्राद्धादि कार्योंमें लग गये। इस प्रकार पृथ्वीपर रहनेवाले उद्धत राजाओंको परास्त करके रामने अपनेको कृतकृत्य समझा। इसके अनन्तर उन सातों द्वीपोंके राजाओंने फिरसे रामकी पूजा की ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ तदनन्तर लक्ष्मणसे सलाह लेकर रामने भरतको भारतवर्षका अधिपति बना दिया ॥ ९० ॥ इस भावी बातको सोचकर ही वसिष्ठने भरतका नाम भरत रक्खा था ॥ ९१ ॥ पहले जिस सेवककी रामचन्द्रजीने भारत देशकी रक्षाके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जंबूद्वीपतिं रामश्चकार स्वसुतं लवम् । लवोऽपि विजयं स्वीयसचिवं चाकरोन्मुदा ॥९३॥
नवस्वपि च वर्षेषु यातायातं पुनः पुनः । चकार विजयेनैव पुनः कार्यार्थमादरात् ॥९४॥
शत्रुघ्नो यौवराज्ये स्वे भरतेनाभिषेचितः । यौवराज्यपदे स्वीये कृत्वा रामः कुशं सुतम् ॥९५॥
चकार लक्ष्मणं मुख्यं सचिवेषु सुमन्त्रिणम् । सप्तद्वीपपतिः श्रीमान्स्वयमासीद्रघूत्तमः ॥९६॥
स्वस्वकार्येषु सर्वे ते ह्यासन् तत्परमानसाः । ततः सर्वान्नृपान्पूज्य ददावाज्ञां रघूद्वहः ॥९७॥
ततस्ते राघवं दत्त्वा ययुः स्वं स्वं स्थलं मुदा । ततो भारतवर्षस्य परामर्शं सदा मुदा ॥९८॥
चकार भरतः श्रीमान् भरताधिपतिः प्रभुः । जंबूद्वीपपरामर्शं स चकार लवस्तथा ॥९९॥
सप्तद्वीपपरामर्शं रामचन्द्रः कुशेन च । लक्ष्मणेन सहैवापि स्वयमेवाकरोत्प्रभुः ॥१००॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे पूर्वार्द्धे कुशादिषड्द्वीपविजयदर्शनं नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

दशमः सर्गः

(रामका संन्यासी, शूद्र तथा गृध्रको दण्डदान)

श्रीरामदास उवाच

एकदा राघवः सारमेयदीर्घरवं मुहुः । राजद्वाराद्बहिः श्रुत्वा सभास्थो दूतमब्रवीत् ॥१॥
कथं दीर्घस्वरेणैव श्वाऽद्य क्रोशति पश्यताम् । तथेति रामदूतोऽपि गत्वा राजसभाबहिः ॥२॥
न्यवारयत्सारमेयं राजद्वारात्स्वधर्षणैः । रामं नत्वाऽब्रवीद्वाक्यं तूष्णीं श्वा क्रोशति प्रभो ॥३॥
मया निवारितो दूरं गतः स रावणांतक । ततो द्वितीयदिवसे तच्छब्दान् राघवोऽशृणोत् ॥४॥
दूतेन पूर्ववच्चापि सारमेयो निवारितः । ततस्तृतीये दिवसे तद्रावानशृणोत्प्रभुः ॥५॥
तदातिचकितः प्राह लक्ष्मणं पुरतः स्थितम् । श्वाऽयं दिनत्रयं बन्धो कथं क्रोशति संततम् ॥६॥

लिए नियुक्त किया था, उसे दूसरे काममें लगा दिया ॥ ९२ ॥ इसके अनन्तर अपने लव नामक बेटेको जंबूद्वीपका अधिपति बनाया । लवने विजय नामके उस सेवकको मंत्री बना लिया, जिसे कि रामचन्द्रजीने कुछ दिन तक भरतखण्डकी देखभाल करनेके लिए नियुक्त किया था ॥ ९३ ॥ लव विजयके साथ कार्यवश नवों द्वीपोंमें बराबर आया-जाया करते थे ॥ ९४ ॥ भरतने अपनी जगह शत्रुघ्नका युवराजपदपर अभिषेक कर दिया । रामने कुशको युवराजके पदपर अभिषिक्त करके लक्ष्मणको अपना सर्वश्रेष्ठ मन्त्री बनाया । किन्तु सातों द्वीपोंके अधिपति राम स्वयं थे ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ ये सब लोग अपने कार्योंको बड़ी तत्परताके साथ निभाते थे । इसके अनन्तर रामने साथ आये हुए राजाओंको अपने देश जानेकी आज्ञा दी और वे रामचन्द्रजीको प्रणाम करके अपने-अपने देशको चले गये ॥ ९७ ॥ भारतवर्षका शासन भरतजी प्रसन्नतापूर्वक करते थे । जंबूद्वीपका शासन लव करते थे और भरत, कुश तथा लक्ष्मणसे सलाह लेकर रामचन्द्रजी सातों द्वीपोंका शासन कर रहे थे ॥ ९८–१०० ॥ इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपाण्डेयविरचित-'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासहिते राज्यकाण्डे नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

श्रीरामदास कहने लगे—एक समय रामचन्द्रजी सभामें बैठे थे । सहसा कई बार एक कुत्तेके रोनेकी आवाज सुनी तो दूतसे बोले—॥ १ ॥ देखो तो इतने ऊँचे स्वरसें कुत्ता क्यों चिल्ला रहा है । रामके आज्ञानुसार दूत कुत्तेके पास गया । उसे धमकाकर वहाँसे हटा दिया और रामसे जाकर कहा—हे रावणान्तक ! उसे मैंने दूर भगा दिया है, अब वह नहीं चिल्लायेगा । दूसरे दिन फिर रामने उसी प्रकार उस कुत्तेका रोदन सुना तो दूतसे भगवाया ॥२–५॥ तीसरे दिन फिर उसका रुदन सुनकर रामने लक्ष्मणसे कहा—आज तीन दिनसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

किं दुःखं सारमेयाय प्रष्टव्यं मत्पुरस्त्वया । तथेति लक्ष्मणो दूतानब्रवीत्संभ्रमान्वितः ॥७॥
सभामाकारणीयः श्वा युष्माभिस्त्वद्य सादरम् । तथेति रामदूतास्ते सारमेयं वचोऽब्रुवन् ॥८॥
आकारितोऽसि रामेण त्वमेहि राघवांतिकम् । त्वद्दैवं फलितं चाद्य पूर्वपुण्योदयेन हि ॥९॥
रामदूतवचः श्रुत्वा तुष्टः श्वा तान्वचोऽब्रवीत् । देवगृहे यज्ञवाटहोमशालासु वै तथा ॥१०॥
वृन्दावने सभायां च मठे पार्थिवसद्‌गृहे । गोष्ठे पुण्यस्थले पुण्ये तीर्थे देवालयेऽपि च ॥११॥
पाकस्थाने रतिस्थाने स्नानसंध्यास्थलादिषु । गन्तुं नार्हा वयं पापयोनिस्था वाच्यतां प्रभुः ॥१२॥
ततस्ते विस्मयाविष्टास्तद्वाक्यं राममब्रुवन् । राघवस्तद्वचः श्रुत्वा विहस्य सम्भ्रमेण च ॥१३॥
आनीयतां पादुके मे त्विति दूतान् वचोऽब्रवीत् । ततस्तैरर्पिते दिव्ये पादुके कृत्य पादयोः ॥१४॥
रत्नदण्डं करे धृत्वा शनैः सर्वैः समन्वितः । मुद्रिकारत्नहारेण मणिद्वयविराजितः ॥१५॥
मुकुटेनावतंसेन केयूराभ्यां समन्वितः । नूपुराभ्यां कंकणाभ्यां कुण्डलाभ्यां सुशोभितः ॥१६॥
पदकैः शृंखलाभिश्च वरवस्त्रैर्विराजितः । राजद्वाराद्बहिर्देशे सारमेयांतिकं ययौ ॥१७॥
कृत्वा दंडं स्वकक्षेऽथ किंचिद्वक्रः स्थितः प्रभुः । कृत्वा वामजान्वधो स्वां जंघां रामः स दक्षिणाम् ॥१८॥
अब्रवीत्सारमेयं तं किंचित्कृत्वा स्मिताननम् । मदग्रे वद किं दुःखं सारमेय तवास्ति यत् ॥१९॥
मद्राज्ये सहसा माऽस्तु दुःखं केषां कदापि च । इति रामगिरं श्रुत्वा सारमेयः पुनः पुनः ॥२०॥
नमस्कृत्वा राघवेंद्रं छिन्नपादोऽब्रवीन्मुदा । मदर्थं श्रमितोऽस्यत्र चिरं जीव दयानिधे ॥२१॥
निरपराधो यतिना ग्राव्णाऽत्राहं प्रताडितः । छिन्नपादोऽस्मि राजेंद्र त्वामद्य शरणं गतः ॥२२॥
तद्वाक्यं राघवः श्रुत्वाऽऽकारयामास दण्डिनम् । रामाज्ञया यतिश्चापि विह्वलो राघवं ययौ ॥२३॥
दृष्ट्वा यतिं तं श्रीरामस्तदा वचनमब्रवीत् । स्वामिन् किमर्थं युष्माभिश्छिन्नः पादोऽस्य वै शुनः ॥२४॥

यह कुत्ता क्यों राजदरबारके समक्ष आकर रोता है। मेरे सामने बुलाकर पूछो कि उसे किस बातका कष्ट है। लक्ष्मणने भी घबड़ाकर दूतोंको आज्ञा दी कि जाओ और आदरपूर्वक उस कुत्तेको सामने ले आओ। "बहुत अच्छा" कहकर दूत कुत्तेके पास पहुँचे और उससे कहने लगे—॥ ६-८ ॥ आज पूर्वसंचित पुण्योंसे तुम्हारा भाग्योदय हुआ है। चलो, श्रीरामचन्द्रजी तुम्हें बुला रहे हैं ॥ ९ ॥ दूतोंकी बात सुनी तो प्रसन्न होकर कुत्ता कहने लगा—देवालय, यज्ञशाला, हवनगृह, तुलसीका बगीचा, सभा, मठ, राजभवन, गोशाला, पवित्र तीर्थ, रसोईघर, रतिस्थान तथा स्नान-सन्ध्यादि करनेके स्थानोंपर मैं जानेके अयोग्य हूँ। क्योंकि मेरा जन्म पापयोनिमें हुआ हैं। तुम जाकर रामसे कह दो ॥ १० ॥ ११ ॥ इतना सुनकर वे दूत बड़े विस्मित हुए और जैसा उसने कहा था, जाकर रामको सुना दिया। राम उसकी बात सुनकर हँस पड़े और दूतोंसे कहा कि हमारा खड़ाऊँ ले आओ! दूतोंने आज्ञाका पालन किया। रामने खड़ाऊँ पहिना, एक रत्नजटित छड़ी हाथमें ली और सब लोगोंके साथ उस कुत्तेकी ओर चले। उस समय रामचन्द्रके हाथोंमें अंगूठियाँ थीं, रत्ननिर्मित हार गलेमें था, मस्तकपर मुकुट तथा कानोंमें कुण्डल झूल रहे थे, भुजाओंमें विजायठ और कङ्कण था। गलेमें हार तथा सिकड़ियाँ शोभित हो रही थीं। इनके सिवाय और भी कई प्रकारके आभूषण और सुन्दर वस्त्र सुशोभित हो रहे थे। इस तरह सज-धजकर राम कुत्तेके पास जा पहुँचे ॥ १२-१७ ॥ वहाँ पहुँचे तो छड़ी बगलमें दबा ली और बाएँ घुटनेको तनिक मोड़कर कुछ तिरछे खड़े हो गये ॥ १८ ॥ पुचकारकर राम कुत्तेसे बोले—हे सारमेय! तुम्हें जो कुछ कष्ट हो, वह मुझे बताओ ॥ १९ ॥ क्योंकि मैं चाहता हूँ कि मेरे राज्यमें किसीको किसी प्रकारका कष्ट न हो। इस तरह प्रभुकी बात सुनकर कुत्तेने रामको अनेकशः प्रणाम किया और हर्षित होकर कहने लगा—हे दयानिधे! आपने मेरे लिए बड़ा कष्ट किया, जो यहां पधारे। हे महाराज! मैंने कोई अपराध नहीं किया था। फिर भी एक संन्यासीने पत्थरसे मुझे ऐसा मारा कि जिससे मेरा पैर टूट गया। इसीसे दुःखी होकर मैं आप की शरणमें आया हू ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ उसकी बात सुनकर रामने उस संन्यासीको बुलवाया।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तद्रामवचनं श्रुत्वा यतिः प्राह रघूत्तमम् । भिक्षार्थं भ्रमतो मार्गे भिक्षान्नं स्पर्शितं मम ॥२५॥
शुनाऽनेन राघवेन्द्र मध्याह्ने क्षुधितस्य च । मयाऽतः क्रोधचित्तेन शुनेऽस्मै ह्यपराधिने ॥२६॥
धर्षितुं चोपलः क्षिप्तस्तेन भिन्नं पदं शुनः । तद्यतेर्वचनं श्रुत्वा पुनस्तं प्राह राघवः ॥२७॥
ज्ञानहीनः पशुश्चायं भक्ष्यं स्वीयं निरीक्ष्य च । स्पर्शितस्त्वां तस्य दोषो नैवायं वेद्म्यहं यते ॥२८॥
त्वमेवास्यस्यापराधी तद्दण्डं सोढुमर्हसि । इत्युक्त्वा सारमेयं तं राघवो वाक्यमब्रवीत् ॥२९॥
यतिश्चायं तेऽपराधी तव हस्तेऽर्पितो मया । यं त्वमिच्छसि वै कर्तुं तस्मै दण्डं सुखं कुरु ॥३०॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा सारमेयोऽब्रवीत् प्रभुम् । शिवालयाधिपत्ये च स्थापनीयो यतिः प्रभो ॥३१॥
तथेति रामचन्द्रोऽपि शिबिकायां निवेश्य तम् । स्रग्वस्त्रचन्दनाद्यैश्च सम्पूज्याथ यतिं मुदा ॥३२॥
वाद्यघोषैर्नर्तनाद्यैरुत्सवैश्च शिवालयम् । नीत्वा शिवालयस्याधिपत्ये संस्थापयत्प्रभुः ॥३३॥
तदाऽज्ञानाद्यतिर्दैवं फलितं चेत्यमन्यत । ततो रामो जनैर्युक्तः स्वां सभां संविवेश ह ॥३४॥
तत्सर्वं कौतुकं दृष्ट्वा पौराः प्रोचू रघूत्तमम् । कथं शुनाऽद्य यतये शिक्षेदृक्साधिता प्रभो ॥३५॥
अन्नार्थं भ्रमतस्तस्य यतेर्दत्तं पदं महत् । तेनातिसौख्यं सञ्जातं यतये शिक्षितं न तत् ॥३६॥
तत्पौरवचनं श्रुत्वा राघवस्तान् वचोऽब्रवीत् । प्रष्टव्यः श्वा तु युष्माभिर्वः सन्देहं हरिष्यति ॥३७॥
तथेति सारमेयं तं पप्रच्छुर्नागराश्च तत् । तान्प्रोवाच सारमेयः शृणुध्वं यन्मयोच्यते ॥३८॥
कृषिसञ्जातधान्यौघखलसम्मानकारिणः । शिवालयमठारामदानग्रामाधिकारिणः ॥३९॥
अनाथस्त्रीबालवित्तहारिणः क्रूरनिःस्वनाः । गोविप्रशिववित्तस्य हारिणोऽन्यायकारिणः ॥४०॥

रामके आज्ञानुसार वह संन्यासी भी विह्वल भावसे रामके पास आया ॥ २३ ॥ रामने उसको प्रणाम किया और कहने लगे–कहिए स्वामीजी ! आपने किस अपराधसे इन कुत्तेका पैर तोड़ डाला ? ॥ २४ ॥ उसने उत्तर दिया कि मैं भिक्षा लिये रास्तेसे जा रहा था । तभी इसने मेरा भिक्षान्न छू दिया । वह मध्याह्नका समय था । मैं भूखा था । इसके उस अपराधसे मुझे क्रोध आ गया और इसको धमकानेकी इच्छासे मैंने एक पत्थर फेंककर मारा । वह इसके पैरमें लगा, जिससे इसका पैर टूट गया । यतिकी बात सुनकर राम उससे कहने लगे— ॥ २५–२७ ॥ यह एक ज्ञानविहीन पशु है । यदि इसने अपना भक्ष्य पदार्थ देखकर आपको छू दिया तो मैं इसमें इसका कोई दोष नहीं समझता । यह तो इसकी स्वाभाविक प्रकृति है । इसलिए आप ही इसके अपराधी हैं । यतिके प्रति इतना कहकर कुत्तेसे कहने लगे–यह संन्यासी तुम्हारा अपराधी है । मैं इसे तुम्हें सौंपता हूँ । तुम जो दण्ड चाहो, इसे दे सकते हो ॥ २८–३० ॥ रामकी बात सुनकर कुत्तेने कहा–इसे किसी शिवालय-का महन्थ बना दिया जाय ॥ ३१ ॥ रामने उसकी बात स्वीकार कर ली और सुन्दर वस्त्र, चन्दन तथा माला आदिसे यतिको सुशोभित करके एक पालकीमें बिठाया और विविध प्रकारके बाजे बजाते हुए उत्सवके साथ एक शिवालयमें ले गये और उसे वहाँका महन्थ बना दिया ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ उस समय अज्ञानतावश यतिने अपना भाग्योदय समझा । कुछ देर बाद रामचन्द्रजी अपने साथियों समेत राजसभामें लौट आये ॥ ३४ ॥ इस प्रकारका कौतुक देखकर कितने ही उत्सुक नागरिकोंने रामसे कहा-हे प्रभो ! इस कुत्तेने यति-को इस प्रकारका दण्ड क्यों दिया ? यतिने तो पत्थरसे उसकी टांग तोड़ दी और जब आपने कुत्तेको उसके कियेका दण्ड देनेके लिए कहा तो उसने दण्डके स्थानपर यतिको महन्थ बनवा दिया ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ इस प्रकार नागरिकोंकी बात सुनकर रामने कहा कि आप लोग उस कुत्तेसे ही पूछ लें कि उसने ऐसा क्यों किया । वह आप लोगोंकी शङ्काका भली भाँति समाधान कर देगा ॥ ३७ ॥ रामके आज्ञानुसार उन लोगोंने कुत्तेसे पूछा तो उसने कहा–मैं जो कुछ कहता हूँ, उसे सावधान होकर आप लोग सुनें ॥ ३८ ॥ खेतमें उत्पन्न अन्न रखानेवाले, शिवालय, मठ, बगीचा, दानग्राम इन स्थानोंके अधिपति, अनाथ स्त्री तथा बालकोंके धनका अपहरण करनेवाले, गाली-गलौज करनेवाले, गो-विप्र तथा शिवके लिए अर्पित धनका अपहरण करनेवाले, अन्याय करनेवाले, राजाके घरपर पहुँचे हुए याचकको भगानेवाले, दूसरेका धन हड़पनेवाले, प्रायश्चित्तके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नृपगेहे प्रविष्टानां याचकानां निवारिणः । परद्रव्यापहर्त्तारः प्रायश्चित्ताधिकारिणः ॥४१॥
विप्रभोजनद्रव्यस्य होमद्रव्यस्य हारिणः । बहुद्रव्यापहर्तारश्चैते सर्वेऽन्यजन्मनि ॥४२॥
गच्छन्ति वै शुनो योनिं सत्यमेतद्वचो मम । मया मठाधिपत्याच्च लब्धा योनिः शुनः स्वयम् ॥४३॥
अतो मयाऽद्य यतये शिक्षितुं पदमर्पितम् । इति तद्वाक्यमाकर्ण्य नागराश्छिन्नसंशयाः ॥४४॥
ते ययुः स्वीयगेहानि ययौ श्वाऽपि निजस्थलम् । देहांते स यतिर्जातः शुनो योनौ स्वकिल्बिषात् ॥४५॥
आप स श्वा शुभां मुक्तिं मुक्त्वादौ स्वीयकिल्बिषम् । न ज्ञेयोऽयं यतिः शिष्य साकेतेऽत्र मृतस्त्विवति४६
स्थलान्तरे मृतश्चायं गतः कार्यार्थमात्मनः । अयोध्यायां मृतानां च पुनर्जन्म न विद्यते ॥४७॥
क्व यतिः सारमेयत्वं क्व स श्वा क्व गतिश्च सा । गहना कर्मणश्चात्र गतिर्ज्ञेया महात्मभिः ॥४८॥
क्व यतिः सारमेयः क्व न्यायश्चेत्थं रमापतेः । आसीत्सत्यः सदैवात्र नान्यायस्तन्मुखेक्षणात् ॥४९॥
अथैकदा तु साकेतवासिनो भूसुरस्य च । पञ्चत्वं पञ्चवर्षीयः पुत्रः प्राप्तः शिशुः प्रियः ॥५०॥
तदा विप्रः सपत्नीकस्तत्प्रेतमरुणोदये । राजद्वारं समानीय रुरोदोच्चैः स्वरैर्मुहुः ॥५१॥
अब्रवीत् पुत्रशोकेन व्यथितः क्रोधसंयुतः । सीतामालिंग्य राजेन्द्र कथं त्वं निद्रितोऽसि हि ॥५२॥
त्वद्राज्येऽधर्मतः कस्य मृतो मे बालकः प्रियः । त्वत्तोऽधर्मोऽथवान्याच्च जातोऽधर्मो न वेद्म्यहम् ५३॥
नृपे पापिनि म्रियन्ते नरा ह्यल्पायुषः श्रुतम् । यस्य राज्ये जनैः सर्वैर्योऽधर्मः क्रियते भुवि ॥५४॥
सोऽपि ज्ञेयो नृपस्यैव यतस्तेषां न शिक्षितम् । अतस्तेऽधर्मिणो राज्ञो राज्ये मेऽयं शिशुर्मृतः ॥५५॥
उपायं चिंतयस्वास्य जीवनेऽद्य जवान्नृप । नोचेदावां चितिं चारोहावस्तनयेन हि ॥५६॥
स्मर वृत्तं श्रवणस्य हेतोर्यज्जनकाय ते । जातं शापादिकं पूर्वं तद्वदत्रापि ते भवेत् ॥५७॥

लिए दिये धनको ग्रहण करनेवाले, ब्राह्मणभोजनके लिए जुटाई सामग्रीमेंसे चोरी करनेवाले और बेईमानी करके अधिक धन इकट्ठा करनेवाले लोग मरकर दूसरे जन्ममें कुत्तेकी योनिमें जन्म पाते हैं ॥ ३९–४२ ॥ इस प्रसङ्गमें मैंने जो बातें कहीं हैं, वे सब सत्य हैं। मैंने स्वयं मठाधिपत्यके कारण ही कुत्तेकी योनि पायी है ॥ ४३ ॥ उस संन्यासीको उसकी करनीका फल देने ही के लिए मैंने उसे यह पद दिलाया है। इस प्रकार उसकी बात सुनकर सारे पुरवासियोंका सन्देह निवृत्त हो गया और सब लोग अपने-अपने घरोंको चले गये। कुत्ता भी अपने स्थानको चला गया। उस संन्यासीने मठाधिपत्यके मदमें आकर जो पाप किये, उनसे जन्मान्तरमें उसे कुत्तेकी योनि मिली ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ वह कुत्ता जिसने कि रामचन्द्रजीके यहाँ दावा किया था, उसे कुछ दिनों बाद शुभ गति मिली। किन्तु वह यति जो अपने पापोंसे कुत्ता हुआ था, अयोध्यामें न मरकर किसी दूसरे स्थानपर मरा। इस लिए उसे मुक्ति नहीं मिली। जो लोग अयोध्यामें शरीर त्याग करते हैं, वे जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त हो जाते हैं। कर्मकी गति बड़ी विचित्र होती है। कहाँ वह कुत्ता होकर भी मुक्त हो गया और वह यति होकर भी कुत्ता हो गया ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ कहाँ कुत्ता और कहाँ संन्यासी। रामने उन दोनोंका कितना अच्छा न्याय किया। सच तो यह है कि रामके राज्यमें किसीका मुँह देखकर न्याय नहीं किया जाता था। बल्कि जो न्याय्य बात होती, वही होती थी ॥ ४९ ॥ एक समय अयोध्यामें एक ब्राह्मणके पंचवर्षीय बालककी मृत्यु हो गयी ॥ ५० ॥ सवेरा होते ही वे ब्राह्मणदम्पती बच्चेके शवको लेकर राजद्वारपर आये और बड़े जोर-जोरसे रोने लगे ॥ ५१ ॥ पुत्रशोकसे कुपित होकर उस ब्राह्मणने कहा हे राम ! सीताको गोदमें लेकर तुम अब भी आनन्दके साथ पड़े सो रहे हो ? ॥ ५२ ॥ तुम्हारे राज्यमें किसीके अधर्मसे मेरे बच्चेकी मृत्यु हुई है। इसमें तुम्हारा कोई अधर्म है अथवा किसी दूसरेका। यह मैं नहीं जानता ॥ ५३ ॥ मैंने ऐसा सुना है कि राजाके अधर्मी होनेसे ही उसके राज्यमें अकाल मृत्यु होती है। जिस राजाके राज्यमें अधर्म होता है, उसका भी कारण राजा ही होता है। क्योंकि वह अपनी प्रजाको अच्छी तरह शिक्षा नहीं देता। इससे यह निश्चित है कि तुम अधर्मी हो। इसी लिए मेरे बालककी मृत्यु हुई है ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ अतएव हे राजन् ! इसके लिए शीघ्र कोई उपाय करो, नहीं तो हम दोनों (स्त्री-पुरुष)

CC-0. In Public Domain. Vrindavan Sharma Jangam Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ततो विप्रप्रिया प्राह सीतां प्रोच्चस्वरेण हि । कथं त्वं पतिमालिंग्य निद्रिताऽसि सुखं शुभे ।।५८।।
त्वमप्यसि पुत्रवती मे दुःखं चात्मनः कुरु । उपायं कारयस्वाद्य भर्त्राऽस्य जीवने शिशोः ।।५९।।
इति तद्दंपतीवाक्यं श्रुत्वा सर्वे पुरौकसः । आसन्प्रव्यग्रचित्तास्ते प्रेतमावार्य सस्थिताः ।।६०।।
सीतारामावपि तयोर्वाक्यं श्रुत्वाऽतिविह्वलौ । विनिर्गतौ रतिशालाबहिस्तद्दुःखदुःखितौ ।।६१।।
निवार्य बंदिगीतानि राजद्वारं तयोः पुरः । वेगेन जग्मतुः पद्भिः सीतारामौ गतश्रियौ ।।६२।।
दृष्ट्वा सीतां च रामं च तौ शोकं चक्रतुर्मुहुः । तावाश्वास्य रामचन्द्रस्तदाऽऽह गद्गदाक्षरः ।।६३।।
मा शोकं कुरुतश्चोभौ मद्गिरं शृणुतस्त्विति । कृत्वोपायं हि युवयोः पुत्रं संजीवयाम्यहम् ।।६४।।
न जीवितश्चेद्युवयोः पुत्रस्तर्ह्यर्पये कुशम् । गिरं सत्यामिमां चोभौ पश्यतस्त्विह मेऽद्य हि ।।६५।।
ततः सीता विप्रपत्नीमाश्वास्याह गिरं शुभाम् । रामेण ते प्रतिज्ञातं कुशदानेन भामिनि ।।६६।।
अहमप्यद्य ते वच्मि तव दुःखस्य शांतये । न जीवितश्चेद्रामेण मयाऽयं त्वच्छिशुः प्रियः ।।६७।।
तर्हि त्वद्दुःखशांत्यर्थमर्पयेऽहं लवं प्रियम् तांभ्यां कुशलवाभ्यां त्वं पुत्रदुःखं त्यजिष्यसि ।।६८।।
भजिष्यसि त्वं मत्सौख्यमतः शोकं कुरुष्व मा । ततः प्राह द्विजं रामस्त्वं पत्न्याऽत्र स्थिरो भव ।।६९।।
मा कुरुष्व मुहुः खेदं त्वत्पुत्रं जीवयाम्यहम् । इत्युक्त्वा लक्ष्मणेनैव तैलद्रोण्यां शवं शिशोः ।।७०।।
निधाय कृमिदुर्गन्धदुस्फुरणप्रशांतये । स्वयं स्नात्वा नित्यविधिं चाकरोत्खिन्नमानसः।।७१।।
ततः सभासंस्थितः सन् वसिष्ठं प्राह राघवः । राज्यं शासति धर्मेण तत्रायं वै शिशुः कथम् ।।७२।।

अपने प्रिय पुत्रके साथ चितामें जलकर भस्म हो जायँगे ।। ५६ ।। श्रवणके वृत्तान्तका स्मरण करो। जिस प्रकार तुम्हारे पिता द्वारा अपने पुत्रवधके दु.खसे दुखी होकर उसके माँ-बापने दशरथको शाप देकर अपने प्राण त्याग दिये थे, वही दशा हमारी भी होगी ।। ५७ ।। इसके अनन्तर ब्राह्मणीने जोरोंके साथ सीताको संबोधित करके कहा—हे शुभे ! तुम क्यों पतिका आलिंगन करके आनन्दके साथ सो रही हो ? तुम भी पुत्रवती हो। इस कारण मेरे दुःखकी ओर ध्यान देकर मेरे बच्चेका जिलानेके लिये अपने पति द्वारा शीघ्र कोई उपाय करवाओ ।। ५८ ।। ५९ ।। इस प्रकार उस विप्रदम्पतीके वाक्य सुनकर वहाँके सब पुरवासी व्याकुल हो उठे और उस शवको चारों ओरसे घेरकर खड़े हो गये ।। ६० ।। उधर राम तथा सीता दोनों ब्राह्मणकी बातोंसे विह्वल होकर रतिशालासे बाहर निकल आये। नीचे आकर रामने बन्दीजनोंकी स्तुति तथा गाने-बजानेवालोंके गाने-बाजे रोक दिये और वेगके साथ दौड़ते हुए उन दोनोंके पास पहुँचे। उस समय उस दुःखसे सीता तथा रामका मुख कुम्हला गया था ।। ६१ ।। ६२ ।। महाराज राम तथा सीताको देखकर वे दोनों और भी जोर-जोरसे चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगे। उनको आश्वासन देते हुए गद्गद कण्ठसे रामने कहा कि आप लोग इतने व्याकुल न हों, मैं जो कुछ कह रहा हूँ उसे सुनें। मैं कोई उपाय करके तुम्हारे पुत्रको जीवित करूँगा ।। ६३ ।। ६४ ।। यदि तुम्हारे बेटेको जीवित न कर सकूँगा तो मैं अपना पुत्र कुश आपको दे दूँगा। मेरी बातको सत्य समझकर आप विश्वास करें ।। ६५ ।। इसके अनन्तर सीताने विप्रपत्नीके पास जाकर कहा—हे भामिनी ! तुम सुन रही हो कि रामने क्या प्रतिज्ञा की है ? तुम्हारे संतोषके लिए मैं भी प्रतिज्ञा करती हूँ कि यदि रामचन्द्रजी आपके बच्चेको जीवित न कर सके तो मैं अपने छोटे पुत्र लवको दे डालूँगी। उन दोनों पुत्रोंके पानेसे तुम्हारा पुत्रशोक दूर हो जायगा ।। ६६–६८ ।। अब शोक मत करो। तुम्हारा पुत्र न जिया तो अभी जो सुख मैं भोग रही हूँ, वह तुमको प्राप्त होगा। इसके अनन्तर रामने ब्राह्मणसे कहा कि आप अपनी पत्नीके साथ यहाँ बैठें और किसी प्रकारका खेद न करें। मैं आपके बेटेको जीवित करूँगा। इतना कहकर रामने लक्ष्मणसे कहकर एक तेलसे भरी हुई नौका मँगायी। जिससे शव सड़े-गले नहीं, उसमेंसे दुर्गन्ध न निकले या कीड़े न पड़ें। इस विचारसे उस शवको उसमें रखवा दिया और स्वयं खिन्न होकर सन्ध्यादि नित्यकृत्य करनेको चले गये। इसके अनन्तर सभामें बैठकर रामने अपने कुलगुरु वसिष्ठसे कहा कि जब मैं धर्मपूर्वक राज्यशासन कर रहा हूँ तब

CC-0. In Public Domain. Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

बाल्यत्वे पञ्चतां प्राप्तस्तत्रोपायं विचिन्त्यताम् । इति यावद्गुरुं रामः प्रोवाच तावदम्बरात् ॥७३॥
नारदः प्रययौ वीणां रणयन् तत्सभां जवात् । प्रत्युद्गम्याथ तं रामः परिपूज्य यथाविधि ॥७४॥
संश्राव्य सकलं वृत्तं पुनः पप्रच्छ तं मुनिम् । त्वयोपायोऽत्र वक्तव्यः शिशोश्चास्य प्रजीवने ॥७५॥
पुत्राभ्यां हि प्रतिज्ञातं द्विजाय सीतया मया । किमर्थं मम राज्येऽघो मृतस्त्वीदृङ्न वेद्म्यहम् ॥७६॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा राघवं प्राह नारदः । राम त्वद्विषयेऽधर्मं न कोऽप्याचरते जनः ॥७७॥
भूम्यां सर्वत्र द्रष्टव्यं त्वया गत्वाऽद्य मद्गिरा । यद्यप्यहं विजानामि भूम्यां वृत्तं च जानतः ॥७८॥
तथापि जनशिक्षार्थं त्वामेव प्रेषयाम्यहम् । त्वं दृष्ट्वाऽधर्मनिरतं जनं शिक्षय सादरम् ॥७९॥
अधर्मोच्छेदनेनायं जीवयिष्यति वै शिशुः । तथेति राघवश्चोक्त्वा विसर्ज्य नारदं मुनिम् ॥८०॥
सीतया नागरैः सर्वैर्भ्रातृभिर्गुरुणा सह । पुत्राभ्यां मन्त्रिभिर्युक्तः पुष्पकं चारुरोह सः ॥८१॥
एतस्मिन्नन्तरेऽग्रेऽभून्महान्कोलाहलस्तदा । तं श्रुत्वा चकितो रामः स ददर्श समन्ततः ॥८२॥
तावद्ददर्श पुरतः पौरैः संवेष्टितां स्त्रियम् । शवमप्यपरं शृङ्गवेरतश्च समागतम् ॥८३॥
रामं दृष्ट्वा पुष्पकस्थं रुदती ब्राह्मणी पुरः । दीर्घस्वरेण प्रोवाच हस्ताभ्यां हृदि ताड्य सा ।८४॥
राम राम महाबाहो ते राज्ये गतभर्तृका । अहं जाताऽस्मि त्वद्दोषान्मां दृष्ट्वा त्वं न लज्जसे ॥८५॥
मद्भर्तारं जीवयैनं नोचेच्छापं ददामि ते । इति तस्या वचः श्रुत्वा राघवः खिन्नमानसः ॥८६॥
अब्रवीन्मधुरं वाक्यं ब्राह्मणीं तोषयन्मुहुः । क्रोधं शमय रम्भोरु ते भर्तारं प्रजीवये ॥८७॥
अस्यैव हेतोर्गच्छामि त्वं मद्गेहे सुखं वस । इत्युक्त्वाऽऽश्वास्य तां रामस्तच्छवंचापिपूर्ववत् ॥८८॥
तैलद्रोण्यां स्थापयित्वा सुमंत्रं वाक्यमब्रवीत् । आगमिष्याम्यहं यावत्तावत्कस्यापि नो शवम् ॥८९॥

इस ब्राह्मणके बच्चेकी अकाल मृत्यु क्यों हुई ॥ ६९–७२ ॥ इसके लिये कोई उपाय सोचना चाहिये । इस प्रकार रामने गुरु वसिष्ठसे प्रश्न किया ही था कि इतनेमें आकाशमार्गसे वीणा बजाते हुए नारदजी उस सभाभवनमें आ पहुँचे । रामचन्द्रजीने उठकर नारदकी पूजा की और सारा वृत्तान्त कह सुनाया । इसके पश्चात् वे बोले-हे मुनिराज ! आप ही इस विप्रपुत्रके जीवनका कोई उपाय बतलाइये । हमने तथा सीताने यह प्रतिज्ञा की है कि यदि इस बालकको मैं जीवित न कर सका तो अपने दोनों पुत्र कुश तथा लव उस विप्रको अर्पण कर दूँगा । मेरे राज्यमें इस प्रकार अकाल मृत्यु कैसे हुई, यह मुझे मालूम नहीं हो रहा है ॥ ७३–७६ ॥ इस प्रकार रामके वचन सुनकर नारदने कहा—हे राम ! तुम्हारे राज्यमें कोई भी मनुष्य किसी प्रकारका अधर्म नहीं करता । फिर भी मेरे कथनानुसार आपको यह उचित है कि अपने राज्यभरमें घूमकर देखें । यदि कहीं कोई किसी तरहका अधर्माचरण करता हुआ दीखे तो उसे आप दण्ड दें । इस प्रकार अधर्मका मूलोच्छेद करनेपर यह ब्राह्मणबालक जीवित हो जायगा । रामने भी नारदकी सलाह मान ली । नारद मुनिको सादर विदा करके राम सीता, कुछ नगरवासी जनों, अपने भ्राताओं, गुरु वसिष्ठ, दोनों पुत्रों तथा मन्त्रियोंको साथ लेकर पुष्पक विमानपर आरूढ़ हुए ॥ ७७–८१ ॥ उसी समय आगेको ओरसे जोरोंका कोलाहल सुनाई पड़ा । उसे सुनकर राम और भी विस्मित हुए और चारों ओर निहारने लगे। तबतक उन्होंने देखा कि एक स्त्रीको चारों ओरसे बहुतसे पुरवासी घेरे हुए हैं । उनके आगे शृङ्गवेरपुरकी तरफसे एक और शव लदा हुआ आ रहा है । स्त्रीने जब रामको पुष्पक विमानपर बैठे देखा तो अपने हाथोंसे छाती पीटकर कहने लगी—हे राम ! हे राम !! तुम्हारे राज्यकालमें विधवा होकर मैं यहाँ आयी हूँ । मुझे इस दशामें देखकर तुम्हें लाज नहीं आती ? मेरे पतिकी मृत्यु तुम्हारे ही अधर्मसे हुई है । इस कारण जैसे बने, तैसे मेरे पतिको जिलाओ । नहीं तो मैं शाप दे दूँगी । इस प्रकार उस स्त्रीकी बात सुनकर रामने खिन्न होकर मीठी वाणीसे आश्वासन देते हुए उत्तर दिया—हे रंभोरु ! तुम क्रोधका परित्याग करके शान्त होओ । मैं तुम्हारे पतिको जिला दूँगा । मैं भी इसी कामके लिए जा रहा हूँ । तुम आनन्दके साथ मेरे भवनमें चलकर रहो । इस तरह उसे समझा-बुझाकर रामने उस शवको भी पहलेके समान तेलकी नौकामें रखवाया और सुमन्त्रको सचेत कर दिया कि

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

त्वया वह्नौ ज्वालनीयं रक्षणीयं प्रयत्नतः । सर्वानपि त्वया भूम्यां श्राव्यं दुंदुभिनिःस्वनैः ॥९०॥
न कस्यापि शवं दग्धं क्वापि कार्यं जनैस्त्विति । तथेति राघवं चोक्त्वा दूतैः संश्राव्य तद्वचः ॥९१॥
सुमंत्रः सकलान् भूस्थान् साकेते न्यवसत्सुखम् । रामोऽपि पुष्पकेणैव पश्चिमां चोत्तरां दिशम् ॥९२॥
पूर्वामपि शनैः पश्यन् दक्षिणाभिमुखो ययौ । एतस्मिन्नंतरेऽयोध्यापुर्यां पञ्च शवानि हि ॥९३॥
समानीतानि तैलस्य द्रोण्यां तान्यपि पूर्ववत् । सुमंत्रः स्थापयामास श्रीरामस्याज्ञयाऽऽदरात् ॥९४॥
तेषु पञ्चशवेष्वेव चैकं मधुपुरि स्थितम् । क्षत्रियस्य च तज्ज्ञेयं समानीतं सुहृज्जनैः ॥९५॥
प्रयागस्थं द्वितीयं च शवं वैश्यस्य तत्स्मृतम् । पूर्वे वयसि पञ्चत्वात्समानीतं हि तज्जनैः ॥९६॥
हस्तिनापुरसंस्थं तत्तृतीयं शवमीरितम् । तैलकारस्य तज्ज्ञेयं समानीतं हि तज्जनैः ॥९७॥
शवं चतुर्थं तज्ज्ञेयं हरिद्वारस्थितं द्विज । लोहकारस्नुषायाश्च समानीतं हि तज्जनैः ॥९८॥
उज्जयिनीस्थं पञ्चमं च शव ज्ञेयं महामते । चर्मकारदुहितायाः समानीतं हि तज्जनैः ॥९९॥
एवं पञ्च शवान्यासन् पूर्वे द्वे ब्राह्मणस्य च । सप्तायोध्यापुरीमध्ये शवान्येवं स्थितानि हि ॥१००॥
रामोऽपि दंडकं पश्यन् स बभ्राम समंततः । ययौ विंध्याचलं धीमान् रेवावारिपरिप्लुतम् ॥१०१॥
तत्र वृक्षे लंबमानं धूमं पातुमधोमुखम् । शूद्रं निरीक्ष्य स्वर्गेच्छं तं हंतुं समुपस्थितः । १०२॥
तदा तं राघवः प्राह भो शूद्र शृणु मद्वचः । ब्राह्मणादित्रिभिर्वर्णैस्तपः कार्यं न चेतरैः ॥१०३॥
शूद्रैश्च द्विजशुश्रूषा सदा कार्याऽतिभक्तितः । द्विजकृत्यं त्वया चात्र कृतं पापात्मना जड ॥१०४॥
इदानीं त्वां हनिष्यामि जीवयिष्यामि तान्मृतान् । तुष्टोऽहं त्वां त्वत्तपसा वरं वरय वांछितम् ॥१०५॥
इति रामवचः श्रुत्वाऽधोमुखो रामपादजः । उवाच भयभीतः सन्नत्वा रामं मुहुर्मुहुः ॥१०६॥
राम रावणदर्पघ्न यदि तुष्टोऽसि मां प्रभो । तर्हि ते वरयाम्यद्य येन शूद्रगतिर्भवेत् ॥१०७॥

जबतक मैं लौट न आऊँ, तबतक तुम किसी भी शवका अग्निसंस्कार न करने देना ॥ ८२–८९ ॥ साथ ही मेरे राज्यमें यह डुग्गी पिटवा दो कि जबतक मैं लौट न आऊँ, तबतक कोई भी शव न जलाया जाय। सुमन्त्रने रामकी आज्ञा स्वीकार करके दूतों द्वारा ढिंढोरा पिटवाकर रामकी वह आज्ञा सब लोगोंको सुनवा दी और आनन्दपूर्वक राज-काज देखते हुए रहने लगे। उधर रामचन्द्रजी पुष्पक विमानपर बैठकर पश्चिम तथा उत्तरकी दिशाओंको धीरे-धीरे अच्छी तरह देखते हुए दक्षिण दिशाकी ओर बढ़े। इसी बीच अयोध्यामें पाँच शव और आकर एकत्र हो गये। उन्हें भी सुमन्त्रने पूर्ववत् तेलकी नौकामें रखवा दिया ॥ ९०–९४ ॥ उन पाँचोंमेंसे एक शव मधुपुर गाँवमें रहनेवाले एक क्षत्रियका था। जिसे उसके सुहृज्जन रामके दरबारमें ले आये थे। दूसरा शव प्रयागनिवासी एक वैश्यका था। थोड़ी ही अवस्थामें उसकी मृत्यु हो गयी थी। इसी लिए उसके घरवाले रामके पास ले आये। तीसरा शव हस्तिनापुरनिवासी एक तेलीका था। उसे भी उसके घरवाले रामके पास ले आये थे। चौथा शव हरिद्वारनिवासी एक लोहारकी पुत्रवधूका था। पाँचवाँ शव उज्जयिनीनिवासी एक चमारकी लड़कीका था और उसके घरवाले उसे अयोध्या ले आये थे। इस प्रकार ये पाँच शव तथा पूर्वके दो ब्राह्मणके सब मिलाकर अयोध्यामें सात शव एकत्र हो गये ॥ ९५–१०० ॥ रामचन्द्रजी भी दण्डकारण्यमें अच्छी तरह घूमकर रेवानदीसे परिप्लुत विन्ध्यपर्वतको ओर बढ़े। वहाँ उन्होंने देखा कि एक शूद्र उलटा टँगा है और नीचे आगकी धूनी घधक रही है। वह शूद्र धुआँ पीता हुआ मुँह बाये लटका हुआ है। इस प्रकारकी उग्र तपस्या करके स्वर्ग चाहनेवाले उस शूद्रको राम मारनेके लिए तैयार ही गये और उसके पास जाकर कहने लगे–हे शूद्र ! ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य इन तीनों वर्णोंके लिए ही तपस्या करनेका विधान है, शूद्रोंके लिए नहीं। उन्हें तो सर्वदा इन तीनों वर्णोंकी सेवा करनी चाहिए। अरे जड़ ! तुझ पापीने अपने धर्मका उल्लंघन करके द्विजोंके समान कर्म किया है ॥ १०१—१०४ ॥ इस समय मैं तुझे मारकर उन लोगोंको जीवित करूँगा, जो तेरे धर्मविरुद्ध आचरणसे अकालमृत्युके ग्रास बने हैं। मैं तेरी इस तपस्यासे प्रसन्न हूँ। बोलो, तेरी क्या कामना है ? इस प्रकार रामकी वाणी सुनकर भयभीत हो

CC0. In Public Domain. Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ममापि येन कीर्तिः स्यात्तं वरं दातुमर्हसि । इति शूद्रवचः श्रुत्वा रामस्तुष्टोऽब्रवीद्वचः ॥१०८॥
मम रामेति यन्नाम तच्छूद्रैः सर्वदैव हि । जपनीयं कीर्तनीयं चिंतनीयं मुहुर्मुहुः ॥१०९॥
भविष्यति गतिस्तेषामनेन मत्परो भव । तवानेनोपकारेण कीर्तिः शूद्रेषु वै भवेत् ॥११०॥
इति रामवरं श्रुत्वा पुनः शूद्रोऽब्रवीद्वचः । शूद्राः कलौ मंदधियो भविष्यंति रघूत्तम ॥१११॥
व्यग्रचित्ता भविष्यंति कृषिकर्मादिभिः प्रभो । तदा तेषां कुतो बुद्धिर्जपादिषु भविष्यति ॥११२॥
अतस्तदनुरूपोऽद्य वरो देयो विचार्य च । तत्तस्य वचनं श्रुत्वा रामस्तुष्टोऽब्रवीत् पुनः ॥११३॥
परवन्दनकालेषु रामरामेति सर्वदा । शूद्रा वदंतु सर्वत्र तेन तेषां गतिर्भवेत् ॥११४॥
तवापीयं कथाकीर्तिः स्मरिष्यंति मदंघ्रिजाः । त्वं मया निहतस्त्वद्य वैकुंठं प्रति यास्यसि ॥११५॥
पुनर्ययाचे श्रीरामं वरमन्यं स्वकारणात् । अस्मिन् शैले सदा तिष्ठ सीतालक्ष्मणसंयुतः ॥११६॥
अंशतस्ते पूर्वमेव दर्शनं मम ये नराः । करिष्यन्ति ततः पश्चाद्ये नरास्तव दर्शनम् ॥११७॥
कुर्वन्ति सहितं भक्त्या मोक्षमेव व्रजंति ते । मद्दर्शनं विना मर्त्यास्त्वां पश्यंत्यविचारतः ॥११८॥
तेषामुद्धरणं राम कुरु मद्वचनात् प्रभो । तथोवाच तदा रामो भक्तिं तस्मै ददौ हरिः ॥११९॥
इति कृत्वा सुसंतुष्टं हत्वा शूद्रं रघूत्तमः । जीवयामास विप्रादीन्सप्त साकेतसंस्थितान् ॥१२०॥
तदारभ्यात्र शूद्रैस्तु विष्णुदासावनीतले । परवन्दनकालेषु रामरामेति कीर्त्यते ॥१२१॥
तं हत्वा रघुवीरः स परिवृत्त्य मुदान्वितः । सीतां नानाकौतुकानि दर्शयन्स्वपुरीं ययौ ॥१२२॥
एतस्मिन्नंतरे मार्गे गृध्रोलूकौ निरीक्षितौ । विवदमानौ रामेण चात्मानं द्रष्टुमागतौ ॥१२३॥
तावुवाच रघुश्रेष्ठः किमर्थं हि युवामुभौ । विवदमानौ संप्राप्तौ मां ब्रूतस्त्वद्य विस्तरात् ॥१२४॥

और नीचा मस्तक किये हुए बार-बार प्रणाम करके उस शूद्रने कहा—हे रावणके अभिमानको दूर करनेवाले राम ! यदि वास्तवमें आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो मुझे वह वरदान दीजिये कि जिससे शूद्रजातिको भी सद्गति प्राप्त हो, साथ ही मेरा भी उद्धार हो जाय । इस तरह शूद्रकी दीनतापूर्ण बात सुनकर रामचन्द्रजी बहुत प्रसन्न हुए और कहने लगे—॥ १०५–१०८ ॥ "राम" इस पवित्र नामका जो शूद्र सदा जप, कीर्तन तथा चिन्तन करते रहेंगे, उन लोगोंको सद्गति प्राप्त होगी और तुम भी इस तपस्याको छोड़कर मेरा चिन्तन करो। तुम्हारे इस उपकारसे शूद्रोंमें तुम्हारी कीर्ति होगी । इस प्रकार रामचन्द्रजीके द्वारा वर पाकर शूद्रने कहा—हे रघुसत्तम ! आगे महाप्रचण्ड कलियुग आनेवाला है । उसमें शूद्रजातिके लोग बड़े मूर्ख होंगे । वे सर्वदा अपनी खेती-बारीके काममें ही व्यस्त रहेंगे । ऐसी अवस्थामें उन्हें जप तथा कीर्तन करनेका अवसर ही कहाँ मिलेगा । इन शुभ कर्मोंकी ओर उनकी बुद्धि कैसे जायगी । अतएव उनके अनुरूप कोई वरदान दीजिए। उसकी यह वात सुनी तो प्रसन्न होकर रामने कहा कि वे लोग एक-दूसरेको प्रणाम-आशीषके समय "राम-राम" ऐसा कहेंगे, इसीसे उनका उद्धार हो जाया करेगा ॥ १०९–११४ ॥ उस शूद्रसमाजमें तुम्हारी वड़ी कीर्ति होगी । आज तुम हमारे हाथों मरकर वैकुण्ठधामको प्राप्त होओगे । इसके अनन्तर उसने रामसे यह वर माँगा कि आप सीता तथा लक्ष्मणके साथ सर्वदा इस पर्वतपर निवास करें ॥ ११५ ॥ ११६ ॥ जो लोग यहाँ आकर पहले मेरा दर्शन करनेके पश्चात् आपका दर्शन करें, उनको मोक्षपद प्राप्त हुआ करे । इसके सिवाय जो लोग भ्रमवश विना मेरा दर्शन किये ही आपका दर्शन कर लें, उनका भी उद्धार हो जाय । रामने 'तथास्तु' कहकर भक्तिका वर दिया और उसे मारकर उन अकाल मृत्युसे मरे हुए लोगोंको जीवित किया, जो ब्राह्मण-क्षत्रियादि सात प्राणी अयोध्यामें मरे पड़े थे ॥ ११७–१२० ॥ हे विष्णुदास ! तभीसे इस पृथ्वीतलमें शूद्रलोग आपसमें प्रणाम-आशीषके अवसरपर "राम-राम" कहा करते हैं । शूद्रको मारकर हर्षपूर्वक रामचन्द्रजी सीताको रास्तेके अनेक मनोहर दृश्योंको दिखाते हुए अयोध्याके लिए लौट पड़े । उसी बीच एक गृध्र और उलूक परस्पर विवाद करते हुए रामके दर्शनोंके लिए उनके सम्मुख आये । रामने उन्हें देखकर

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तद्रामवचनं श्रुत्वा तदोल्कोऽब्रवीत् प्रभुम् । मया पूर्वं कृतं राम नगोपरि गृहं वने ॥१२५॥
तत्कालेन मया त्यक्तं तत्र गृध्रोऽस्ति संस्थितः । नानेन दीयते मह्यं मम गेहं रघूत्तम ॥१२६॥
तदुलूकवचः श्रुत्वा गृध्रमाह रघूद्वहः । किमर्थं दीयते नास्य त्वया गृध्र गृहं वद ॥१२७॥
तदा गृध्रोऽब्रवीद्वाक्यं राघवं दीर्घनिःस्वनः । मया पूर्वं कृतं राम नगोपरि गृहं वने ॥१२८॥
तत्कालेन मया त्यक्तं तदोलूकः कियद्दिनम् । स्थितस्तेनापि तत्यक्तं तत्राहं संस्थितः पुनः ॥१२९॥
वृथाऽयं स्पर्द्धते राम मत्वा गेहं ममेति च । माऽधर्मं कुरु राजेंद्र त्वद्वंशेऽभून्न पातकी ॥१३०॥
तावुवाच रघुश्रेष्ठो युवाभ्यां हि यदा गृहम् । कृतं तस्यात्र कः साक्षी तदा तौ नेति चोचतुः ॥१३१॥
विमानस्थांस्तदा सर्वान्राघवः प्राह सस्मितः । इदमप्यद्य सम्प्राप्तं दुर्घटं मां पुरस्त्विह ॥१३२॥
कथं न्यायोऽत्र वै कार्यः कस्मै गेहं प्रदीयताम् । तद्रामवचनं श्रुत्वाऽऽसन्सर्वेऽतिविस्मिताः ॥१३३॥
तदोलूकं विभुः प्राह कृतं गेहं त्वया कदा । उलूकः प्राह भूश्चेयं यदा जाता तदा कृतम् ॥१३४॥
तदुलूकवचः श्रुत्वा गृध्रं रामोऽव्यलोकयत् । गृध्रः प्राह यदा चेयं महानीरेऽवनिस्तदा ॥१३५॥
चूतवृक्षे कृतं विद्धि पुरा गेहं मया विभो । तद्गृध्रवचनं श्रुत्वा तदा तं प्राह राघवः ॥१३६॥
कथं विनाऽऽश्रयेणासीन्महानीरे नगस्तदा । नोक्तोऽक्षयवटः सोऽपि चूतवृक्षस्त्वया स्मृतः॥१३७॥

तस्माद्वृथा त्वया गृध्र स्पर्ध्यतेऽनेन निश्चितम् ।
मयाऽद्य तव वाक्येन धिक् त्वां दुष्टपतत्रिणम् ॥१३८॥

इत्युक्त्वा राघवो दूतैस्तं गृध्रं पर्वतोपरि । त्रिशूलाग्रेषु चारोप्य प्रेषयामास स्वं पदम् ॥१३९॥
धन्यः स गृध्रो विज्ञेयो रामाग्रे यस्य वै मृतिः । अभूत्तद्दर्शनमपि यस्य देहविसर्जने ॥१४०॥

कहा कि तुम लोग क्यों लड़ रहे हो ? मुझे विस्तारपूर्वक कारण बतलाओ ॥ १२१–१२४ ॥ रामकी बात सुनकर उलूकने कहा कि मैंने एक वृक्षपर रहनेके लिए एक घोंसला बनाया था। कार्यवश उसी समय उसे छोड़कर मुझे स्थानान्तरको चला जाना पड़ा और यह गृध्र उसमें रहने लगा। अब मेरे माँगनेपर यह मुझे मेरा घोंसला नहीं दे रहा है। इस प्रकार उलूककी बात सुनकर रामने गृध्रसे कहा कि तुम इसका घोंसला इसे क्यों नहीं देते ? गृध्रने तड़पकर कहा—हे राम ! पहले मैंने उस वृक्षपर वह घोंसला बनाया था। कुछ दिनोंके लिए मैं बाहर चला गया तो यह उलूक उसमें रहने लगा। फिर यह जब उसे छोड़कर कहीं चला गया तो मैं जाकर अपने घरमें रहने लगा। यह व्यर्थ हमसे लड़ाई कर रहा है। हे राम ! इसकी बातोंमें आकर कहीं आप अधर्म न कीजियेगा। क्योंकि आपके वंशमें कभी कोई पातकी नहीं हुआ है ॥ १२५–१३० ॥ उन दोनोंसे रामने कहा कि तुमने उस घोंसलेको बनाया था, इसका कोई साक्षी दे सकते हो ? इस प्रकारके प्रश्न होनेपर वे दोनों चुप हो गये। क्योंकि उन दोनोंके पास कोई गवाह नहीं था। ऐसी दशामें मुस्कराते हुए रामने विमानपर बैठे हुए लोगोंसे कहा कि यह विकट समस्या आगे आ गयी है। इस झगड़ेका कैसे न्याय हो ? किसको वह घोंसला दिया जाय ? इस तरह रामकी बात सुनकर सब लोग भौंचकसे रह गये। किसीको कोई युक्ति नहीं सूझी ॥ १३१–१३३ ॥ फिर रामने उलूकसे कहा कि तुमने कब अपना घोंसला बनाया था। उसने उत्तर दिया कि मैंने अपना निवासस्थान उस समय बनाया था, जब इस पृथ्वीकी रचना हुई थी। इस प्रकार उलूककी बात सुनकर रामने गृध्रकी ओर देखा। गृध्रने उत्तर दिया कि मैंने उस घोंसलेको आमके वृक्षपर उसी समय बना लिया था, जब पृथ्वी जलमग्न थी—उसका उद्धार ही नहीं हुआ था। गृध्रसे रामने कहा कि जब पृथ्वीकी उत्पत्ति ही नहीं हुई थी, तब वह आमका वृक्ष किसके सहारे खड़ा था। वृक्षोंमें तुमने अक्षयवट भी नहीं बताया, जो किसी तरह रह भी जाता है। इसलिए मालूम पड़ता है कि तुम्हारी बात झूठ है। तुम उलूकको व्यर्थ सता रहे हो। तुम जैसे दुष्ट पक्षीको धिक्कार है ॥ १३४–१३८ ॥ इतना कहकर रामने दूतों द्वारा गृध्रको शूलीपर चढ़वाकर उसे अपना परम पद दे दिया। वह गृध्र धन्य था, जिसकी मृत्यु रामके सम्मुख हुई और रामका दर्शन करते हुए उसने अपने प्राणोंका परित्याग किया। इस प्रकार उसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दत्त्वा गेहमुलूकाय ययौ रामो निजां पुरीम् । विवेश नगरीं नृत्यवाद्यगीतपुरःसरम् ॥१४१॥
शिशुं विप्रं क्षत्रियं च वैश्यं चापि चतुर्थकम् । तैलकारं पञ्चमं च लोहकारस्नुषां तथा ॥१४२॥
चर्मकारदुहितरं सप्तैतान्हि सुजीवितान् । दृष्ट्वा रामः समायातानात्मानं द्रष्टुमादरात् ॥१४३॥
तुतोष नितरां पत्न्या तैः सर्वैः संस्तुतो मुहुः । ततः संपूज्य तान् सर्वान् विससर्ज रघूद्वहः ॥१४४॥
तदा महोत्सवश्चासीदयोध्यायां समन्ततः । एवं नानाचरित्राणि चकार रघुनन्दनः ॥१४५॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानंदरामायणे वाल्मीकीये राज्यकांडे पूर्वार्द्धे यतिशूद्रगृध्रशिक्षोपकरणं नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥

एकादशः सर्गः

(चार विप्रकन्याओंको रामका वरदान)

श्रीरामदास उवाच

अथैकदा रामचन्द्रो मृगयार्थं वनं ययौ । सीतया बन्धुभिः सैन्यैर्हस्त्यश्वरथपत्तिभिः ॥१॥
पश्यन् वनानि सर्वाणि मृगयारसिको भृशम् । कौतूहलसमाविष्ट आखेटव्यूहसंवृतः ॥२॥
उपानद्गूढपादश्च नीलोष्णीषी हरिच्छदः । नीलगोधांगुलित्राणो धनुष्पाणिः शरी नृपः ॥३॥
अश्वारूढः खड्गचर्मधारी भूपैः पदातिभिः । वेष्टितः कवची रामो विवेश गहनं वनम् ॥४॥
सीतया जालरंध्रैश्च वारं वारं निरीक्षितः । स रामो बन्धुवर्गैश्च पुत्राभ्यां नृपसत्तमैः ॥५॥
क्रीडां तदाऽकरोत्तत्र कुंजेषु मृगयन्मृगान् । हन्यतां हन्यतामेषो मृगो वेगात्पलायते ॥६॥
इति जल्पन् स्वभृत्येषु स्वयमुत्पत्य हंन्ति च । गांधारेषु च रम्येषु वनेषु विपुलेषु च ॥७॥
उल्लङ्घितमहास्रोता युवा पञ्चास्यविक्रमः । इतस्ततः पुनर्याति क्वचित्पश्यन् वनस्थलीम् ॥८॥

दण्ड देकर घोंसला उलूकको दे दिया और वहाँसे अपनी अयोध्या नगरीकी ओर चल पड़े। अयोध्यामें पहुँचे तो क्या देखा कि वहाँ नाच-गान हो रहे हैं। ब्राह्मणका लड़का, मधुरपुरवाला ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, तेली एवं लोहारकी पतोहू तथा चमारकी लड़की ये सब जीवित होकर रामके दर्शनोंको खड़े हैं। उनको जीवित देखकर सीता समेत राम अत्यन्त प्रसन्न हुए। वहाँ पहुँचे तो लोगोंने रामकी स्तुति की और रामने भी उनका सत्कार करके उनके ग्रामोंको भेज दिया। उस समय अयोध्या भरमें चारों और उत्सव ही उत्सव दीखता था। इस तरह राम अनेक प्रकारकी लीलायें करते रहते थे ॥ १३९–१४५ ॥ इति श्रीशतकोटिराम-चरितान्तर्गते श्रीमदानन्दरामायणे पं० रामतेजपाण्डेयविरचित'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासमन्विते राज्यकाण्डे पूर्वार्द्धे दशमः सर्गः ॥ १० ॥

श्रीरामदास कहने लगे—इसके बहुत दिनों बाद रामचन्द्रजी एक समय शिकार खेलनेके लिए सीता तथा भ्राताओं और बहुतसे हाथी-घोड़े आदिको साथ लेकर वनमें गये। मृगयाके आनन्दसे आनन्दित होकर वे बहुतसे वनोंको देखते हुए इधर-उधर घूम रहे थे। उस समय उनके साथ शिकार खेलानेवाले भीलोंका एक बहुत बड़ा दल था। रामचन्द्रजी जूता पहने थे, नीले रङ्गकी पगड़ी मस्तकपर बँधी थी, हरे कपड़े पहने हुए थे और नीले ही रङ्गकी गोधांगुली उँगलियोंमें बँधी थी। हाथमें धनुष-बाण धारण किये थे ॥ १–३ ॥ वे घोड़ेपर सवार थे, तलवार और ढाल बगलमें झूल रही थी। बहुतसे पैदल चलनेवाले राजे उनके साथ थे और उनके शरीर पर कवच पड़ा था। इस प्रकारका वेश धारण किये वे गहन वनमें जा पहुँचे। उस समय सीता पालकीकी खिड़कियोंसे रामकी ओर निहार रही थीं और रामचन्द्रजी अपने भ्राताओं और मित्रोंके साथ कुञ्जोंमें मृगोंको ढूँढते हुए हर्षपूर्वक मृगया कर रहे थे। कभी-कभी 'मारो-मारो, यह मृग वेगसे भागा जा रहा है' इस प्रकार चिल्ला पड़ते। यदि कोई उसे मारनेको नहीं पहुँच पाता तो वे उसे स्वयं मार दिया करते थे। एक

CC0. In Public Domain. Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

विटपोड्डीनसंत्रस्तलीनकेकिकुलाकुलाम् । हरिणीगणसंत्रस्तां धावच्छ्वापददिङ्मुखाम् ॥ ९ ॥
क्वचित्फेरवफूत्कारझिल्लीरावविभीषिताम् । खड्गयूथैः क्वचिल्लक्ष्मीं दधानामिव दंतिनाम् ॥ १० ॥
क्वचित्कोटरसंविष्टशुकां नादविनादिनीम् । मृगारिपदमुद्राभिर्मुद्रितां च क्वचित् क्वचित् ॥ ११ ॥
शार्दूलनखनिर्भिन्नरोहिद्रक्तारुणां क्वचित् । पीवरस्तनभारार्तसुस्निग्धमहिषीगणैः ॥ १२ ॥
अवरोधाजिरक्षोणिं सूचयन्तीमिव क्वचित् । क्वचिद्वृक्षघनच्छायां वनपुष्पसुगंधिनीम् ॥ १३ ॥
क्वचिल्लतागृहद्वारभ्रमंडलसतोरणाम् । अर्धनिःसृतनिर्मोकनागभीममहद्बिलाम् ॥ १४ ॥
वृत्तास्याजगरैर्व्याप्तां क्वचिन्निर्मुक्तसर्पिणीम् । क्वचिद्दावानलज्वालाशिखाव्याप्तमहीरुहाम् ॥ १५ ॥
ज्वलन्निकुंजनिर्गच्छद्वृकव्याघ्रत्रसत्कटाम् । व्यमुचंस्तु शुनां यूथं शशकेषु क्वचित् क्वचित् ॥ १६ ॥
पल्वलेषु च विश्रांतः पुनर्याति वनांतरम् । ततो मध्याह्नसमये निवासं सरसस्तटे ॥ १७ ॥
कारयामास सेनायाः सीतायाश्च रघूत्तमः । स्वयं मुदाऽकरोत्क्रीडामाखेटव्यूहसंवृतः ॥ १८ ॥
दुद्राव मृगपृष्ठेषु मुक्त्वा बाणं जघान तान् । एवं खेलति राजेंद्रे व्याघ्रवर्गे च वै द्विज ॥ १९ ॥
तत्र कोलाहलस्त्वतः पंचास्यो निर्गतो वनात् । स केसरी महावेगस्तीक्ष्णदंष्ट्रो भयावहः ॥ २० ॥
स्फुरद्वेगसमाक्रांतदुर्गमार्गमहीतलः । कदाचिद्गगनारूढः कदाचिद्भूमिगश्चलः ॥ २१ ॥
न रयाल्लक्ष्यतां याति धन्विनां पृष्ठगामिनाम् । क्वचिद्दृष्टिपथं याति दर्शनागोचरः क्वचित् ॥ २२ ॥
वक्रस्रोतोऽतिगंभीरं कंटकीद्रुमसंकुलम् । वृकव्याघ्रसमाकीर्णं पर्वतैश्च भयंकरम् ॥ २३ ॥
प्रविष्टो विषमारण्यं रामस्तस्य पदानुगः । दूराद्दूरं ततो गत्वा देशाद्देशं च निर्जनम् ॥ २४ ॥

झाड़ीको छोड़कर दूसरीमें और दूसरीको छोड़कर तीसरीमें, इस तरह बार बार इधर-उधर वनस्थलीमें दौड़ रहे थे ॥ ४–८ ॥ उस समय वहाँ वृक्षोंपर रहनेवाले मयूरके परिवार मारे डरके वृक्षोंके खोढ़रोंमें छिप जाते, हरिणियाँ चकित नेत्रोंसे इधर-उधर निहारती हुई भाग जातीं, बनैले जीव कोलाहलसे त्रस्त होकर अपनी माँदसे निकल पड़ते, कहीं अपने बिलसे निकलकर सर्पगण फुफकार मारते थे और कहीं झींगुरोंकी भीषण झनकार सुनाई देती थी। कहीं गैंड़ोंके समान शोभाको धारण किये हुए हाथी भाग रहे थे, कहीं कोटरमें बैठे हुए तोते अनेक प्रकारकी बोलियाँ बोल रहे थे, कहीं शेरोंके पैरोंके निशान दिखाई देते थे और कहीं किसी सिंहके द्वारा मारे गये हरिणके रुधिरसे पृथ्वी रक्तवर्ण हो गयी थी। कहींकी भूमि बड़े-बड़े स्तनोंवाली भैंसोंसे अन्तःपुरके आँगनसदृश मालूम पड़ती थी और कहींकी पृथ्वी घने वृक्षोंकी छायासे छायामयी हो गयी थी। कहीं वनपुष्पकी सुगन्धिसे वह स्थली सुगन्धमयी हो रही थी और कहीं प्राकृतिक रीतिसे लतामण्डप बन गया था। उसपर जो भौंरे मँडरा रहे थे, वे उसके तोरण सदृश जान पड़ते थे। कहीं साँपके शरीरसे आधी केंचुली छूटकर बिलके मुखपर लगी थी। इस प्रकार बड़े-बड़े सर्पोंकी बिलें दिखाई पड़ती थीं ॥ ९–१४ ॥ कहीं मुँह बाये हुए बड़े-बड़े अजगर सर्प बैठे थे। कहीं साँपोंकी केंचुलियाँ दिखायी देती थीं। कहींपर दावानल लगनेके कारण जलते हुए निकुञ्जोंमेंसे व्याघ्र-वृक आदि बड़े-बड़े जन्तु निकल-निकलकर भाग रहे थे। रामके साथ आये हुए शिकारी खरगोशोंपर कुत्ते दौड़ा रहे थे। कोई तलैया मिल जानेपर वे लोग वहाँ कुछ देर विश्राम करके आगे दूसरे वनमें चले जाते थे और मध्याह्नके समय किसी बड़े सरोवरपर सीता आदिके साथ आराम करते थे ॥ १५–१७ ॥ तीसरे पहर उठकर फिर शिकारमें लग जाते थे। रामचन्द्रजी किसी भी मृगको देखकर उसके पीछे दौड़ पड़ते और उसे बाणोंसे मार डालते थे। इस प्रकार रामचन्द्रजी मृगया कर ही रहे थे, तभी दूसरी ओरसे 'सिंह आया-सिंह आया' यह कोलाहल होने लगा। सिंह इससे ऊबकर और भी वेगसे चला। उसके बड़े-बड़े दाँत थे। देखनेमें वह बड़ा भयावना मालूम पड़ता था। वह बड़े वेगसे दुर्गम मार्गको तै करता हुआ इन लोगोंकी ओर बढ़ता आ रहा था। वह कभी छलांग मारकर आकाशमार्गसे चलता और कभी पृथ्वी-पर दौड़ता चलता था ॥ १८–२१ ॥ अतिशय वेगसे भागनेके कारण उसका पीछा करनेवाले लोग कभी उसे देख पाते थे—कभी नहीं। इस तरह भागता हुआ [illegible] पहुँच गया, जहाँ एक टेढ़ा-

CC0. In Public Domain. Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

एकाकी हयमारूढो विवेश गिरिगह्वरम् । सर्वे व्याधाश्च दूताश्च लक्ष्मणाद्याश्च बंधवः ।।२५।।
रामादर्शनसंभ्रांता बभ्रमुस्त इतस्ततः । अथ रामः केसरिणं जघान शितपत्रिणा ।।२६।।
ततः स दिव्यरूपेण नत्वा प्राह रघूत्तमम् । पुरा विद्याधरश्चाहं मया भुक्ता पतिव्रता ।।२७।।
मुनिपत्नी हठेनैव तया शप्तस्त्वहं क्रुधा । सिंहवन्निग्रहो यस्मात्त्वया मयि कृतोऽद्य हि ।।२८।।
अतस्त्वं मद्गिरा सिंहो भवाद्यैव महावने । तदा मया प्रार्थिता सा पुनर्मामाह राघव ।।२९।।
चिराद्रामशरस्पर्शाच्छापान्मुक्तिर्भवेत्तव । अतोऽद्य त्वच्छरस्पर्शाच्छापान्मुक्तश्चिरादहम् ।।३०।।
इत्युक्त्वा राममामंत्र्य स स्वर्गं प्रययौ मुदा । ततः स रामचंद्रोऽपि तुरगस्थो मुदान्वितः ।।३१।।
तत्र तस्थौ क्षणं यावत्तावत्तद्गिरिगह्वरे । गुहाद्वारि शिलामेकां ददर्श योजनायताम् ।।३२।।
महतीं तां शिलां दृष्ट्वा रामो विस्मितमानसः । धनुष्कोट्याऽक्षिपद्दूरं गुहायां संविवेश ह ।।३३।।
कियद्दूरं ततो गत्वाऽग्रे प्रकाशं ददर्श सः । तत्र द्रोण्यां पर्वतस्य तपस्यंत्यः स्त्रियः प्रभुः ।।३४।।
ददर्श रामश्चत्वारः किंचिदंतरसंस्थिताः । अस्थिचर्मावशिष्टैश्च देहैर्दृग्गोचरीकृताः ।।३५।।
श्वासैः संजीविताश्चेति ज्ञातवांस्ता रघूत्तमः ।।३६।।
निजरूपाणि चत्वारि कृत्वादौ तत्पुरः स्थितः । अब्रवीन्मधुरं वाक्यं भिन्नरूपेण ताः पृथक् ।।३७।।
वरयध्वं वरान्नार्यः प्रसन्नोऽहं रघूत्तमः । ततस्ता रामसंस्पर्शान्मांसरक्तादिधातुभिः ।।३८।।
पूरितानि शरीराणि ददृशुर्नयनैर्निजैः । श्रुत्वा तद्रामवाक्यं तास्तदा स्वपुरतोऽक्षिभिः ।।३९।।

मेढ़ा नाला बह रहा था। बहुतसे कँटीले वृक्षोंकी झाड़ियाँ उसके आस-पास उगी थीं। चारों ओरसे पर्वतकी दीवारें खड़ी थीं और भेड़िये तथा व्याघ्र आदि हिंसक जीव उसमें भरे पड़े थे। ऐसी अवस्थामें भी राम उसके पीछे-पीछे दौड़ते चले जा रहे थे। उस समय रामचन्द्रजी अपने साथियोंसे बिछुड़कर बहुत दूर निर्जन वनमें उसके साथ निकल गये। अन्तमें वह सिंह पर्वतकी एक विशाल कन्दरामें घुस गया और रामचन्द्रजी भी घोड़ेपर चढ़े हुए उसके साथ कन्दरामें घुस गये। इधर रामके लक्ष्मणादि भ्राता, उनके दूत तथा शिकार खेलानेवाले बहेलिये घबराकर रामको इधर-उधर खोजने लगे। उसी समय रामने सिंहको एक विकराल बाणसे मारा ॥ २२–२६ ॥ तब वह एक दिव्य पुरुषके रूपमें परिणत हो और उनको प्रणाम करके कहने लगा—हे राम! मैं पहले विद्याधर था। मैंने एक बार एक पतिव्रता मुनिपत्नीके साथ हठात् भोग किया। जिससे कुपित होकर उसने मुझे शाप दे दिया कि तूने सिंहके समान बरबस मेरी आबरू उतारी है, इसलिए मेरी वाणीसे तू अभी सिंह हो जा। इस प्रकार शाप पा जानेपर मैंने उससे विनती की तो उसने कहा कि आजसे बहुत दिनों बाद जब रामचन्द्रजी तुझे अपने बाणसे मारेंगे, तब तू शरस्पर्श होते ही शापसे मुक्त हो जायगा। सो बहुत समय बाद आपकी दयासे मैं आज उस शापसे मुक्त हो गया। इस तरह अपना पूर्ववृत्तांत सुनानेके बाद उसने रामसे आज्ञा माँगी और अपने लोकको चला गया। रामचन्द्रजी अपने घोड़ेपर बैठे ही बैठे थोड़ी देर वहाँ ठहरे तो उन्होंने क्या देखा कि उस गुहाद्वारपर योजनों लम्बी-चौड़ी एक शिला लगी हुई है। इतनी बड़ी शिला देखकर राम विस्मित हुए और अपने धनुषकी कोरसे उसे दूर हटा दिया। तब वे उसके भीतर घुसे। कुछ दूर आगे जानेपर उन्हें कुछ प्रकाश-सा दिखायी पड़ा। और आगे बढ़े तो उन्होंने क्या देखा कि चार स्त्रियाँ तपस्या करती हुई बैठी हैं। उनके शरीरमें हड्डी और चमड़ेके सिवाय मांसका नाम भी नहीं था। उनका श्वास चल रहा था। इससे उनको यह ज्ञात हुआ कि वे स्त्रियाँ अभी मरीं नहीं, प्रत्युत जीवित हैं। ऐसी अवस्थामें रामने अपना चार शरीर बनाया और सबके सम्मुख जाकर कहने लगे—"हे नारियो! तुम्हारी जो इच्छा हो, वह वर माँग लो। मैं राम तुम लोगोंकी तपस्यासे प्रसन्न हूँ।" इसके अनन्तर रामने अपने हाथों उनके शरीरका स्पर्श किया। जिससे उनकी सूखी देहमें रक्त-मांसादिका संचार हो गया ॥ २७–३८ ॥ शरीर भर जानेपर उन सबोंने अपने नेत्रोंसे रामको देखा। उस समय प्रत्येक स्त्रीके सामनेवाले राम कोटि सूर्यकी दीप्तिके समान देदीप्यमान

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नार्यो विलोकयामासुः सर्वाः श्रीरघुनायकान् । कोटिसूर्यप्रतीकाशांश्चापबाणासिधारिणः ॥४०॥
हयारूढान्नृवेषेण सर्वासां पुरतः स्थितान् । चतुर्मूर्तीश्चैकरूपास्ता दृष्ट्वा कंजलोचनाः ॥४१॥
अति विस्मयमापन्नास्तदोचुस्तान् पृथक् पृथक् । के यूयं वाजिसंस्था हि कुतः सर्वे समागताः ॥४२॥
यूयं देवा दानवा वा गम्यते क्वाधुना पुरः । अस्माकं कथ्यतां सर्वं किमर्थं भाषिता वयम् ॥४३॥
अस्माकं दुःशरीराणि कमनीयानि वै कथम् । जातान्यद्य महादैत्यो दुंदुभिः सोऽस्ति वा मृतः ॥४४॥
इति तासां वचः श्रुत्वा राघवस्ता वचोऽब्रवीत् । अहं चतुर्भिर्देवैश्च रामस्त्वेको न संशयः ॥४५॥
सप्तद्वीपपतिः श्रीमान् सूर्यवंशसमुद्भवः । मृगयार्थं समायातः केसरी निहतो वने ॥४६॥
धनुष्कोट्या शिलां त्यक्त्वा युष्मदंतिकमागतः । स्वकरस्पर्शमात्रेण शरीराणि शुभानि हि ॥४७॥
मया कृतानि युष्माकं वालिना दुंदुभिर्हतः । स मया निहतो वाली रावणस्यान्तकारिणा ॥४८॥
संभाषिता वरान् दातुं यूयं सर्वा मयाऽद्य हि । नाग्रेऽस्ति मम कार्यं हि परिवर्त्य पुरीं व्रजे ॥४९॥
यत्पृष्टं तन्मया चोक्तं का यूयं कथ्यतां मम । किमर्थं दुंदुभिः पृष्टः का वांछा व्रियतां वरान् ॥५०॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा दुन्दुभिर्निहतस्त्विति । शिलां निष्कासितां चापि सर्वास्तुष्टिं परां ययुः ॥५१॥
ऊचुः सर्वास्तदा राममानन्दोत्फुल्ललोचनाः । वयं ब्राह्मणपुत्र्यश्च चत्वारस्त्वथ षोडश ॥५२॥
सहस्राणि नृपाणां च वैश्यानां कन्यकाः पुरा । समानीता बलादेव तेन दुन्दुभिना प्रभो ॥५३॥
लक्षस्त्रीभिर्विवाहांश्च सर्वानेकदिने त्वहम् । करोमीति मन्यमानः स्त्रीरत्नानि जहार सः ॥५४॥
यानि यानि जहार स्त्रीरत्नानि रघुनन्दन । अस्यां द्रोण्यां स्थाप्य तानि दत्त्वा द्वारि शिला वराव ॥५५॥
अचलां त्वद्विनान्यैश्च स्त्रीः समानेतुमादरात् । पुनश्चिरं गतो दैत्यो वयमत्रैव संस्थिताः ॥५६॥

हो रहे थे और धनुष-बाण तथा तलवार लिये हुए थे ॥ ३९ ॥ ४० ॥ वे मनुष्यका वेश धारण करके घोड़ेपर सवार होकर एक-एक स्वरूपसे उन चारोंके सम्मुख खड़े थे और उन सब स्त्रियोंका भी समान स्वरूप था और एक ही तरहकी वेष-भूषा थी। ऐसे रामको देखकर उन स्त्रियोंको बड़ा आश्चर्य हुआ और वे कहने लगीं—"आप लोग कौन हैं ? घोड़ेपर सवार होकर कहाँसे आप आ रहे हैं ? आप सब देवता हैं या दानव ? आप कहाँ जायँगे ? कृपया हमें यह भी बतलाइये कि आप हमसे क्यों बात करना चाहते हैं ? हम लोगोंका यह जीर्ण-शीर्ण शरीर इस प्रकार सुन्दर कैसे हो गया ? वह दुष्ट दुन्दुभी जीवित है या मर गया ?" ॥ ४१-४४ ॥ इस प्रकार उनकी बातें सुनकर रामने उन सबसे कहा—"सूर्यवंशमें उत्पन्न और सातों द्वीपोंका अधिपति राम नामका मैं एक राजा हूँ। इस समय अपने एक ही रूपको चार भागोंमें विभक्त करके तुम सबके सम्मुख उपस्थित हुआ हूँ। मैं यहाँ जङ्गलमें शिकार खेलने आया था और इसी कन्दरामें मैंने एक सिंहको मारा है। फिर तुम्हारे गुफा द्वारपर एक लम्बी-चौड़ी शिला देखी। उसे अपने धनुषकी कोरसे दूर हटाकर तुम्हारे समीप आया और अपने हाथके स्पर्शसे तुम्हारे जीर्ण शरीरको पवित्र तथा सुन्दर बना दिया है। दुन्दुभी राक्षसको बालिने मार डाला। रावणका विनाश करनेवाले मुझ रामने उस बालीको भी मार डाला है ॥ ४५-४८ ॥ केवल तुम्हें वरदान देनेकी इच्छासे मैंने तुमसे संभाषण किया है। अब यहाँसे आगे जानेका हमारा कोई कार्यक्रम नहीं है। इससे अपनी अयोध्या नगरीको लौट जाऊँगा। तुमने हमसे जो कुछ पूछा, मैंने उसका उत्तर दे दिया। अब यह बताओ कि तुम कौन हो ? दुन्दुभीको तुमने क्यों पूछा ? तुम्हारी क्या कामना है ? इच्छित वर मुझसे माँग लो।" जब उन सबोंने रामके मुखसे यह सुना कि दुन्दुभी मार डाला गया और हमारे द्वारपर लगी हुई शिला भी हट गयी है तो वे बहुत प्रसन्न हुईं और आनन्दसे प्रफुल्लित होकर उन्होंने कहा—हे राम ! बहुत दिन हुए, वह दुन्दुभी राक्षस हम चार ब्राह्मणकी पुत्रियों तथा सोलह हजार क्षत्रियों तथा वैश्योंकी कन्याओंको हर लाया था। उसकी यह हार्दिक इच्छा थी कि मैं एक ही दिनमें एक लाख स्त्रियोंके साथ विवाह करूँगा। इसी विचारसे वह अच्छी-अच्छी कन्याओंका अपहरण किया करता था ॥ ४९-५४ ॥ हे रघुनन्दन ! वह जिन सुन्दरियोंको लाता था, उन्हें इसी कन्दरामें डालकर दरवाजेपर एक इतनी बड़ी शिला लगा दिया करता

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वर्तन्तेऽग्रे नृपाणां च वैश्यानां बालिकाः प्रभो । वायुपर्णाशनाः सर्वाः श्रीविष्णवर्पितमानसाः ॥५७॥
तत्तासां वचनं श्रुत्वा भिन्नरूपैः पुनः प्रभुः । ता उवाच स्त्रियः सोऽहं विष्णुरेव न संशयः ॥५८॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा पुनस्ता राममब्रुवन् । दर्शयस्व निजं विष्णुरूपं चेत्सत्यवागसि ॥५९॥
ततस्ता दर्शयामास विष्णुरूपं निजं प्रभुः । तानि चत्वारि रूपाणि परावर्त्य रघूत्तमः ॥६०॥
ततस्ताः पुरतो विष्णुं दृष्ट्वा नेमुः स्वमस्तकैः । ततो विष्णुः स ताः प्राह वः संदेहो गतो न वा ॥६१॥
ता ऊचुर्दर्शनात्तेऽद्य भवक्लेशा गता हि नः । कियांस्तु तत्र सन्देहस्त्वज्ञानजनितः प्रभो ॥६२॥
ततः पुनः क्षणाद्रामो रूपं ता दर्शयन्मुदा । एकमेव हि सर्वासां मध्ये जनकजापतिः ॥६३॥
ततो रामोऽब्रवीत्ताः स वरं वरयतामिति । ता ऊचुः कामबाणेन पीडिता राघवं मुदा ॥६४॥
भव भर्ता त्वमेवाद्य गांधर्वविधिना वने ।
अस्माभिस्त्वं कुरुष्वात्र सुखं क्रीडां चिरं प्रभो ॥६५॥
ततो नय पुरीं स्वीयां नस्त्वं माऽन्यद्विचिंतय । तत्तासां वचनं श्रुत्वा राघवो वाक्यमब्रवीत् ॥६६॥
एकपत्नीव्रतं मेऽस्ति न वाक्यं मम वै मृषा । ततस्ता विह्वला भूत्वा निपेतुर्जगतीतले ॥६७॥
पुनस्ताः प्राह रामः स शृणुध्वं वचनं मम । द्वापरे कृष्णरूपेण यूयं क्रीडां भजिष्यथ ॥६८॥
मित्रविंदा नाग्नजिती भद्राऽन्या लक्ष्मणाह्वया । एवं नामानि युष्माकं भविष्यंति तदा मया ॥६९॥
भविष्यंति विवाहाश्च सर्वासां नात्र संसयः । तदा नानाविधान् भोगान् भजध्वं वै मया सह ॥७०॥
तद्रामवचनं श्रुत्वा किंचित्तुष्टमनाः स्त्रियः । रामं प्रोचुः पुनर्वाक्यं त्वमग्रे गन्तुमर्हसि ॥७१॥
ताभिः शनैस्ततो रामो ययौ तुरगसंस्थितः । योजनोपरि ताः सर्वाः सहस्रं षोडशाः शुभाः ॥७२॥

था कि जिसे आपके सिवाय किसी अन्य व्यक्तिमें हटानेकी सामर्थ्य नहीं थी । वह हम लोगोंको इस कन्दरामें डालकर कहीं चला गया है । तबसे हम ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्याओंकी कन्याएं यहां पड़ी हुई हैं । वायु तथा वृक्षोंका पत्तियाँ हमारा भोजन हैं और श्रीविष्णुभगवान्‌के चरणोंमें हमने अपने मन लगा दिये हैं। इस प्रकार उनकी बात सुनकर सबके समक्ष एक-एक स्वरूपसे खड़े श्रीरामचन्द्रजीने कहा कि जिन विष्णुमें तुमने अपना मन लगा रखा है, वह मैं ही हूँ । रामकी बात सुनकर उन स्त्रियोंने कहा कि यदि तुम यह सच कह रहे हो तो अपना विष्णुरूप हमें दिखाओ । इसके अनन्तर भगवान्‌ने अपने उन चारों स्वरूपोंको अपनेमें समेट लिया और विष्णुरूपसे सबको दर्शन दिया । जब उन्होंने विष्णुभगवान्‌को अपने सम्मुख देखा तो मस्तक झुकाकर प्रणाम किया। विष्णुभगवान्‌ने उनसे पूछा कि अब तो तुम्हारा सन्देह निवृत्त हुआ ? उन्होंने कहा कि आपके इन पुनीत दर्शनोंसे मेरा सब क्लेश दूर हो गया तो फिर अज्ञानसे जायमान सन्देहके विषयमें क्या कहना है ॥ ५५-६२ ॥ क्षणभरके बाद वे फिर रामके स्वरूपसे उनके सम्मुख खड़े दिखाई दिये और उनसे बोले कि तुम लोगोंकी जो इच्छा हो, वह वर माँगो । तब कामबाणसे पीड़ित होकर उन स्त्रियोंने कहा कि यदि आप हमारे ऊपर प्रसन्न हैं तो हम लोगोंके साथ गान्धर्व विवाह करके हमारे पति बनिये और अधिक समयतक आनन्दपूर्वक इस कन्दरामें हम लोगोंके साथ विहार कीजिए । उनकी यह प्रार्थना सुनकर रामने कहा कि ऐसा तो नहीं हो सकता । क्योंकि मैं एकपत्नीव्रतधारी हूँ । मैं कभी झूठ नहीं बोलता, तुमसे सच कह रहा हूँ । यह बात सुनते ही वे स्त्रियाँ मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ीं ॥ ६३-६७ ॥ ऐसी दशामें राम उनको समझाते हुए कहने लगे—इस प्रकार अधीर न होकर मेरी बात सुनो । अभी तो नहीं द्वापर युगमें कृष्णरूपसे मैं तुम लोगोंके साथ विहार करूँगा। मित्रविन्दा, नाग्नजिती, भद्रा तथा लक्ष्मणा इस प्रकार तुम लोगोंका नाम पड़ेगा और उस समय तुम सबका विवाह मेरे साथ होगा। इसमें कोई सन्देह नहीं है । उस समय तुम सब मेरे साथ नाना प्रकारके सुख भोगोगी । रामकी बातोंको सुनकर उनका मन कुछ सन्तुष्ट हुआ और कहा कि अब आप चाहें तो जा सकते हैं। राम उन चारों कन्याओंके साथ धीरे-धीरे आगे बढ़े । एक योजन आगे जाकर गण्डकी नदीके किनारे एक झाड़ीमें

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ददर्श गण्डकीतीरे वृक्षषण्डे रघूद्वहः । निमीलितदृशः शुष्कास्तपसा दग्धयौवनाः ॥७३॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे पूर्वार्धे द्विजकन्याचतुष्टयवरदानं नामैकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

द्वादशः सर्गः

(सोलह हजार ललनाओं तथा कालिन्दी आदि चार स्त्रियोंको रामका बरदान)

श्रीरामदास उवाच

अथ रामः शनैः सर्वाः स्पृष्ट्वा निजकरेण ताः । कृत्वा तारुण्यपूरौघपूरिताः प्राह सादरम् ॥ १ ॥
पूर्ववत्सकलं वृत्तं सर्वाः संश्राव्य विस्तरात् । वरं वरयतां शीघ्रमित्युक्त्वा च रघूत्तमः ॥ २ ॥
हतं तं दुन्दुभिं श्रुत्वा हर्षोत्फुल्लाननाः स्त्रियः । पूर्ववद्विष्णुरूपाणि सहस्राणि हि षोडश ॥ ३ ॥
सन्दर्शितानि रामेण तावंति च स्थितानि हि । रामरूपाणि ता दृष्ट्वा ज्ञात्वा विष्णुं परात्परम् ॥ ४ ॥
तं वरान्वरयामासुस्त्वन्नो भर्ता भव प्रभो । ततो राममुखाच्छ्रुत्वा चैकपत्नीव्रतस्थितम् ॥ ५ ॥
परस्परं ताः सम्मन्त्र्य प्रोचुः सर्वा मृगीदृशः । मया वृतस्त्वया चायं त्वया वृतस्तथा मया ॥ ६ ॥
एवं तासु च सर्वासु वदन्तीषु रघूत्तमः । श्रुत्वा तद्वचनं शिष्य तदा चित्तेऽविचारयत् ॥ ७ ॥
इमा वदंति किं सर्वा मां श्रुत्वाऽपि व्रतस्थितम् । बलात्कारेण मां भोक्तुं मन्त्रयन्ति परस्परम् ॥ ८ ॥

ब्रह्मरुद्रमघवादयः सुरा ये च सिद्धमुनयः पुरातनाः ।
तेऽपि योगबलिनो विमोहिता लीलया तदबलाभिरद्भुतम् ॥ ९ ॥
योषितां नयनतीक्ष्णसायकैर्भ्रूलतासुदृढचापनिर्गतैः ।
धन्विना मकरकेतुना हतः कस्य नो पतितो मनोमृगः ॥१०॥
तावदेव दृढचित्तता नृणां तावदेव गणना कुलस्य च ।
तावदेव तपसः प्रगल्भता तावदेव नियमव्रतादयः ॥११॥

उन सोलह हजार स्त्रियोंको देखा । वे सब आँखें मूँदे थीं, तपस्यासे उनका शरीर सूख गया था और यौवन नष्ट हो चला था ॥ ६८–७३ ॥ इति श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपाण्डेयविरचित'ज्योत्स्ना' भाषाटीकासहिते राज्यकाण्डे पूर्वार्द्धे एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

श्रीरामदास बोले—इसके अनन्तर रामने अपने हाथके स्पर्शसे उन सबको यौवनपरिपूर्ण कर दिया तो वे भी पहलेवाली चारों स्त्रियोंके समान अपना वृत्तान्त बता गयीं । रामने उनसे कहा कि तुम्हारी जो इच्छा हो, वह वरदान मुझसे माँग लो । उन्होंने भी जब दुन्दुभीके मरनेका समाचार सुना तो बहुत प्रसन्न हुईं । इसके अनन्तर रामने उन्हें भी अपना विष्णुरूप दिखा तथा सोलह हजार रामरूप धरकर प्रत्येक स्त्रीको अलग-अलग दर्शन दिया । स्त्रियोंने इस प्रकार रामरूपको देखकर उन्हें सर्वश्रेष्ठ विष्णुभगवान् जाना ॥ १–४ ॥ उन्होंने भी पहलेवालियोंकी तरह रामसे प्रार्थना की कि आप मेरे पति बनें । जब उनको रामने अपनेको एकपत्नीव्रती बतलाया तो वे आपसमें सलाह करके कहने लगीं कि जैसे मैंने इनको पसन्द किया है, उसी तरह तुमने भी तो किया है । तब आओ, हम सब मिलकर कोई ऐसा प्रयत्न करें कि जिससे हमारी कामना पूर्ण हो जाय । इस प्रकार जब रामने उनकी सलाह सुनी तो अपने हृदयमें विचार करने लगे कि एकपत्नीव्रतमें स्थित देखकर भी ये स्त्रियाँ बरबस मेरे साथ संभोग करना चाहती हैं ॥ ५–८ ॥ ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्रादिक देवता एवं जितने पुरातन सिद्ध-मुनि हो गये हैं, वे सब योगी होकर भी कामिनियोंकी अद्भुत लीलासे मुग्ध हो गये थे ॥ ९ ॥ स्त्रियोंके नेत्ररूपी सायकके धनुर्धारी कामदेव जिसके ऊपर छोड़ता है तो किसका मनरूपी

CC0. In Public Domain. Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

यावदेव वनितोत्सवासवैर्न माद्यति द्रुतमदेन पूरुषः ।
मोहयंतु मदयन्तु रागिणं योषितः स्वचरितैर्मनोहरैः ॥१२॥
मोहयन्ति मदयन्ति मामिमा धर्मरक्षणपरं हि कैर्गुणैः ।
मांसरक्तमलमूत्रपूरिते योषितां वपुषि निर्गुणेऽशुचौ ॥१३॥
कामिनस्तु परिकल्प्य चारुतामारभन्ति सुविमूढचेतसः ।
दारुणः परिकीर्तिताऽङ्गनासन्निधिर्विमलबुद्धिवर्तिभिः ॥१४॥
यावदेव न समीपमागतास्तावदेव हि व्रजाम्यदृश्यताम् ।
तर्हि मे व्रतमिदं सुनिर्मलं नान्यथा कथमहं करोम्यहम् ॥१५॥

अथवा किं करिष्यन्ति मामेकदयिताप्रियम् । इति निश्चित्य श्रीरामस्तत्र तूष्णीं स्थितोऽभवत् ॥१६॥
एतस्मिन्नन्तरे सर्वास्तास्तं प्रोचुर्नृपोत्तमम् । वृतस्त्वं नूनमस्माभिर्नात्र कार्या विचारणा ॥१७॥
एकपत्नीव्रतं किं ते पार्थिवस्य रघूत्तम । अस्ति चेत्पूर्णतां प्राप्तं तत्फलं भोक्तुमर्हसि ॥१८॥
इत्युक्त्वा तास्तदा सर्वा गत्वा तत्संनिधिं जवात् । सव्यापसव्यबन्धेन भुजपाशान् प्रचक्रिरे ॥१९॥
तद्दृष्ट्वा राघवः प्राह शृणुध्वं वचनं मम । युष्माभिरुच्यते भद्रमनुकूलं प्रियं वचः ॥२०॥
व्रतिनस्तन्न योग्यं मे मा खेदं गन्तुमर्हथ । आकर्ण्य रामवाक्यानि तमूचुस्ताः समन्ततः ॥२१॥

सकामध्वनिनोत्कण्ठाः कोकिला इव माधवे ।

षोडशसहस्रस्त्रिय ऊचुः

धर्मादर्थोऽर्थतः कामः कामाद्धर्मफलोदयः ॥२२॥

इत्येव निश्चयं शास्त्रे वर्णयन्ति विपश्चितः । स कामो व्रतबाहुल्यात्पुरस्ते समुपस्थितः ॥२३॥
सेव्यतां विविधैर्भोगैः स्वर्गभूमिरियं ततः । श्रुत्वा तद्वचनं तासां रामस्ताः प्राह सस्मितः ॥२४॥

मृग उस बाणसे घायल नहीं हो जाता ॥ १० ॥ मनुष्यका चित्त तभी तक दृढ़ रहता है, तभी तक कुलकी मर्यादा रहती है, तभी तक तपस्यामें मन लगता है, तभी तक नियम-व्रत आदि होते हैं, जबतक स्त्रियोंके चञ्चल कटाक्षोंसे पुरुषका मन मतवाला नहीं हो जाता और जबतक स्त्रियाँ उनपर मोहिनी डालकर अपने मनोहारी हाव-भावोंसे पागल नहीं बना देतीं ॥ ११ ॥ १२ ॥ ये मुझे अपनी धर्मरक्षामें तत्पर जानकर भी अपने गुणोंसे मुग्ध करना चाहती हैं। मांस, रक्त और मल-मूत्रसे परिपूर्ण स्त्रियोंकी अपवित्र देहपर कामी पुरुष सौन्दर्यकी कल्पना करके आनन्द लूटते हैं। मेरी समझसे तो वे लोग पूरे बावले हैं। क्योंकि विमल बुद्धिवाले लोगोंका कहना तो यह है कि स्त्रियोंका संसर्ग बड़ा ही दारुण परिणामकारी होता है। अच्छा, जबतक ये मेरे समीप नहीं आ जातीं। इसी बीच मैं यदि चल दूँ तो अच्छा हो, मेरा व्रत निर्मल रह जाय। इसके सिवाय और कोई उपाय भी तो नहीं दीखता ॥ १३-१५ ॥ अच्छा, यह भी देख लूँ कि ये मेरे साथ क्या करती हैं। यह निश्चय करके रामचन्द्रजी चुपचाप बैठ गये ॥ १६ ॥ उसी समय उन सब स्त्रियोंने एक स्वरसे कहा कि हम लोगोंने आपको अपना पति मान लिया है। अब आप किसी प्रकारका विचार मत करिये ॥ १७ ॥ हे राम ! क्या आपने एकपत्नीव्रत पालन किया है ? यह यदि सत्य है तो अब उससे प्राप्त फलका उपभोग कीजिए ॥ १८ ॥ ऐसा कहकर वे सब उनके पास पहुँचीं और दाहिनी-बायीं दोनों भुजाओंसे रामको अपने भुजपाशमें भर लेनेकी चेष्टा करने लगीं ॥ १९ ॥ ऐसी अवस्थामें रामने उनसे कहा कि आप सब जो कुछ कह रही हैं, वह ठीक ही है। किन्तु हमारे जैसे व्रती मनुष्यके लिए वह उचित नहीं है। इस लिए तुम सब किसी प्रकारका खेद न करके ऐसी दुश्चेष्टासे अलग हो जाओ। इस तरह रामकी वाणी सुनकर चारों ओरसे वे सब कहने लगीं। उस समय कामवश उनके कण्ठकी ध्वनि वसन्त ऋतुके कोकिलके समान मधुर सुनाई देती थी ॥ २० ॥ २१ ॥ सोलह हजार स्त्रियाँ बोलीं—धर्मसे अर्थकी प्राप्ति होती है, अर्थसे काम प्राप्त होता है और कामसे धर्मफल मिलता है। विद्वान् लोग शास्त्रोंका यही निर्णय बतलाते हैं। वही काम आपके

CC0. In Public Domain. Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

श्रीरामदास उवाच

वरान् दास्यामि युष्माकं नान्यं श्रोष्यामि किंचन । इत्युक्ताः पुनरूचुस्ताः किं त्वं वदसि राघव ॥२५॥

ता ऊचुः

दिव्यौषधं ब्रह्मधियो रसायनं सिद्धिर्निधिः साधुकुला वरांगनाः ।
मन्त्रस्तथा ह्यन्नजले च धर्मतो नेमे निषेध्याः सुधिया समागताः ॥२६॥
कार्यं तु दैवाद्यदि सिद्धिमागतं तस्मिन्नुपेक्षां न च यांति नीतिगाः ।
यस्मादुपेक्षा न पुनः फलप्रदा तस्मान्न दीर्घीकरणं प्रशस्यते ॥२७॥
सांद्रानुरागाः कुलजन्मनिर्मलाः स्नेहार्द्रचित्ताः सुगिरः स्वयम्वराः ।
कन्याः सुरूपाः परिपूर्णयौवना धन्या लभन्तेऽत्र नरास्तु नेतरे ॥२८॥

क्व वयं भूरिसौंदर्यः क्वैकपत्नीव्रतं तव । तस्मादस्मानिदानीं त्वं मा निराकर्तुमर्हसि ॥२९॥
गांधर्वेण विवाहेन नान्यथा नोऽस्तु जीवितम् । श्रुत्वा वाक्यं तु तत्तासां राघवः प्राह ताः पुनः ॥३०॥
भो मृगाक्ष्यः कथं त्याज्यो धर्मो धर्मविचक्षणैः । धर्मश्चार्थश्च कामश्च मोक्षश्चैतच्चतुष्टयम् ॥३१॥
यथोक्तं सफलं ज्ञेयं विपरीतं तु निष्फलम् । तस्मान्मयोक्तं यत् पूर्वमेकपत्नीव्रतं निजम् ॥३२॥

अस्मिन् जन्मनि तन्नाहं त्यक्तुमिच्छामि भोः स्त्रियः ।
एवं श्रुत्वाऽऽशयं तस्य ताः समीक्ष्य परस्परम् ॥३३॥

करात्करान् प्रमुच्यास्य जगृहुरंघ्रिं तदाऽबलाः । अन्योन्यमंघ्रिं रामस्य भुजौ तु जगृहुश्च ताः ॥३४॥
एवं ताभिर्वेष्टमानमात्मानं वीक्ष्य राघवः । अन्तर्धानमगात्तत्र तासां मध्ये क्षणात् प्रभुः ॥३५॥
किं कुर्वंति त्विमाः सर्वा ह्यन्तर्धानं गते मयि । एवं तासां कौतुकं हि गुप्तरूपो ददर्श सः ॥३६॥

व्रतकी प्रबलतासे स्वयं प्राप्त हुआ ॥ २२ ॥ २३ ॥ विविध प्रकारके भोगोंका उपभोग करेंगे तो इसमें सन्देह नहीं है कि यह मर्त्यलोक ही आपके लिये स्वर्ग बन जायगा। उनकी बात सुनकर चकराये हुए रामचन्द्रजी कहने लगे कि सिवाय वर माँगनेके मैं तुम्हारी एक बात भी नहीं सुनूँगा। रामके ऐसा कहनेपर उन स्त्रियोंने कहा—हे राघव ! आप कह क्या रहे हैं ? ॥२४॥२५॥ दिव्य औषधि, ब्रह्मको जाननेसे सम्बन्ध रखनेवाली बातें, रसायन, सिद्धिके खजाने, निधियाँ, अच्छी कलायें, अच्छी स्त्री और अन्न-जल पाकर सज्जनजन कभी नहीं छोड़ते ॥ २६ ॥ जो कोई काम दैवात् सिद्ध हो सकता है तो नीतिज्ञ जन उसकी कभी उपेक्षा नहीं करते। फिर उसकी उपेक्षा करनेसे कोई लाभ नहीं हो तो उसकी उपेक्षा ही क्यों की जाय। व्यर्थका आडम्बर बढ़ानेको क्या आवश्यकता ? ॥ २७ ॥ गाढ़े प्रेमयुक्त, अच्छे कुलमें उत्पन्न, जिनका चित्त स्नेहसे आर्द्र हो गया हो, जो अच्छी-अच्छी बातें करती हों, जो वरके पास स्वयं आ पहुँची हों, जिनका सुन्दर स्वरूप हो और जिनका यौवन भी पूरी तरह उभड़ आया हो। ऐसी स्त्रियोंको जो लोग पाते हैं, वे धन्य हैं। साधारण श्रेणीके लोग ऐसी स्त्रियोंको नहीं पाते ॥ २८ ॥ कहाँ हम जैसी सुन्दरी स्त्रियाँ और कहाँ आपका एकपत्नीव्रत। इस कारण हम फिर भी कहती हैं कि आप हमारा निरादर न कीजिए ॥ २९ ॥ बिना आपके साथ गान्धर्व विवाह किये हम लोग नहीं जी सकेंगी। उनकी बात सुनकर रामने कहा। श्रीराम बोले—हे मृगके समान नेत्रोंवाली स्त्रियों ! तुम-कैसे यह कह रही हो कि कामको प्राप्त देखकर धर्मका परित्याग कर दो। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चार पदार्थ हैं। यदि एकके बाद एकका अच्छी तरह साधन किया जाता है तो वह सफल होता है। अन्यथा निष्फल हो जाता है अथवा विपरीत फल सामने आता है। अतः जो मैंने अपने एकपत्नीव्रतका कारण बतलाया है, उसका परित्याग नहीं कर सकता। इस प्रकार रामका आशय जानकर वे आपसमें एक दूसरेका मुँह निहारने लगीं ॥ ३०-३३ ॥ तदनन्तर हाथ छोड़कर स्त्रियोंने रामका पैर पकड़ लिया, किन्तु कुछ स्त्रियोंने हाथ भी पकड़े रक्खा ॥ ३४ ॥ इस तरह उन लोगोंसे आपनेको घिरा हुआ देखकर राम वहाँ ही अन्तर्धान हो गये।

CC-0. In Public Domain Kirtikant Sharma Nagpur Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अदृष्ट्वा राघवं सर्वास्ताः क्षणात्प्रमदोत्तमाः । दृष्ट्वा तदद्भुतं कर्म विस्मयाविष्टमानसाः ॥३७॥
वित्रस्तहृदयाः सर्वाः कुरंग्य इव कातराः । संभ्रांतनयना दीना इत्यूचुस्ताः परस्परम् ॥३८॥
व्याप्तं च हृदयं तासां तदैव विरहाग्निना । ज्वलज्ज्वालानलेनैव सुस्निग्धं सार्द्रकाननम् ॥३९॥
त्यजेंद्रजालिकां मायां कांत दर्शय सत्वरम् । स्वात्मानं नर्मणा युक्तं प्राग्ग्रासे मक्षिकाऽपतत् ॥४०॥

स्त्रिय ऊचुः

हा कष्टं दर्शितः कस्माद्धात्रा किं रचितं त्विदम् ।
ज्ञातं महत्तमं तापं दातुं नस्त्वं समागतः ॥४१॥
कच्चित्ते निर्दयं चेतः कच्चिदस्मान् परीक्षसि ।
कच्चिद्रुष्टोऽसि हे कांत कच्चिन्मुष्णासि नो मनः ॥४२॥
कच्चिन्नो प्रत्ययोऽस्मासु कच्चिदस्मासु नो रतिः ।
कच्चिद्विनोदयसि नः कच्चिन्मायाविशारदः ॥४३॥

कच्चिच्चित्ते प्रवेष्टुं त्वं वेत्सि विज्ञानलाघवम् । कच्चिद्विनापराधं हि त्वमस्मासु प्रकुप्यसि ॥४४॥
कच्चिद्दुःखं न जानासि परेषां विप्रलंभजम् । त्वद्दर्शनं विना नूनं हृदयेश्वर सांप्रतम् ॥४५॥
न जीवामोऽथ जीवामः पुनस्त्वद्दर्शनाशया । अस्मांस्तत्र नय त्वं हि यत्र नाथ गतो ह्यसि ॥४६॥
सर्वथा दर्शनं देहि कारुण्यं भज सर्वथा । पर्यन्तं न हि पश्यंति कस्यचित्सज्जना जनाः ॥४७॥

इत्थं विलप्य ताः सर्वाः प्रतीक्ष्य च बहुक्षणम् ।
रामं द्रष्टुं वने सर्वा बभ्रमुस्ता इतस्ततः ॥४८॥
वृक्षान् वनेचरान् रामो दृष्टोऽस्माकं पतिर्न वा ।
एवं सर्वास्तु पप्रच्छू रामविश्लेषसज्वराः ॥४९॥

रे रे पिप्पल वृक्षाणामधिपस्त्वं ब्रवीहि नः । रामो दृष्टोऽथ वा नैव वयं त्वां शरणं गताः ॥५०॥

फिर भी ये क्या करती हैं, यह देखनेके लिए राम गुप्तरूपसे वहाँ खड़े-खड़े देख रहे थे ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ क्षणभरमें रामको अलक्षित देखकर वे बहुत चकरायीं । फिर व्याकुल होकर हरिणियोंकी नाईं चञ्चल नेत्रोंसे इधर-उधर देखती हुई आपसमें कहने लगीं ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ उस समय उनका हृदय विरहाग्निसे पूर्ण हो गया था। उनकी उस विरहाग्निकी ज्वालासे उस जङ्गलमें भी थोड़ी देरके लिए करुणाकी धारा बहने लगी ॥ ३९ ॥ वे बोलीं—हे कान्त ! इस ऐन्द्रजाल (ठगहारी) मायाका परित्याग करके हमें शीघ्र दर्शन दीजिए । हमने आपसे हँसी की और पहले ही ग्रासमें मक्खी गिरनेके समान इतना बड़ा विघ्न आकर उपस्थित हो गया ॥ ४० ॥ कितने दुःखकी बात है । हे विधातः ! तुम्हारी क्या इच्छा है ? हे चित्तचोर ! जान पड़ता है कि तुम हम सबको सन्ताप देनेके लिए ही यहाँ आये थे ॥ ४१ ॥ तुम्हारा हृदय ही निष्ठुर है या हम लोगोंकी परीक्षा ले रहे हो । हमसे नाराज हो या हमारा चित्त चुरा रहे हो ? ॥ ४२ ॥ क्या हमारे ऊपर तुम्हारा विश्वास नहीं है ? क्या हमसे प्रेम नहीं करते हो ? हम लोगोंके साथ ठठोली तो नहीं कर रहे हो ? क्योंकि तुम मायाजाल फैलानेमें भी बड़े निपुण हो ॥ ४३ ॥ तुम किसीके चित्तमें घुसनेका कोई वैज्ञानिक एवं सूक्ष्म साधन जानते हो। बिना किसी अपराधके हमसे इतने क्यों रूठ गये हो ? ॥ ४४ ॥ दूसरेको धोखा देनेमें जो दुःख होता है, क्या तुम उसे नहीं जानते ? बिना तुम्हारा दर्शन पाये हम लोग नहीं जी सकेंगी और यदि जीयेंगी भी तो तुम्हारे दर्शनोंकी ही इच्छासे, अन्यथा नहीं । हे नाथ ! हमें भी वहाँ ही ले चलिये, जहाँ आप गये हों ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ दया करके हमें दर्शन दीजिए। सज्जनजन कभी किसीका दुःख नहीं देख सकते ॥ ४७ ॥ इस तरह बहुत देरतक विलाप करके उन्होंने उनके आनेकी प्रतिक्षा की । तब भी जब वे नहीं आये, तब वे उनको ढूँढनेके लिए वनमें इधर-उधर घूमने लगीं ॥ ४८ ॥ रास्तेके प्रत्येक वृक्ष और वनैले पशुओंसे वे रामविरहिणिया यह

CC-0. In Public Domain. Shri Kant Shastri, Jagatguru Delhi Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भो भो तुलसि नो नाथस्त्वया रामो निरीक्षितः । वद शाखामृग त्वं नो वने रामो निरीक्षितः ॥५१॥
त्वं कोकिल सदा शब्दान् करोषि परमान् शुभान् ।
वदाद्य जानकीकांतस्त्वयाऽरण्ये निरीक्षितः ॥५२॥
भो कदंब वदस्व त्वं तव पृच्छामहे वयम् । दीनानाथो रमानाथः सीतानाथस्त्वयेक्षितः ॥५३॥
पिक त्वमुत्तरं देहि सदा शब्दान् करोषि हि । पतिर्नः श्रीपतिः सीतापतिर्दृष्टोऽथवा न वा ॥५४॥
भो वारण मदोन्मत्त नृवारणसमः प्रभुः ।
सप्तद्वीपपतिः श्रीमान् रामोऽरण्ये निरीक्षितः ॥५५॥
शुक नः कथयाद्य त्वं प्रभुर्दृष्टोऽथ वा न वा ।
वद पुण्ये सरिच्छ्रेष्ठे किं तूष्णीं संस्थिताऽधुना ॥५६॥
नः प्रभुः सप्तद्वीपानां प्रभुरत्र निरीक्षितः ।
भो वायो कथयाद्य त्वं सीतारामो निरीक्षितः ॥५७॥

श्रीरामदास उवाच

एवं ता रामविश्लेषसंभ्रांताः शुशुचुर्वने । ततस्ता गंडकीतीरं गत्वा गीतं प्रचक्रिरे ॥५८॥

स्त्रिय ऊचुः

किं प्रभो त्वया जानकी यदा तेन रक्षसाऽरण्यमध्यतः ।
स्वस्थलं हृता गौतमीतटात्तत्कृते त्वया नैव शोचितम् ॥५९॥१॥
त्वद्वियोगतस्तप्तमानसाः सर्वतो वने शोकमागताः ।
एकदा प्रभो देहि दर्शनं देहि नो वरान् माऽस्तु वै रतिः ॥६०॥२॥
नो वांछामो राघव त्वचो रतिमद्य यद्वद्दत्तं भूसुरजाभ्यो वरदानम् ।
तद्वत्त्वं पूरय कामान्वरदानैर्वांछामस्ते सेवनमग्रचे जननेऽपि ॥६१॥३॥

पूछती जाती थीं कि तुमने हमारे पति रामको तो इधर कहीं नहीं देखा है ? ॥ ४९ ॥ वे कहती थीं कि हे वृक्षोंके राजा पिप्पलदेव ! हमें बताओ कि तुमने रामको तो नहीं देखा है ? हम आपकी शरणमें हैं ॥५०॥ हे तुलसी देवी ! तुमने तो रामको नहीं देखा है ? हे वानरगण ! इस वनमें तुमने कहीं रामको तो नहीं देखा है ? ॥ ५१ ॥ हे कोकिल ! तू बड़ी मीठी वाणी बोलता है, अब उसी वाणीमें हमें यह बता दे कि तूने वनमें कहीं रामचन्द्रको तो नहीं देखा है ? ॥ ५२ ॥ हे कदम्ब ! तुझसे हम सब स्त्रियाँ यही पूछना चाहती हैं कि तूने सीतापति रामको तो कहीं नहीं देखा ? ॥ ५३ ॥ अरे पिक ! तू सदा 'पीकहा-पीकहा' बोलता रहता हैं । अब हमें यह बता कि तूने कहीं जानकीवल्लभ रामको देखा हे ? देखा हो तो बतला दे ॥ ५४ ॥ हे मतवाले गजराज ! मनुष्योंमें हाथीके समान श्रेष्ठ रामचन्द्रजीको तो तूने नहीं देखा है ? ॥ ५५ ॥ हे शुक ! तू ही बता दे कि इस वनमें कहीं रामको देखा है ? हे पवित्र नदी ! तू क्यों चुप है ? सप्तद्वीपके अधीश्वर और हम लोगोंके प्रभु रामचन्द्रजीको तो तूने नहीं देखा है ? यदि देखा हो तो बता दे। हे वायो ! कहो, तुमने इस वनमें कहीं सीतापति रामको देखा है ? ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ श्रीरामदास कहने लगे—इस प्रकार रामके वियोगसे पगली-सी होकर वे स्त्रियाँ विलाप करती हुई चलती-चलती गण्डकी नदीके किनारे जाकर इस तरह प्रार्थनाभरे गायन गाने लगी—॥ ५८ ॥ हे प्रभो ! जब रावण वनमेंसे सीताका हरण करके अपनी राजधानी लङ्काको ले गया था, तब क्या उनके लिए आपने कोई शोक नहीं किया था ? ॥ ५९ ॥ १ ॥ हे नाथ ! आपके वियोगसे हमारा हृदय जला जा रहा है । शोकसे व्याकुल होकर हम सब इस वनमें आ पहुँची हैं । हे प्रभो ! हमें एक बार अपना दर्शन दे दें और कोई वरदान भी दे डालें । यदि आप हमसे प्रेम नहीं करना चाहते तो न करिए ॥ ६० ॥ २ ॥ हे राघव ! अबतक हम सब कामवासनामय रतिसुख चाहती थीं । अब उसकी इच्छा भी नहीं रह गयी । जिस प्रकार आपने ब्राह्मणियोंको वरदान दिया था, उसी

CC-0. In Public Domain. Shrikant Sharma Najafgarh Delhi Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अस्माभिर्यच्चंचलभावादपराद्धं तत्सर्वं त्वं मा स्मर पूर्वं करुणातः ।
नः प्राणास्ते दर्शनहेतोस्तनुमध्ये तिष्ठंति त्वां पदपल्लवयाच्ञा क्रियतेऽद्य ॥६२॥४॥
भो भो राघव मा रुष्ट त्वं क्रोधं मा भज दासीष्वद्य ।
पर्यंतं न हि पश्यंतीत्थं वांछामो न हि त्वत्तः कामम् ॥६३॥५॥
देहि त्वं निजदर्शनलाभं जन्माग्रयेऽर्पय नो वरदानम् ।
पाहि त्वं शरणं ह्युपयाताः सर्वास्तारय नः प्रणमामः ॥६४॥६॥
राम त्वं किं निर्दयहृदयस्त्वसि नः किं नायात्यद्य स्त्रीजनकरुणा हृदये ते ।
इत्थं क्रोधं त्वत्पदयुगले पतितासु कर्तुं विष्णो नार्हसि वरदो भव नोऽद्य ॥६५॥७॥
बाले दीने स्त्रीजनविमले तनये स्वे नो कुर्वन्तीत्थं बहुविमला मतिमंतः ।
क्रूरं क्रोधं त्वं त्यज वरदो भव नोऽद्य वारं वारं करकमलैस्त्वां प्रणमामः॥६६॥८॥
हे नाथ राघव रमेश्वर रावणारे सीतापते रिपुनिषूदन कंजनेत्र ।
त्वं देहि राम निजदर्शनमद्य विष्णो दुःखार्णवात्परतटं नय कामिनीर्नः ॥६७॥९॥
त्वत्पादपद्मवरसेवनमर्थयामो जन्मांतरे कुरु दयां करुणासमुद्र ।
नोचेत्त्वदद्य विरहान्निजजीवितानि त्यक्ष्याम एव नियतं सहसाऽद्य नद्याम् ॥६८॥१०॥

श्रीरामदास उवाच

नारीगीतं राघवश्चापि श्रुत्वा प्रत्यक्षोऽभूत्कामिनीनामथाग्रे ।
दृष्ट्वा रामं ताः स्त्रियश्चातितुष्टाः प्रोत्फुल्लास्यास्तं प्रणेमुः शिरोभिः ॥६९॥११॥
नारीगीतं मानवश्चापि श्रुत्वा सर्वान् कामान्प्राप्नुयान्निश्चयेन ।
तस्मादेतत्सर्वदा कीर्तनीयं श्लोकार्कीयं प्रापठं छन्दचित्रम् ॥७०॥१२॥

तरह वरदान देकर हमारी भी कामना पूर्ण करें। हम किसी अगले जन्ममें ही आपकी सेवा करना चाहती हैं ॥६१॥३॥ हमने करुणावश अथवा चंचलतासे कोई अपराध किया हो तो उसे आप भूल जायँ। मेरे प्राण आपके दर्शनार्थं व्याकुल हैं। इस समय हम आपके दर्शनोंकी ही भीख माँग रही हैं ॥ ६२ ॥ ४ ॥ हे राघव! आप नाराज न हों और दासियोंपर क्रोध न दिखलायें। हम सब आपसे कामवासनाकी पूर्ति नहीं चाहतीं ॥ ६३ ॥ ५ ॥ इस समय आप हमें अपना दर्शन और दूसरे जन्मके लिये वरदान दें। हम सब आपकी शरणमें हैं। आप हमारी रक्षा करके हमारा निस्तार करिए। हम आपको प्रणाम करती हैं ॥ ६४ ॥ ६ ॥ हे राम! क्या आप इतने निर्दयी हैं कि जो हम स्त्रियोंको इस प्रकार दुखी देखकर भी आपके हृदयमें दया नहीं आती? हे विष्णो! आपके पैरोंमें पड़ी हुई हम अबलाओंपर आपको इस प्रकार क्रोध नहीं करना चाहिए। हमपर दया करके हमें वरदान दीजिए ॥ ६५ ॥ ८ ॥ बुद्धिमान् लोग बच्चोंपर, गरीब स्त्रियोंपर तथा अपनी सन्तानपर इस प्रकार कोप नहीं किया करते। इस कारण अपने क्रूर कोपका प्रत्याहार कीजिए। हम सब हाथ जोड़कर प्रणाम करती हैं, हमें वरदान दीजिए ॥ ६६ ॥ ७॥ हे नाथ! हे राघव! हे रमेश्वर! हे रावणारे! हे सीतापते! हे रिपुनिषूदन! हे कञ्जनेत्र! हे विष्णो! हे राम! अपना दर्शन देकर आप हम कामिनियोंको दुःखसागरसे पार कीजिए॥६७॥६॥ हे करुणाके समुद्र! अब दया कीजिए। हम दूसरे जन्ममें आपकी सेवा करनेकी इच्छुक हैं। हम आपसे यही भिक्षा माँगती हैं। यदि ऐसा नहीं करेंगे तो आपके विरहदुःखसे दुःखित हम सब स्त्रियाँ इसी गण्डकी नदीमें कूदकर अपने प्राण त्याग देंगी ॥ ६८ ॥ १० ॥ रामदासने कहा—इस प्रकार उन कामिनियोंका विलाप सुनकर रामचन्द्रजी उनके सामने प्रकट हो गये। रामको प्रत्यक्ष देखकर वे स्त्रियाँ बहुत प्रसन्न हुईं और विकसित वदन होकर बार-बार प्रणाम करने लगीं ॥ ६९ ॥ ११ ॥ प्रत्येक मनुष्य इस नारीगीतको सुनकर अपनी अभिलषित कामनाएँ पूर्ण कर सकता है। इसलिए लोगोंको चाहिए कि सदा इस नारीगीत-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अथ रामो ददौ ताभ्यो वरांस्तास्तोषयन् प्रभुः । यूयं शृणुध्वं भो नार्यः पुरा व्यासाग्रतो मया ॥७१॥
बहुस्त्रीहेतुना रुक्ममूर्तयः षोडशार्पिताः ।
तासां दानेन संतुष्टास्ते विप्रा मां तदाऽब्रुवन् ॥७२॥
फलं सहस्रगुणितं तवास्तु रघुनन्दन । अतस्तत्फलतश्चाहं द्वापरे कृष्णरूपधृक् ॥७३॥
करोमि पाणिग्रहणं युष्माकं द्वारकापुरि ।
यूयं नानानृपाणां च भवध्वं बालिकास्तदा ॥७४॥
भौमासुरस्तदाऽयं वै दुंदुभिस्तु भविष्यति । भौमासुरश्च युष्माकं पूर्ववत्स हरिष्यति ॥७५॥
तदा सर्वा मोचयामि हत्वा तं जगतीसुतम् ।
ततो मया सुखेनैव क्रीडध्वं हि यथारुचि ॥७६॥
एवं ता रामवाक्यं तच्छ्रुत्वा प्रमुदिताननाः ।
आनन्दोत्फुल्लनयनाः सुखमापुर्वराङ्गनाः ॥७७॥
एतस्मिन्नंतरे रामं पश्यन्तो लक्ष्मणादयः । शनैस्तत्राययुस्तत्र पदांकितपथा प्रभुम् ॥७८॥
षोडशस्त्रीसहस्राणां मध्ये दृष्ट्वा रघूत्तमम् । परं विस्मयमापुस्ते प्रणेमुर्जगदीश्वरम् ॥७९॥
श्रुत्वा राममुखात्सर्वं यथावृत्तं सविस्तरम् । सर्वे सन्तुष्टमनसस्तस्थुः श्रीराघवाग्रतः ॥८०॥
ततो रामाज्ञया दूताः शतशोऽथ सहस्रशः ।
वाहनान्यानयामासुः सेनावासस्थलान्मुदा ॥८१॥
तेषु ताः स्त्रीः सुसंस्थाप्य वाहनेषु रघूत्तमः ।
शनैः सेनानिवासे स ययौ सीतांतिके प्रभुः ॥८२॥
ततस्ता जानकीं नेमुः सीतां वृत्त रघूत्तमः । यथा वृत्तं तथा सर्वं कथयामास कौतुकात् ॥८३॥
ततस्ताः पूजयामास वस्त्रैराभरणैरसौ । ततो रामः स कासारं सेनावासस्थलांतिके ॥८४॥

के श्लोकोंका पाठ किया करें ॥ ७० ॥ १२ ॥ इसके अनन्तर उनको वरदान देते हुए रामचन्द्रजी कहने लगे—हे स्त्रियों! बहुत दिनोंकी बात है कि मैंने एक समय बहुत-सी स्त्रियोंको पानेकी इच्छासे व्यासजीके सम्मुख सुवर्णकी सोलह स्त्रियाँ बनवाकर ब्राह्मणोंको दान दिया था। इससे प्रसन्न होकर उन विप्रोंने हमसे कहा—हे रघुनन्दन! तुम्हें इस दानका सहस्रगुना फल प्राप्त होगा अर्थात् सोलहके बदले सोलह हजार स्त्रियाँ प्राप्त होंगी। अतएव उनके आशीर्वादानुसार द्वापरमें कृष्णका रूप धारण करके ॥ ७१-७३ ॥ मैं तुम सबोंका द्वारकापुरीमें पाणिग्रहण करूँगा। उस जन्ममें तुम अनेक राजाओंकी कन्याएँ होओगी। दुन्दुभी राक्षस जिसको कि बालिने मार डाला है, उस जन्ममें भौमासुर होगा और इस जन्मके समान ही तुम्हारा हरण करेगा ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ उस समय मैं भामासुरको मारकर तुम सबोंको छुड़ाऊँगा और तबसे तुम सब सानन्द हमारे साथ विहार करोगी ॥ ७६ ॥ इस प्रकार रामके वाक्य सुनकर उनका चेहरा खिल उठा और वे अत्यन्त आनन्दित हुईं ॥ ७७ ॥ इसी समय रामको खोजते हुए उनके पैरोंके निशान देखते-देखते लक्ष्मणादि साथी भी वहीं आ पहुँचे। जब उन्होंने सोलह हजार स्त्रियोंके बीचमें रामको देखा तो बड़े विस्मित हुए और जगदीश्वर रामको उन लोगोंने प्रणाम किया ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ जब रामने उन स्त्रियोंका वास्तविक वृत्तान्त बतलाया तो वे बहुत प्रसन्न हुए और रामके आगे बैठ गये ॥ ८० ॥ इसके अनन्तर रामकी आज्ञासे हजारों वाहन आये। जिनपर उन स्त्रियोंको बिठाकर रामचन्द्रजी शिविरकी ओर चले, जहाँ कि सीताजी बैठी थीं ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ वहाँ पहुँचकर उन सब स्त्रियोंने सीताको प्रणाम किया और रामने उनका जो सच्चा-सच्चा हाल था, सो कह सुनाया ॥ ८३ ॥ इसके बाद सीताने अनेक वस्त्रों आभरणोंसे उनका सत्कार किया। थोड़ी देर बाद रामने अपने शिविरके पास ही एक उत्तम सरोवर देखा, जो अपनी

CC-0. In Public Domain. Kishori Sharma Najafgarh Delhi Collection.

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दृदर्श सुमहच्छ्रेष्ठं स्पर्द्धयंतमपां पतिम् । घनपादपमध्यस्थं सुतीर्थसलिलं शुभम् ॥८५॥
विशालं विकचांभोजमधुमत्तमधुव्रतम् । पद्मिनीपत्रसंयुक्तं छन्नं मरकतैरिव ॥८६॥
स्वच्छंदमुच्छलन्मत्स्यं स्वच्छं साधुमनो यथा । चलज्जलचरोद्भिन्नवीचिराजिविराजितम् ॥८७॥
अन्तर्ग्राहगणक्रूरं खलानामिव मानसम् । क्वचिच्छैवालदुर्गम्यं कृपणस्येव मंदिरम् ॥८८॥
नानाविहङ्गसर्वार्तिं शमयंतं दिवानिशम् । उदारमिव सर्वस्वैरापन्नार्तिहरं महत् ॥८९॥
तपयंतं हिमाम्भोभिः श्वापदान्स्वपितॄनिव । हरंतं सर्वसंतापं हिमांशुमिव चाह्निकम् ॥९०॥

तं दृष्ट्वाऽभूत्सुसंतुष्टः सीतया रघुनन्दनः ।
तत्र स्नात्वा सुखं रामः कृतमाध्याह्निकक्रियः ॥९१॥

भुक्त्वा वन्धुजनैः सर्वैराखेटगणसंवृतः । उवास सरसस्तीरे रम्याः संकथयन्कथाः ॥९२॥

ततः शरासने बाणं कृत्वा रात्रौ स्थितास्तरौ ।
व्याधाः संधानमास्थाय रुरुधुः ककुभां पथः ॥९३॥

एवं स्थितेषु वीरेषु वने विस्तार्य वागुराः । निशार्धे निर्गतं यूथं शूकराणां सरस्तटे ॥९४॥
चरित्वा सारसीकंदान् पपात व्याधसंकुले । राज्ञा विद्धास्तदा क्रोडा व्याधैश्च बहवो हताः ॥९५॥

क्षणेनैव वराहास्ते विद्धाः पेतुर्महीतले ।
तान्हत्वा तुमुलं नादं चक्रुर्व्याधाः सुदर्पिताः ॥९६॥

धावन्तोऽपि मुदा तत्र मिलिता यत्र भूपतिः । तानादाय भटैर्भूपः सेनावासं ययौ पुनः ॥९७॥

एवं सप्तदिनान्येव स्थित्वा रामो वने सुखम् ।
भुक्त्वा नानाविधान् भोगान् सीतया स्वपुरीं ययौ ॥९८॥

गहराईसे समुद्रको मात कर रहा था। उसके आस-पास घनी वृक्षावली लगी हुई थी, स्थान-स्थानपर घाट बने हुए थे और पवित्र जल भरा था ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ उसका लम्बाई चौड़ाई भी थोड़ी नहीं थी, खिले हुए कमलके फूलोंपर भौंरे गुन्जार रहे थे, फैले हुए पुरइनके बड़े-बड़े पत्ते मरकतके समान सुन्दर लग रहे थे ॥ ८६ ॥ सज्जन प्राणीके मनकी तरह स्वच्छन्दतापूर्वक मछलियाँ उछल रही थीं। जलचर प्राणियोंके इधर-उधर चलनेके कारण बार-बार उसमें लहरें उठ रही थीं ॥ ८७ ॥ खल मनुष्यके हृदयके समान उसमें कितने ही घड़ियाल भरे थे। कहीं-कहीं कंजूस प्राणीके घरकी तरह सेवार भरे थे, इससे उसमें प्रविष्ट होना दूभर लगता था ॥ ८८ ॥ दिनरात कितने ही पक्षी आश्रय लेकर अपनी थकावट दूर कर रहे थे। इससे वह सरोवर किसी ऐसे सज्जनके समान मालूम पड़ता था, जो अपना सर्वस्व लुटाकर गरीबों तथा शरणागत जनोंकी रक्षामें तत्पर हो ॥ ८९ ॥ अपने ठंढे जलसे वह उसी तरह बनैले जीवोंकी प्यास बुझा रहा था, जैसे चन्द्रमा दिन भरके परिश्रमसे दुःखी जनोंकी समस्त पीड़ा रातमें हरमें लिया करता है ॥ ९० ॥ उस सरोवरको देखकर सीता तथा रामचन्द्र बहुत प्रसन्न हुए। उसमें स्नान किया, मध्याह्न कालकी नित्यक्रियायें कीं और भोजन किया। फिर सारे शिकारियोंको साथ लेकर उसी तड़ागके समीप डेरा डाल दिया और अनेक तरहकी कहानियाँ कहते-कहते समय काटने लगे ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ जब रात्रिका समय हुआ तो बहेलियोंने अनेक सामान लेकर चारों ओरसे उस तड़ागको घेर लिया और रामचन्द्रजी अपना धनुष-बाण ठीक करके एक वृक्षके ऊपर जा बैठे ॥ ९३ ॥ जब कि व्याधे जाल बिछाकर तत्परताके साथ सरोवरके चारों तरफ बैठ गये और ठीक आधी रातका समय हुआ, तब बनैले शूकरोंका एक यूथ आ पहुँचा ॥ ९४ ॥ तालाबमें उत्पन्न कन्द खाकर वह शूकरयूथ बहेलियोंके ऊपर टूट पड़ा। उस समय बहुतसे शूकरोंको रामचन्द्रजीने मार डाला और बहुतोंको बहेलियोंने समाप्त कर दिया ॥ ९५ ॥ क्षणभरमें वे सारे शूकर मार डाले गये। उनको मारनेके अनन्तर व्याधोंने प्रसन्नताका कोलाहल मचाया ॥ ९६ ॥ तब बहेलिये मारे खुशीके दौड़ते हुए उस स्थानपर पहुँचे, जहाँ रामचन्द्रजी बैठे थे। तब राम उन सबोंको तथा

CC-0. In Public Domain. Shri Kant Sharma Nagar Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ततो विप्रान्नृपान् वैश्यान् समाहूय रघूत्तमः ।
या यस्य दुहिता नारी या यस्य पुत्रपुत्रिका ॥९९॥
तस्मै तस्मै ददौ तां तामेवं सर्वा व्यसर्जयत् ।
वस्त्रालंकारभूषाद्यैः शोभयित्वा पृथक् पृथक् ॥१००॥
ते विप्राद्याः पुनर्जाता मेनिरे निजबालिकाः ।
ततः स्वं स्वं पुरं नीत्वा नृपा वैश्याः प्रभोर्गिरा ॥१०१॥
नृपपुत्रैर्वैश्यपुत्रैस्तासां चक्रुः सुमंगलम् । रामप्रसादात्ताः प्रापुः पतिसंगसुखं स्त्रियः ॥१०२॥
ताश्चापि द्विजपुत्र्यस्तु पितॄणामेव सद्मसु ।
निन्युः स्वीयायुषं तत्र व्रतचर्यादिभिः सुखम् ॥१०३॥
विवाहकालातिक्रमणाच्च ता उद्वाहिता द्विजैः ।
जन्मांतरेण ता सर्वाः कृष्णः पत्नीः करिष्यति ॥१०४॥
अथ रामः सुबाहोश्च पुत्रस्य मथुरां पुरीम् । विवाहार्थं सीतया स पौरैर्जानपदैर्ययौ ॥१०५॥
तत्र वैवाहिकं कर्म संपाद्य रघुनन्दनः । तस्थौ तत्र कियत्कालं मथुरायां यथासुखम् ॥१०६॥
एकदा जानकीवाक्यात्कालिंद्याः सैकते शुभे । निशायां हेमपर्यंके सुखं सुष्वाप राघवः ॥१०७॥
एतस्मिन्नंतरे दासीर्दासान् दृष्ट्वा विनिद्रितान् ।
स्त्रीरूपेणाथ कालिंदी रामांघ्रिं संस्पृशच्छनैः ॥१०८॥
ततो रामः प्रबुद्धोऽभूद्ददर्श पुरतः स्थिताम् ।
सूर्यस्य तनयां पुण्यां कालिंदीं कंजलोचनाम् ॥१०९॥
दिव्यालंकारवस्त्राढ्यां दिव्यनूपुरगर्जिताम् । नीलोत्पलदलश्यामां हेमकुंभपयोधराम् ॥११०॥
स्मिताननां सुरंभोरुं किंकिणीजालमालिकाम् ।
केयूरकुंडलाढ्यां तां प्रोत्तुङ्गजघनां वराम् ॥१११॥

सैनिकोंको साथ लेकर अपने शिबिरको लौट आये । इस प्रकार सात दिन वनमें रहते हुए अनेक तरहके सुखोंका उपभोग करके राम अपनी अयोध्यापुरीको लौट पड़े ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ इसके अनन्तर दुन्दुभी द्वारा हरण की हुई उन कन्याओंको जो जिसकी पुत्री थी, उन-उन राजाओं, ब्राह्मणों तथा वैश्योंको बुलाकर दे दी और उन बालिकाओंको वस्त्राभूषणादिसे अलंकृत करके विदा कर दिया ॥ ९९ ॥ १०० ॥ वे ब्राह्मणादिक अपनी कन्याओंका पुनर्जन्म मानकर रामके आज्ञानुसार अपने-अपने घरोंको ले गये और नृपों तथा वैश्योंने अच्छे वरोंके साथ उनका विवाह कर दिया । रामचन्द्रजीकी कृपासे उन सबको पतिके साथ विहार करनेका सुख प्राप्त हुआ ॥१०१॥१०२॥ उनमेंसे जो ब्राह्मणकी बालिकायें थीं, वे विवाहकाल व्यतीत हो जानेके कारण विवाह न करके यूँही पिताके घरपर व्रत-उपवासादि करके अपना जीवन यापन करने लगीं । क्योंकि उनको यह विश्वास हो गया था कि दूसरे जन्ममें स्वयं श्रीकृष्णचन्द्रजी मेरे पति होंगे ॥ १०३ ॥ १०४ ॥ कुछ दिनों बाद सुबाहुका विवाह करनेके लिये रामचन्द्रजी सीताके साथ मथुरापुरी गये ॥ १०५ ॥ वहांपर विवाहका सारा कार्य सम्पादन करके कुछ दिन मथुरामें ही रहे ॥ १०६ ॥ एक दिन सीताके कहनेसे रामचन्द्रजी यमुनाके तटपर सोये । उस समय वहांके सब दासों और दासियोंको निद्रित देखकर एक स्त्रीका रूप धारण किये यमुना स्वयं रामके पास गयी और धीरेसे उनका पैर पकड़ा ॥ १०७ ॥ १०८ ॥ उसके ऐसा करनेपर रामचन्द्रजी जाग गये और सामने सूर्यकी पुत्री तथा कमलके समान नेत्रोंवाली कालिन्दीको देखा ॥ १०९ ॥ उस समय उसके शरीरमें दिव्य वस्त्राभूषण पड़े थे । पैरोंमें सुन्दर नूपुर छनछना रहे थे । नील कमलकी पंखुड़ियोंके समान उसका रङ्ग था और सुवर्णकलशके समान उसके स्तन थे ॥ ११० ॥ मुस्कराता हुआ मुख

CC-0. In Public Domain. Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तां तादृशीं प्रभुर्दृष्ट्वा क्षणं तूर्णीं व्यचिन्तयत् । धन्यो विधाता येनेयं कालिंदी रचिता पुरा ॥११२॥
इत्याश्चर्यमना भूत्वा तत्सौंदर्यं व्यलोकयत् । अथ रामः स तां प्राह वदागमनकारणम् ॥११३॥
सा प्राह तं विलज्जंती सर्वं त्वं वेत्सि राघव । ततो रामोऽब्रवीद्वाक्यं चैकपत्नीव्रतं मम ॥११४॥
इह जन्मनि कालिंदि त्वं याहि स्वस्थलं जवात् ।
यावत्सीता प्रबुद्धा न जायेत तावदेव हि ॥११५॥
सा रामवाक्शरेणैव भिन्नमर्मस्थला भुवि । मूर्च्छामवाप तत्रैव तां दृष्ट्वा सोऽब्रवीत् पुनः ॥११६॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ कालिंदि श्रृणु त्वं वचनं मम । द्वापरे कृष्णरूपेण त्वां करिष्याम्यहं स्त्रियम् ॥११७॥
विवाहेनैव गच्छाद्य तदा भोक्ष्यसि मत्सुखम् ।
इति श्रुत्वा रामवाक्यं किंचित्तुष्टमना नदी ॥११८॥
नत्वा रामं ययौ तूर्णीं रामध्यानपराऽभवत् ।
ततो रामोऽपि सैन्येन सीतया स्वपुरीं ययौ ॥११९॥
एवं साकेतनगरे रामः स्त्रीबंधुदेहजैः ।
चरितान्यकरोन्नाना पापघ्नानि श्रवादिना ॥१२०॥

इति श्रीशतकोटिरामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये राज्यकाण्डे पूर्वार्द्धे षोडशसहस्राधिककालिंद्यादिपञ्चस्त्रीवरदानं नाम द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

था, केलेके खम्भेकी नाईं उसकी जंघाएँ थीं। किंकणी, केयूर, कुण्डल आदि आभूषण अपनी छटा दिखा रहे थे ॥ १११ ॥ इस प्रकारकी एक अपरिचित नारीको अपने सामने देखकर राम थोड़ी देर तक यह सोचते रहे कि विधाता धन्य है, जिसने कालिन्दी जैसी नारीकी रचना की है ॥ ११२ ॥ इस प्रकार विचार करते हुए वे उसका सौन्दर्य देखते रहे। इसके अनन्तर उससे कहने लगे-तुम अपने आनेका कारण बतलाओ ॥ ११३ ॥ रामकी बात सुनकर सकुचाती हुई कालिन्दीने कहा—हे राघव! तुम सब कुछ जानते हो। फिर रामने कहा कि हे कालिन्दी! इस जन्ममें मैंने एकपत्नीव्रत धारण कर रक्खा है। इसलिये सीता जाग जाय, इसके पहले ही तुम यहाँसे चली जाओ ॥ ११४ ॥ ११५ ॥ रामके ये वाक्य बाणके समान उसके हृदयमें लगे, जिससे वह वहींपर मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। फिर रामने कहा—कालिन्दी! उठो-उठो, मेरी बात तो सुनो। द्वापर-युगमें मैं कृष्ण होकर तुम्हें अपनी स्त्री बनाऊँगा, आज तुम लौट जाओ। जन्मान्तरमें तुम मेरे साथ विहार करके सुखी होओगी। इस प्रकारकी बात सुनकर यमुनाको कुछ सन्तोष हुआ ॥ ११६-११८ ॥ तदनन्तर रामको प्रणाम करके उनका ध्यान करती हुई वह लौट गयी। उधर राम भी अपनी सेना तथा सीताके साथ अयोध्या चले गये ॥ ११९ ॥ इस तरह रामचन्द्रजी साकेतपुरीमें अपने पुत्रों तथा सीताके साथ अनेक लीलायें किया करते थे, जिनका श्रवण करनेसे समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ १२० ॥ इति शतकोटि-रामचरितांतर्गते श्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये पं० रामतेजपांडेयविरचित'ज्योत्स्ना'भाषाटीकासमन्विते राज्यकाण्डे पूर्वार्द्धे द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

॥ इति राज्यकाण्डं पूर्वार्द्धं समाप्तम् ॥

श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु ।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection